5·2

॥ श्रीः ॥

जैमिनीयसूत्राणि

[भाषाटीका समेतानि]



मुद्रक व प्रकाशक

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-

"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस,

कल्याण-बम्बई.

संवत २०१५

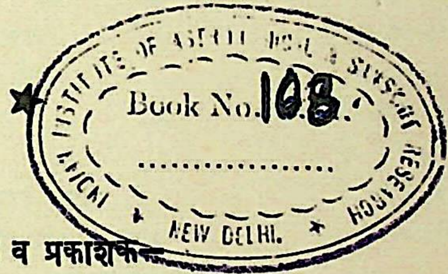
सन १९५८

श्रीः

जैमिनीयसूत्राणि



काशिरामविरचितभाषाटीका समेतानि



मुद्रक व प्रकाशक—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक—"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,

कल्याण-बम्बई.

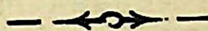
संवत् २०१५, सन् १९५८.

ज्योतिषग्रन्थाः ।

नाम.	की.रु.आ.ट.म.रु.आ
३८१ अर्घप्रकाश ज्योतिष भाषाटीका इसमें तेजी मंदी वस्तु देखनेका विचार है ...	०-१०-०
३८२ अयोध्याजातक ज्योतिष भाषाटीका (इसमें बालका जन्म जातकादि भलिभांति वर्णित है)	०-७-०
३८३ कालज्ञान भाषाटीका	०-८-०
३८४ कररेखासंख्यावली(छंदबद्ध सुगमसामुद्रिक)	०-७-०
३८५ गंगास्थित्वनिर्णय भाषाटीका ...	०-४-०
३८६ केरलतत्व प्रश्नसंग्रह इसमें प्रश्न देखने है	०-१२-०
३८७ गर्गमनोरमा भाषा और संस्कृत टीकासह	०-१२-०
३८८ गर्गजातक भाषाटीका ...	०-५-०
३८९ ग्रहगोचर भा० टी०	०-४-०
३९० ग्रहलाघव भा० टी०	३-८-०
३९१ ग्रहशांति संस्कृत (अतिउत्तम) ...	१-४-०
३९२ चमत्कारचिन्तामणि भाषाटीका ...	०-९-०
३९३ जातकालङ्कार भाषाटीका	०-१४-०
३९४ जातकालङ्कारसटीक	०-१०-०
३९५ जातकाभरण मूलग्लेज खुला पन्ना ...	१-१२-०
३९६ जातकाभरण भा० टी० चिकना कागज ...	७-०-०
३९७ जातकचन्द्रिका भा० टी० (अत्युत्तम जन्मजातक तन्वादि भावफल षड्वर्गफल अनेकानेक योग दशादिवर्णित पासमें अवश्य रखने योग्य है)	२-०-०
३९८ जातक संग्रह भाषाटीका समेत जिन विषयोंकी कि जन्मपत्रफलादेशमें आवश्यकता होती है वेही समस्त विषय अनेक संस्कृत जातकग्रंथोंसे सार २ लेकर भाषाटीकासहित छपे हैं	५-०-०
३९९ जैमिनीसूत्रसटीक चार अध्याय सं०टी० ...	१-०-०
४०० जैमिनीसूत्र भा० टी०	१-१२-०
४०१ ज्योतिषश्यामसंग्रह भा० टी० ग्लै० (इसमें बहुत प्रकारसे जन्मपत्रका भाव योगानुयोग उच्चादिबल दशा अरिष्ट राजयोगादि भाव भलीप्रकार कह सकते हैं.) ...	७-०-०

अथ

जैमिनीयसूत्रकी विषयानुक्रमणिका।



इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ

भाषाटीकासहितानि

जैमिनीयसूत्राणि ।

यो हत्वा ध्वान्तमुस्त्रैः सुरमयति जनान्योजयन्कर्ममार्गे ।
चाब्रह्मादेर्वयांसि क्षिपति स विभजन्नार्त्तवान्सर्वधर्मान् ॥
यत्पन्थानं ह्युपेत्य व्रजति यतिगणा ब्रह्म निर्वाणधाम ।
तं ध्यात्वा हृत्सरोजे तमिह विरचये जैमिनेःसूत्रभाषाम् ॥१॥

पूर्वजन्मार्जित कर्मज्ञानसे अनुष्ठान किये हुए काशीवासादि निज वृत्तसे जगत्के उद्धार करनेकी इच्छावाले करुणासमुद्र जैमिनिमुनि इस प्रारिप्सित ग्रंथके रोकनेवाले विघ्नकी शान्तिके लिये श्रीशंकर भगवान्को प्रणाम कर समस्त जनोंके शुभ अशुभ जतानेवाले जातकशास्त्रकी रचना करनेको प्रतिज्ञा करते हैं ॥ १ ॥

उपदेशं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

उकार इस अक्षरके स्वामी जो कि शंकरभगवान् हैं तिनको प्रणाम करते हैं अथवा जिस करके पूर्वजन्मार्जित शुभ अशुभ कर्मोंका फल प्रगट किया जाता है ऐसे उपदेशनाम जातकशास्त्रविशेषको कहते हैं ॥ १ ॥

इस शास्त्रमें अन्य शास्त्रवत्ही दृष्टिविचार है अथवा अन्य शास्त्रसे विलक्षण है इस संशयको दूर करते हुए कहते हैं ।

अभिपश्यन्त्यृक्षाणि ॥ २ ॥ पार्श्वभे च ॥३॥

“ उकारः शंकरः प्रोक्तः ” इत्येकाक्षरकोशः ॥

ग्रहोंका बल अगाडी केहेंगे ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर अर्गलाकारक और अर्गलाप्रतिबन्धक योगको कहते हैं ।

प्राग्वत् त्रिकोणे ॥ ९ ॥

त्रिकोणनाम पंचम और नवम स्थानमें ग्रह होनेपर पूर्ववत् अर्गला और अर्गलाप्रतिबन्धक योग होता है। भाव यह है कि जिस राशिका विचार किया जावे उस राशिके देखनेवाले ग्रहके पंचम स्थानमें ग्रह होवें तौ अर्गला होवे है और यदि उसी देखनेवाले ग्रहसे नवम स्थानमें कोई ग्रह होवें तौ अर्गलाप्रतिबन्धकयोग होता है परंतु नवमस्थानस्थित ग्रह अल्प संख्यावाले और निर्बली होवें तो पंचम स्थानस्थित ग्रहकी अर्गलाको दूर नहीं कर सकते हैं ॥ ९ ॥

---

१ अर्गलाकारक योग और अर्गलाप्रतिबन्धक योग वृद्धोंनेभी कहे हैं । "भय२ पुण्य ११ विना ४ भावाद् द्रष्ट राहुः शुभार्गलम् । स्फुटां १२ ग ३ ज्ञेय १० भावात्तु विपरीतार्गलं विदुः ॥" अर्थ–जिस राशिका विचार किया जावे उस राशि के देखनेवाले ग्रहसे भयनाम द्वितीय और पुण्यनाम एकादश और विनानाम चतुर्थ स्थानपर कोई ग्रह होवे तो अर्गला होवे है परन्तु उक्त स्थानपर राहु होवे तो शुभ अर्गलाहोवे है और यदि उसी देखनेवाले ग्रहसे स्फुट नाम द्वादश और अंग नाम तृतीय और ज्ञेय दशम भावमें ग्रह होवे तौ क्रमसे द्वितीय एकादश चतुर्थ स्थानस्थित अर्गलाकारक ग्रहोंके प्रतिबन्धक होवेहैं अर्थात् अर्गलाकेदूर करनेवालेहोतेहैं

२ यदि कहो कि दार ४ भाग्य २ शूलेत्यादि सूत्रमें शान्त ५ पदके ग्रहणसे और रिःफ १० नीचेत्यादि सूत्रमें धातु • पदके ग्रहणसे अर्गला और अर्गलाप्रतिबन्धक योगका लाभ होही सक्ता फिर "प्राग्वत् त्रिकोणे" इस सूत्रकी रचना व्यर्थ क्यों करी ? समाधान–"विपरीतं केतोः" 'इस सूत्रमें केतुकी जो कि अर्गला और अर्गलाप्रतिबन्धक योगमें विपरीता कही है वह त्रिकोणनाम पंचम और नवमस्थानकेही विषेकही है । न कि अन्य स्थानोंके विषे इस कारण "प्राग्वत् त्रिकोणे" इस सूत्रकी पृथक् आवश्यकता है । यदि इस सूत्रको पृथक् न करते तौ दारभाग्यशूलेषु इत्यादि कम केतुकृत विपरीता सिद्ध हो जाती और जो कि कोई एक आचार्योंने कहा कि "प्राग्वत् त्रिकोणे" इस सूत्रके पृथक् करनेके सामर्थ्यसे यह अर्गला अप्रतिबन्धक है । यदि उन आचार्योंके मतसे यह अर्गला अप्रतिबन्धक होतीतौ प्रसंगसे "कामस्था तु भूयसा"

इसके अनन्तर केतुग्रहके लिये कुछ विशेष कहते हैं।

विपरीतं केतोः ॥ १० ॥

केतुग्रहका नवम अर्गलास्थान है और पञ्चम अर्गलाप्रतिबन्धक स्थान है। भाव यह है कि केतुके कोई ग्रह नवम स्थानमें स्थित होवे तौ अर्गला होवे है और उसी केतुके कोई ग्रह अल्प संख्या और निर्बलत्वदोषवर्जित होकर पंचम स्थानमेंभी स्थित होवे तौ नवमस्थानस्थित ग्रहकी अर्गला नहीं होवे है ॥ १० ॥

इस ग्रंथमें विशेषकर कारकोंके फलादेश किया जाता है इस कारण कारकोंसे कहनेकी इच्छावाले मुनि प्रथम आत्मकारकको दिखाते हैं।

आत्माधिकःकलादिभिर्नभोगः सप्तानामष्टानां वा॥११॥

सूर्यसे लेकर शनैश्चरपर्यंत सात ग्रह अथवा राहुपर्यंत आठ ग्रहोंके मध्यमें जो कि ग्रह अंश कलादिककर सब ग्रहोंसे अधिक होवे तो वह ग्रह आत्मकारक होता है। भाव यह है कि सूर्य, चंद्रमा, भौम, बुध, गुरु, भृगु, शनि, राहु इन ग्रहोंमें जिस ग्रहके अंश अधिक होवें अथवा अंशोंके बराबर होनेपर कला वा विकलाही अधिक होवे तो वह ग्रह आत्मकारक होता है और यदि दो तीन ग्रहोंके अंश कला विकला सब बराबर होवें तो उनमें जो कि

सूत्रके अनन्तर इसकी रचना होती और जो यह कहो कि "विपरीतं केतोः" इसकर केतुकृत विपरीतता सब जगह हो सक्ती है सो भी नहीं क्योंकि "कामस्था" इत्यादि सूत्रके अनन्तर "प्राग्वत्" यह सूत्र होता तौ केतुकृत विपरीतता सब जगह हो सक्ती परन्तु "प्राग्वत्" इस सूत्रके अनन्तर "विपरीतं केतोः" इस सूत्रके रचनेसे "प्राग्वत्" इसी सूत्रमेंही केतुकृत विपरीतता है न कि अन्य जगह और जो यह कहो कि "विपरीतं केतोः" इस सूत्रका अगले "आत्माधिकः" इत्यादि सूत्रमें अन्वय हो सक्ता है सोभी नहीं क्योंकि "अष्टानां वा" यह जो कि पद सूत्रमें पृथक् रचा है इसीके सामर्थ्यसेही राहुको न्यूनांश होनेपर कारकत्वका लाभ हो गया है फिर इस अन्वयकी तौ व्यर्थताही रही और जो यह हो कि "अष्टानां वा" यह पद सूत्रमें अन्यमतसे है सो इसमें कुछ प्रमाण नहीं है ॥

यह अर्गला शुभग्रह तथा पापग्रह दोनोंकेही योगसे होनेवाली कही गई । अब केवल पापग्रहोंके योगसे होनेवाली अर्गलाको कहते हैं ।

कामस्था[१] भूयसा पापानाम् ॥ ६ ॥

पापग्रह अर्थात् सूर्य और कृष्ण पंचमीसे लेकर शुक्ल पंचमीतकका चन्द्रमा और मङ्गल और पापग्रहोंके साथका बुध और शनैश्चर तथा राहु और केतु इनमेंसे तीन वा तीनसे अधिक पापग्रह जिस राशिके तृतीयस्थानपर स्थित होवें तौ उस राशिके देखनेवाले ग्रहके अर्गलासंज्ञक होते हैं । सूत्रमें पापग्रहोंका बाहुल्यं कहनेसे तृतीयस्थानपर एक वा दो पापग्रह होवें तो अर्गला नहीं होती है यह अर्गला पापसंबन्धिनी कही[१] ॥ ६ ॥

क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. झ. ञ. यहांतक और टकारसे लेकर ट. ठ. ड. ढ. ण. त. थ. द. ध. न. यहांतक और पकारसे लेकर प. फ. ब. भ. म. यहांतक और यकारसे लेकर य. र. ल. व. श. ष. स. ह. यहांतक इन चारों पिण्डोंमें राशिभावसूचक अक्षर जिस संख्यापर हो उस संख्याको ग्रहण कर वाम रीतिसे लिखता चला जाय । यदि संख्यामें नकार ञकार आ जावें तो शून्य ले लेवे और यदि व्यञ्जनवर्जित केवल स्वर आजावे तौभी शून्य लेवे । यदि यह संख्या १२ से अधिक होवे तौ १२ का भाग देवे । जो अंक शेष बचे वहही राशिभावसंज्ञक है । उदाहरण--दार इस भावसूचक पदमें दकारकी संख्या ८ है और रकारकी संख्या दो अब दोनोंको वाम गतिसे रखनेसे २८ हुए इनमें १२ का भाग देनेसे ४ बचे यह ही दारभावकी संख्या है अर्थात् चतुर्थस्थान दारसंज्ञक है । इसी प्रकार समस्तभाव जानने चाहिये । संख्याक्रम चक्रमें है । "दारभाग्यशूलस्थाः अर्गला निधातुः" इसमें विसर्गका लो शू करनेपर सन्धि हुई है । यह छान्दस है क्योंकि सूत्र भी छन्दोवत् होते हैं इति ॥

कटपयादिसंख्याचक्रम् .

क १	ख २	ग ३	घ ४	ङ ५	च ६	छ ७	ज ८	झ ९	ञ ०
ट १	ठ २	ड ३	ढ ४	ण ५	त ६	थ ७	द ८	ध ध	न ०
प १	फ २	ब ३	भ ४	म ५					
य १	र २	ल ३	व ४	श ५	ष ६	स ७	ह ८		

१ इस सूत्रकी कोई प्रेमनिधि आदिक पण्डित ऐसी व्याख्या करते हैं । पापग्रहोंके

इसके अनन्तर प्रथम कही हुई अर्गलाके बाधा करनेवाले योगको कहते हैं ।

रिष्फनीचकामस्था विरोधिनः ॥ ७ ॥

जिस राशिका विचार किया जावे उस राशिके देखनेवाले ग्रहके यदि दशमस्थानपर कोई ग्रह होवे तो चतुर्थ स्थानमें स्थित हुए अर्गलाकारक ग्रहका बाधक होता है और बारहवें स्थानपर यदि कोई ग्रह होवे तौ द्वितीय स्थानमें स्थित हुए अर्गलाकारक ग्रहका बाधक होता है और यदि तृतीय स्थानपर स्थित कोई ग्रह होवे तौ ग्यारहवें स्थानपर स्थित हुए अर्गलाकारक ग्रहका विरोधी होता है । भाव यह है कि चतुर्थ, द्वितीय, एकादश स्थानपर स्थित हुए अर्गलाकारक ग्रहोंकी अर्गला तब नहीं होती है जब कि क्रमसे दशम, द्वादश, तृतीय स्थानपर ग्रह स्थित होवें ॥ ७ ॥

इसके अनन्तर अर्गलायोगके दूर करनेवाले योगकेभी दूर करनेवाले योगको कहते हैं ॥

न न्यूना विदलाश्च ॥ ८ ॥

यदि अर्गलाकारक ग्रहोंसे अर्गलाके दूर करनेवाले ग्रह अल्प संख्यावाले हों अथवा अर्गलाकारक ग्रहोंसे अर्गलाके दूर करनेवाले ग्रह निर्बल होवें तो वह अर्गलाके दूर करनेवाले ग्रह अर्गलायोगको दूर नहीं कर सकते हैं । भाव यह है कि जैसे अर्गलाकारक ग्रह दो होवें और अर्गलाके दूर करनेवाला एकही होवे तौ अर्गलायोग रहता है और यदि अर्गलाकारक ग्रहोंसे अर्गलाप्रतिबंधक ग्रह निर्बली होवें तौभी अर्गलायोग रहता है ।

मध्यमें जो अधिक अंशवाला हो वह यदि तृतीय स्थानपर होवे तौ अर्गला होवे है । यह व्याख्या सूत्राक्षरोंसे असंगत प्रतीत होवे है क्योंकि सूत्रसे तौ पापबाहुल्यही सिद्ध होता है । अन्य अर्गलाके बाधक योग हैं परन्तु तृतीयस्थानस्थित बहु पापग्रहोंकर करी हुई अर्गलाका कोई बाधक योग नहीं है इस कारण यह सूत्र पृथक् किया है पूर्वसूत्रमें संमिलित नहीं किया ॥

ऋक्षनाम राशि अपने सन्मुख और पार्श्वराशिको देखते हैं । भाव यह है कि चरसंज्ञक मेष, कर्क, तुला, मकरराशि अपने पंचम, अष्टम, एकादशराशिको देखते हैं और स्थिरसंज्ञक वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भराशि अपने षष्ठ, तृतीय, नवमराशिको देखते हैं और द्विस्वभावसंज्ञक मिथुन, कन्या, धनुः, मीनराशि अपने चतुर्थ, सप्तम, दशमराशिको देखते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर ग्रहोंकाभी द्रष्टृदृश्यभाव कहते हैं ।

तन्निष्ठाश्च तद्वत् ॥ ४ ॥

तिन चरादिराशियोंमें स्थित हुए ग्रहभी उन चरादिराशियोंके समान राशिको देखते हैं । भाव यह है कि जिस प्रकार चरादिराशि अपने अष्टमादि राशियोंको देखते हैं तिसी प्रकार चरादिस्थ ग्रहभी अपनेसे अष्टमादि राशियोंको और उनपर युक्त हुए ग्रहोंको

---

१ इस प्रकारकी दृष्टिमें प्रमाण वृद्धकारिकाका है । "चरं धनं विना स्थास्नु स्थिरमन्त्यं विना चरम् । युग्मं स्वेन विना युग्मं पश्यतीत्ययमागमः ॥" अर्थ—चरराशि अपने द्वितीय स्थिरराशिको छोडकर अन्य समस्त स्थिरराशियोंको देखता है और स्थिरराशि अपने पिछले चरराशिको छोडकर अन्य समस्त चरराशियोंको देखता है और द्विस्वभावराशि अपने प्रथम स्थानको छोडकर अन्य समस्त द्विस्वभाव राशियोंको देखता है । अन्यच्च—"चरा नाग ८ बाणे ५ श ११ राशीन्स्वतो वै स्थिराः षट ६ तृतीयां ३ क ९ राशीन् क्रमेण । स्वतः शैलभं ७ वेदभं ४ पंक्तिभं १० च क्रमाद् द्विस्वभावः प्रपश्यन्ति पूर्णम् ॥', इति राशिषु सिद्धम् ॥

अथ राशिदृष्टिचक्रम्.

	चरसंज्ञक				स्थिरसंज्ञक.				द्विस्वभावसंज्ञक			
द्रष्टा	मं	क.	तु.	म.	वृष	सिं.	वृ.	कुं.	मि.	क	ध.	मी.
दृश्य	५ सिं.	५ वृ	५ कुं.	०५ वृष	०३ कं.	०३ तु.	०३ म.	०६ मे.	४ क	४ ध.	४ मी.	०४ मि.
दृश्य	०८ वृ.	०८ कुं	०८ वृष.	०८ सिं	०६ तु.	०६ म.	०६ मे.	०६ क.	७ ध.	७ मी.	७ मि.	७ क.
दृश्य	११ कु.	११ वृष	११ सिं.	११ त.	०९ म.	०९ मे	०९ क.	०९ तु	१० मी	१० मि.	१० क.	१० ध.

देखता है। जैसे चरराशिपर जो कि ग्रह स्थित हो वह ग्रह अपनेसे अष्टम, पञ्चम, एकादशराशि और अष्टम, पञ्चम, एकादश स्थान-स्थित ग्रहोंको देखता है और जो कि ग्रह स्थिरराशिपर स्थित हो वह षष्ठ, तृतीय, नवमराशि और ग्रहोंको देखता है और जो कि ग्रह द्विस्वभावराशिपर स्थित हो वह चतुर्थ, सप्तम, दशमराशि और ग्रहोंको देखता है ॥ ४ ॥

" शुभार्गले धनसमृद्धिः " इत्यादि प्रथमाध्यायके तृतीयपादमें आया है कि शुभ अर्गल होवे तो धनकी वृद्धि होवे है सो अर्गल किसका नाम इसीको कहते हैं।

दारभाग्यशूलस्थार्गला निधातुः ॥ ५ ॥

जिस राशिका विचार किया जावे उस राशिका निधाता नाम जो कि देखनेवाला है उससे दार नाम चतुर्थ और भाग्य नाम द्वितीय और शूलनाम एकादश स्थानपर जो ग्रह होवें वे ग्रह विचार किये जानेवाले राशिके देखनेवाले ग्रहके अर्गलासंज्ञक होते हैं। अर्गलाको कर्तरीभी कहते हैं[२] ॥ ५ ॥

---

१ इस प्रकार ग्रहदृष्टिमें वृद्धवाक्य प्रमाण है। "चरस्थं स्थिरगः पश्येत्स्थिरस्थं चरराशिगः उभयस्थं तूभयगो निकटस्थं विना ग्रहम् ॥" अर्थ -स्थिरराशिपर स्थित हुआ ग्रह चरराशिपर स्थित हुए ग्रहको देखता है परन्तु निकटके चरराशि-पर स्थित हुए ग्रहको नहीं देखता है इसी प्रकार निकटके स्थिरराशिपर स्थिर हुए ग्रहको छोडकर अन्य स्थिरराशिपर स्थित हुए ग्रहको चरराशिपर स्थित हुआ ग्रह देखता है और साथके द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रहको छोडकर द्विस्वभावराशिस्थ ग्रह शेष द्विस्वभावस्थ ग्रहको देखता है ॥

२ "निधातुः" इस सूत्र पदकी व्याख्या स्वाम्यादि आचार्योंने तो "फल धातुः" इस प्रकार की है परन्तु यहांपर वृद्धावाक्यसे "द्रष्टुः" इस प्रकारही अभिप्रेत है क्योंकि कहा है। "भग्य २ पुण्य ११ विना ४ भावाद् द्रष्टृ राहुः शुभार्गलम् ।" इस ग्रंथमें कटपयादि क्रमकरके अंक ग्रहण करने योग्य हैं क्योंकि उन्हीं अंकोंसे राशिभावज्ञान होता है। कटपयादि क्रमसे आये हुए अंक १२ से अधिक होवें तो १२ के भागसे बचा हुआ राशिभाव जानना। कटपयादि क्रमसे अंक ग्रहण करनेमें प्राच्यकारिका प्रमाण है। "कटपयवर्गभवैरिह पिंडान्त्यैरक्षरै-रंकाः। नञि च शून्यं ज्ञेयं तथा स्वरे केवले कथितम् ॥" अर्थ--ककारसे लेकर

बली होवे सोही आत्मकारक होता है और दो तीन ग्रहोंके अंशादिककी समता होनेपर बलवान् स्थिरकारकसेही तत्तत्कारकोंका विचार करने योग्य है। जैसे प्रथम आत्मकारकके देखनेमेंही दो तीन ग्रहोंके अंशादि समान होवें तो उनमें जो कि बली होय उससेही आत्मकारक जाने इसी प्रकार अन्य कारकोंका विचार करे ॥ ११ ॥

शंङ्का-"आत्माधिकः कलादिभिर्नभोगोष्टानाम्" ऐसा पाठ थोडा होनेसे होवो? समाधान-सूत्रमें "अष्टानां वा" इस अधिक पदके स्थित होनेसे सर्व ग्रहोंके अंशोंसे राहुके कम अंश होनेकरही आत्मकारकता होती है इस वार्ताके जतानेके लिये "अष्टानां वा" यह पद पृथक् कहा है। क्योंकि राहुकी विपरीत गति होनेसे राहुके कम अंशहोनेकरही राहुकीअधिकता है।'नभोगोष्टानाम्'ऐसा यदि पाठहोता तौ अन्य ग्रहकी रीतिकर राहुकीभी अधिकता प्रतीत होसक्ती सोहै नहीं इस कारण राहुकी न्यूनताही अधिकता मानी जाती है। दूसरा कारण यह है कि जब कि दो तीन ग्रहोंका ब्रह्मत्व योगमें प्रसंग होता है तब "राहोर्योगे विपरीतम्"इस द्वितीयाध्यायके प्रथमपादसंबन्धी५० सूत्रकर राहुके योगमात्रसे ही कम अंशवाला ग्रह ब्रह्मा होता है फिर स्वयं राहुको कम अंश होनेसे कारक होनेमें क्या आश्चर्य है। यहांपर वृद्धवाक्यभी है कारकनिर्णयमें "भागाधिकः कारकःस्यादल्पभागोऽन्त्यकारकः। मध्यांशो मध्यखेटः स्यादुपखटेः स एव हि ॥" कदाचित् कहो कि इस वृद्धवाक्यसे तौ ऐसा नहीं प्रतीत होता है कि राहु अल्पांश होनेपर आत्मकारक होता है तहां कहते हैं कि शास्त्रप्रसिद्ध होनेसे बालभी ऐसा जानते हैं कि राहु अल्पांशही अधिक माना जाता है इसी कारण पृथक् करके नहीं कहा है। राहुके अल्पांश होनेपर कारकत्व होनेमें वृद्धवाक्यान्तरभी है "मेषाद्यपसव्यमार्गेण राहुकेतू न कारकौ।" अर्थ-राहु केतू दक्षिणमार्ग अर्थात् मेषवृषादि क्रमकरके कारक नहीं हो सके किन्तु विपरीत क्रमकरके कारक होते हैं। कारकनिर्णयमें राशियोंकी अधिकता अपेक्षित नहीं है किन्तु अंशादिकी अधिकता अपेक्षित है यह संप्रदाय है। अथवा अंशादिककर दो ग्रह बराबर होवेंगे तौ सप्तम कारक नहीं होगा इस कारण राहुका भी ग्रहण किया है। "अष्टानां वा" इस पदके द्वारा और जो कि प्रेमनिधि आदिकोंने "विपरीतं केतोः" इस सूत्रका "आत्माधिकः" इस सूत्रमें देहलीदीपकन्यायकर अन्वय किया है सो अयुक्त है। क्योंकि सूर्यादिक्रम त्यागकर प्रथम केतुका निरूपण करना अयोग्यहै और ऐसा अर्थभी नहीं हो सकता कि राहुकी अंशाधिकतासे कारकता है और केतुजी अल्पांशतासे कारकता है क्योंकि राहु केतुके अंशादि बराबर रहते हैं। शंका-ग्रह तो नौ हैं फिर सूत्रमें "नवानाम्" ऐसा क्यों नहीं कहा ? समाधान-राहु केतु अंशादि समान होते हैं इस कारण अन्यकारक नहीं हो सक्ता उसीसे "अष्टानाम्" यह पाठ सूत्रमें उचित है॥

इसके अनन्तर आत्मकारकका उत्कर्ष कहते हैं ।

स ईष्टे बन्धमोक्षयोः ॥ १२ ॥

सो यह कहा हुआ आत्मकारक नीच राशि पापयोगसे बन्धनका स्वामी होता है और उच्चादि राशि शुभयोगसे मोक्षका स्वामी होता है । भाव यह है कि नीच तथा पापग्रहसे मुक्त होकर आत्मकारक अपने दशान्तर्दशामें बंधनादि दुःख देनेवाला होता है और उच्चादि शुभग्रहसे युक्त होकर आत्मकारक अपने दशान्त-र्दशामें अन्यग्रहके बलसे बंधे हुएका भी मोक्षणकर्त्ता होवे है अथवा आत्मकारक प्रतिकूल होकर पापकर्म प्रवृत्तिद्वारा संसाररूप बन्धन देनेवाला होता है और अनुकूल होकर ज्ञान काशीवासादि साधनोंकर मोक्षकर्त्ता होवे हैं ॥ १२ ॥

इसके अनन्तर अमात्यकारक कहते हैं ।

तस्यानुसरणादमात्यः ॥ १३ ॥

उस आत्मकारक ग्रहसे जो कि न्यून अंशादिवाला ग्रह है वह अमात्यकारक होता है । भाव यह है कि आत्मकारकसे जिस ग्रहके अंश कलादि कम होवें वह ग्रह अमात्यकारक होता है । अमात्यकारक ग्रह उच्चादिमें स्थित हो वा शुभग्रहसे युक्त होवे तौ राजा वा मन्त्री वा स्वामी इत्यादिकोंसे सुख होता है और नीचादि स्थानमें स्थित हो वा पापग्रहसे युक्त हो तो राजादिकोंसे अधिक दुःखादि होता है ॥ १३ ॥

इसके अनन्तर भ्रातृकारक कहते हैं ।

तस्य भ्राता ॥ १४ ॥

और उस अमात्यकारक ग्रहसे जिस ग्रहके अंशादि कम होवें वह भ्रातृकारक होता है । भ्रातृकारकसे भ्रातादि सुखदुःखादिका निर्णय होता है ॥ १४ ॥

इसके अनंतर मातृकारक कहते हैं ।

तस्य माता ॥ १५ ॥

इसके अनंतर फलविशेषके जनानेके लिये राशियोंका पद नाम आरूढस्थान कहते हैं ।

यावदीशाश्रयं पदमृक्षाणाम् ॥ २९ ॥

येत् ॥" अर्थ तो पूर्व कहही दिया है। "प्रायेण" इसी पदसे यहभी जनाया गया है कि वृश्चिक और कुम्भके दो २ स्वामी हैं। प्रमाण वृद्धवाक्य है। "कुजसौरी केतुराहू राजानावलिकुम्भयोः। कुशसौरी केतुराहू युक्तौ तत्र स्थितौ यदि ॥ वर्षद्वादशकं तत्र न चेदेकं वीनिर्दिशेत्।" अर्थ–वृचिक राशिके मंगल और केतु दोनों राजा हैं और कुम्भराशिके शनैश्चर और राहु ये दोनों राजा हैं भाव यह है कि वृश्चिक राशिका राजा मंगल और केतु दोनोंमेंसे अकेला नहीं हो सकता किन्तु दोनोंही राजा हैं। ये दोनों मिलकर अपने राशिपर स्थित होवें तो उस राशिके बारह वर्ष होते हैं औ यदि अपने राशिपर एकही एक स्थित होवे तो स्वामी नहीं है और उस राशिके बारह वर्षभी नहीं हो सकते और यदि जिस स्थानमें ये दोनों मिलकर स्थित होवें तो उस स्थानतक गिननेसे जितनी संख्या होवे वह वर्ष इन वृश्चिक मकर राशियोंके होते हैं और जो दोनों स्वामी भिन्न २ स्थानोंपर स्थित होवें तो उनमें जो कि स्वामी बलवान् होवे उस स्वामीके स्थानतक गिननेसे राशिके वर्ष ग्रहण करे ऐसा वृद्धोंने कहाभी है। "द्विनाथक्षेत्रयोरत्र निर्णयः कथ्यतेऽधुना। एकः स्वक्षेत्रगोऽन्यस्तु परत्र यदि संस्थित ॥ तदान्यत्र स्थितं नाथं परिगृह्य दशां नयेत्।", अर्थ–दो स्वामियोंके राशिका निर्णय कहा है। एक ग्रह तो अपने राशिपर स्थित होवे और दूसरा अन्य राशिपर स्थित होवे तो जो कि ग्रह अन्य राशिपर स्थित है उसतक गिनकर दो स्वामीवाले राशिकी दशा लावे। "द्वावप्यन्यर्क्षगौ तौ चेत्स ग्रहो बलवान् भवेत्। ग्रहयोगसमानत्वे चिन्त्यं राशिबलाद्बलम् ॥ चरस्थिरद्विस्वभावाः क्रमात्स्युर्बलशालिनः। राशिसत्त्वसमानत्वे बहुवर्षो बली भवेत् ॥" अर्थ–जो दोनों स्वामी अपने राशिसे अन्य राशिपर स्थित होवें तो उनमें जो कि बलवान् हो उसतक गिनकर राशिके वर्षोंका निश्चय करे। यदि दोनों स्वामी बलवान् होवें तो राशिबलसेही बल जाने अर्थात् जो ग्रह राशिबलसे बली होवे उसतक गिनकर राशिवर्षोंका निर्णय करे और यदि दोनों स्वामियोंका राशिबलभी समान होवे तो जिस ग्रहतक गिननेसे अधिक वर्ष आवें उस ग्रहतक गणना करे। चर स्थिर द्विस्वभाव यह राशि क्रमसे बली होते हैं। भाव यह है कि चरसंज्ञक राशिसे स्थिरसंज्ञक राशि बली है और स्थिर राशिसे द्विस्वभावराशि बली है। "एकः स्योच्चगतस्त्वन्यः परत्र यदि संस्थितः। ग्राहयेदुच्चखेटस्थं राशिमन्यं विहाय वै ॥ नाथान्ता इति रीत्या यो बहुवर्पवतीं दशाम्। करोति बहुवर्षोऽसौ स्वराशेर्दु-

जितनी संख्यापर जिस राशिका स्वामी हो उस स्वामीसे उतनी संख्यापर जो कि राशि होवे वह राशि उस राशिका आरूढस्थान होता है । भाव यह है कि जिस राशिका स्वामी अपनी राशिसे जितनी संख्यापर हो उतनी संख्या स्वामीसे लेकर जहां

रगः खगः ॥ एवं सर्वं समालोच्य जातस्य निधनं वदेत् ।'' अर्थ-दोनों स्वामियोंमें एक स्वामी उच्चका होवे और दूसरा अन्य स्थानपर होवे तो उस स्वामीतक गिने जो कि उच्चका होवे और यदि दोनों स्वामियोंमें एक उच्चका होवे और दूसरा बहुत वर्षोंवाला होवे तोभी उसी ग्रहतक गणना करे जो कि ग्रह उच्चका होवे इस प्रकार दशा विचार करके उत्पन्न हुएका निधन कहे औरभी वृद्धोंने राशिबल कहा है । ''न्यासयोर्ग्रहहीनत्वे वैकस्यान्पेन संयुतौ । ग्राह्यो राशिर्ग्रहाभावस्तत्स्वाम्युच्चं गतो यदि ॥ एकत्र स्वर्क्षगः खेटश्चान्यत्र द्वौ ग्रहौ यदि । ग्रहद्वययुतिं हित्वा ग्राहयेत्पूर्वभं सुधीः ॥'' अर्थ-लग्न और सप्तमस्थान इन दोनोंमें ग्रह न होवे अथवा दोनोंके मध्यमें एक स्थानपर स्वामीके विना कोई ग्रह होवे तो उन दोनोंमें जो कि राशि न्यायकर निर्बल होवे वहही राशि तब बलवान् होता है । जब कि उस राशिका स्वामी उच्चका होवे तो और अन्य ग्रहयुक्त राशि बलवान् नहीं हो सकता और एक राशिमें तो स्वक्षेत्री ग्रह होवे और अन्य राशिमें दो ग्रह होवें तो उनमें जो कि राशि स्वामियुक्त होवे वही राशि बलवान् होता है न कि दो ग्रहयुक्त राशि बलवान् हो सकता है । राशियोंके स्वामी तथा उच्च अन्य जातकसे जानने । '' क्षितिजसितज्ञचंद्ररविसौम्यसितावनिजाः । सुरगुरुमंदसौरिगुरवश्च ग्रहांशकपाः ॥ '' अर्थ-मंगल, शुक्र, बुध, चंद्र सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनैश्चर, शनैश्चर, बृहस्पति, ये क्रमसे मेषादि राशियोंके स्वामी हैं । ''अजवृषभमृगांगनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः । दशशिखिमनुयुक्तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः ॥ '' अर्थ-सूर्य मेषके १० अंशतक, चन्द्रमा वृषके ३ अंशतक, मंगल मकरके २८ अंशतक, बुध कन्याके १५ अंशतक, बृहस्पति कर्कके ५ अंशतक, शुक्र मीनके २७ अंशतक, शनैश्चर तुलाके २० अंशतक उच्चका होता है और यही ग्रह सातवें राशिमें नीच होता है । इस प्रकार ग्रह और राशिबलका चरदशामें विचार करे ''पंचमें पदक्रमात् प्राक्प्रत्यक्त्वम्'' इस द्वितीय अध्यायके तृतीयपादके २८ सूत्रके अभिप्रायसे जो लग्नसे नवममें विषमपद होवे तो तनु, धन, भ्रातृ, सुहृद आदिकोंकी दशाका भोग होता है और यदि समपद होवे तो तनु, व्यय, आय, कर्म आदिकोंकी दशाका भोग होता है । दशाके आरम्भकी अवधि है । ''चरदशायामत्र शुभः केतुः'' इस द्वितीयाध्यायके तृतीय पादके २८ सूत्रके अभिप्रायसे इस दशाका नाम चरदशा है ॥

अधिक बली भौम और भौमसे बुध और बुधसे बृहस्पति और बृहस्पतिसे शुक्र और शुक्रसे चन्द्रमा और चन्द्रमासे सूर्य अधिक बली हैं[1] ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर चर दशाके वर्ष साधनेमें उपयोगी होनेसे विषम समराशिभेद कर गणना कहते हैं ।

प्राची वृत्तिर्विषमभेषु ॥ २५ ॥

विषमसंज्ञक जो कि मेष; मिथुन, सिंह, तुला, धनु:, कुम्भ ये राशि हैं । इनके विषे क्रमसे गणना होती है । जैसे मेष, वृष, मिथुन इत्यादि रीतिसे ॥ २५ ॥

परावृत्त्योत्तरेषु ॥ २६ ॥

उत्तर नाम समराशि अर्थात् जो कि वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन ये राशि हैं इन राशियोंके विषे उलटे क्रमसे गणना होती है । जैसे वृष, मेष, मीन, कुम्भ इत्यादि रीतिसे गणना होती है ॥ २६ ॥

इसके अनन्तर क्रमव्युत्क्रमगणनाकी विपरीतता कहते हैं ।

न क्वचित् ॥ २७ ॥

कहीं विषमराशियोंके विषे क्रम नहीं है और कहीं समराशियोंके विषे व्युत्क्रम नहीं है । भाव यह है विषमराशि सिंह और कुम्भमें क्रमसे गणना नहीं होती है किन्तु उलटे क्रमसे गणना होती है और समराशि वृष और वृश्चिकमें उलटे क्रमसे गणना नहीं होती किन्तु सीधे क्रमसे गणना होती है[2] ॥ २७ ॥

---

१ ग्रहोंका निसर्ग बल बृहज्जातकमें कहा है । "शकुज्ञगुभृचराद्यावृद्धितो वीर्यवन्तः ।" अर्थ-शनैश्चर, कुज, बुध, बृहस्पति, शुक्र, चंद्र, सूर्य ये क्रमसे एक दूसरेसे अधिक बली हैं ॥

२ शंका सूत्रमें तो क्वचित्पदका प्रयोग है । सिंह कुम्भ और वृश्चिक वृष इन राशियोंकातो ग्रहण नहींहै फिर भावार्थमें सिंहकुम्भ और वृष वृश्चिकका कैसेग्रहण हो? समाधान-परंपराकर वृद्धोंसे सुना है।"क्रमाद् वृषे वृश्चिके च व्युत्क्रमात्कुम्भसिंहयोः ।" अर्थ-वृषवृश्चिकके विषे क्रमसे और सिंह कुम्भके विषे उलटे क्रमसे

इसके अनन्तर तत्तद्राशिके दशावर्ष लानेके लिये अवधि दिखाते हैं।

नाथान्ताः समाः प्रायेण ॥ २८ ॥

राशिके स्वामिपर्यन्त जितनी संख्या होवे उतनेही वर्ष उस राशिके बहुधाकर होते हैं। भाव यह है कि जिस राशिका स्वामी उस राशिसे जितनी संख्यापर हो उतनेही वर्ष उस राशिके चरदशामें होते हैं। जैसे मेषराशिका स्वामी मंगल मेष राशिसे द्वितीयस्थानपर होवे तो एक वर्ष तृतीयपर होवे तो दो वर्ष इसी क्रमसे बारहवें होवें तो ग्यारह वर्ष मेष राशिके चरदशामें माने जांयगे और यदि स्वामी उसी निजराशिमें स्थित होवे तो बारह वर्ष उस राशिके माने जावेंगे[1] ॥ २८ ॥

गिने १। शंका--इन सूत्रोंका तो फलितार्थसंग्रह यह हुआ। "मेषादित्रित्रिभैर्ज्ञेय पदमोजपदे क्रमात्। दशाब्दानयने कार्या गणना व्युत्क्रमात्समे ॥" अर्थ--मेषादि तीन २ राशियोंका पद होता है। विषमपदमें तो क्रमसे गिने और समपदमें दशा वर्ष लानेमें उलटे क्रमसे गिने १। इस फलितार्थसे "प्राची वृत्तिर्विषमपदे, परावृत्त्योत्तरे" इस प्रकार दोही सूत्र कहने थे फिर इस प्रकार कैसे नहीं कहे। जो इतना फेरकर अर्थ तीन २ सूत्रोंमें किया। समाधान--"यावदीशाश्रयपदमृक्षाणाम्" इस सूत्रके वक्तव्य होनेसे संदेहके भयसे नहीं कहा और "मातृधर्मयोः सामान्यं विपरीतमोजकूटयोः" इस द्वितीयाध्यायके चतुर्थपादके २२ सूत्रके वक्तव्य होनेसेभी नहीं कहा ॥

१ स्वामीके निज राशिमें स्थित होनेसे उस राशिके बारह वर्ष होते हैं। इसमें वृद्धवचन प्रमाण है। "तस्मात्तदीशपर्यन्तं संख्यामत्र दशां विदुः। वर्षद्वादशकं तत्र न चेदेकं विनिर्दिशेत् ॥" अर्थ--राशिके वर्ष वह जानने जो कि संख्या स्वामिपर्यन्त होवे और जो स्वामी राशि एकही स्थानमें स्थित होवे तो उस राशिके बारह वर्ष जानने और जो स्वामी अपनी राशिमें स्थित न होवे तो एकही वर्ष ग्रहण करे ऐसा कोई एक आचार्य कहते हैं। इसी कथनसे "प्रायेण" इस सूत्रपदसे "नाथान्ताः समाः" इसका निषेध जनाया गया है और सूत्रमें "प्रायेण" यह जो कि पद विद्यमान है इसकर यह जनाया गया कि जो स्वामी उच्च होवे तो दशामें राशिका एक वर्ष बढ जाता है और जो स्वामी नीच होवे तो राशिका एक वर्ष छट जाता है सो वृद्धोंने कहाभी है। "उच्चखेटस्य सद्भावे वर्षमेकं विनिःक्षिपेत्। तथैव नीचखटस्य वर्षमेकं विशोध-

मातृकारक ग्रहसे जिस ग्रहके अंशकलादि कम होवें वह मातृकारक होता है । मातृकारकसे मात्रादिसुखदुःखादिका निर्णय होता है ॥ १५ ॥

इसके अनंतर पुत्रकारक कहते हैं ॥

तस्य पुत्रः ॥ १६ ॥

मातृकारक ग्रहसे जिस ग्रहके अंशकलादि कम होवें वह पुत्रकारक होता है । पुत्रकारकसे पुत्रादि सुखदुःखादिका निर्णय होता है ॥ १६ ॥

इसके अनंतर ज्ञातिकारक कहते हैं ।

तस्य ज्ञातिः ॥ १७ ॥

पुत्रकारकसे जिस ग्रहके अंशकलादि कम होवें वह ग्रह ज्ञातिकारक होता है । ज्ञातिकारकसे ज्ञातिका निर्णय होता है ॥ १७ ॥

इसके अनंतर दारकारक कहते हैं ।

तस्य दाराश्च ॥ १८ ॥

ज्ञातिकारक ग्रहसे जिस ग्रहके अंशकलादि कम होवें वह ग्रह स्त्रीकारक होता है । स्त्रीकारकसे स्त्रीसंबंधी विचार कर्त्तव्य है॥१८॥

इसके अनंतर पुत्रकारकको मतांतरसे कहते हैं ।

मात्रा सह पुत्रमेके समामनन्ति ॥१९॥

मातृकारकसेही पुत्रकारकका विचार कर्त्तव्य है ऐसा कोई आचार्य कहते हैं अर्थात् मातृपुत्रकारकोंको एकही कहते हैं ॥१९॥

इस प्रकार चरकारक कहनेके अनंतर स्थिरकारक कहते हैं तिनमें प्रथम भगिन्यादिकारकोंको दिखाते हैं ।

भगिन्यारतः श्यालः कनीयाञ्जननी चेति ॥२०॥

और नाम मंगलसे भगिनी नाम बहिनी और शाला और छोटा

---

१ सूत्रमें चकार नहीं कहे हुएके कहनेके अर्थ है समस्थिरकारक पदोपपदादिसेभी स्त्रीविचार कर्त्तव्य है । केवल दारकारकसेही नहीं इस वार्त्ताको चकार जनाता है ॥

भ्राता और जननी नाम माता यह सब विचारे । यदि मंगल उच्चादिस्थानमें वा शुभग्रहयुक्त होवे तौ भगिनी आदिका सुख कहना और यदि नीचादि पापग्रहयुक्त होवे तौ भगिन्यादिका दुःख कहना इसी प्रकार अन्य जगहभी विचार कर्त्तव्य है ॥ २० ॥

इसके अनंतर मातुलादिकारकोंको कहते हैं ।

मातुलादयो बन्धवो मातृसजातीया इत्युत्तरतः ॥२१॥

भौमसे उत्तर जो कि बुध है तिससे मातुल और आदिपदसे मामाके भ्राता भगिनी आदिक और बन्धुजन और माताकी सपत्नी यह विचारे ॥ २१ ॥

इसके अनन्तर पितामहादिकारकोंको कहते हैं ।

पितामहः पतिपुत्राविति गुरुमुखादेव जानीयात् ॥२२॥

गुरुमुख नाम बृहस्पत्यादिकसे पितामह नाम पिताका पिता और स्वामी और पुत्र यह सब विचारे । भाव यह है कि बृहस्पति से पिताका पिता और शुक्रसे स्वामी और शनैश्चरसे पुत्रका विचार कर्त्तव्य है ॥ २२

इसके अनंतर पत्न्यादि स्थिरकारक कहते हैं ।

पत्नीपितरौ श्वशुरौ मातामहा इत्यन्तेवासिनः॥२३॥

अंतेवासी अर्थात् बृहस्पतिसे उत्तर जो कि शुक्र है उससे स्त्री और माता तथा पिता वा श्वश्रू और श्वशुर और माताका पिता यह सब विचारने योग्य है ॥ २३ ॥

जब कि दो तीन ग्रहोंके अंशकलादि समान होते हैं
तब निसर्ग बलसेही कारक विचारा जाता है इस
कारण निसर्गबल कहते हैं ।

मन्दोज्यायान् ग्रहेषु ॥ २४ ॥

मन्द नाम शनैश्चर सातों ग्रहोंमें दुर्बल है । भाव यह है कि निसर्गबलमें शनैश्चरादिक उत्तरोत्तर बली हैं । जैसे शनैश्चरसे

समाप्त होवे वह स्थान उस राशिका आरूढस्थान होता है[1] ॥ २९ ॥
इसके अनन्तर आरूढपदका उदाहरण दो सूत्रोंसे कहते हैं ।

स्वस्थे दाराः ॥ ३० ॥

लग्नसे चतुर्थ स्थानमें लग्नस्वामी स्थित होवे तौ सप्तमस्थ राशि लग्नका आरूढस्थान है ॥ ३० ॥

सुतस्थे जन्म ॥ ३१ ॥

लग्नसे लग्नस्वामी सुत नाम सप्तमस्थानमें स्थित होवे तौ लग्नका आरूढपद लग्नराशिही होता है ॥ ३१ ॥

इसके अनन्तर भावराशियोंके वर्णदस्थान कहते हैं ।

सर्वत्र सवर्णा भावा राशयश्च ॥ ३२ ॥

समस्त भाव और राशि अपने वर्णद राशियोंसे संयुक्त होते हैं । भाव यह है कि जिस भावका विचार करे उसका वर्णदराशि देखे कि और जिस राशिका विचार करे उसकाभी वर्णदराशि देखे क्योंकि भाव और राशिके सब प्रकारके विचार करनेमें वर्णद राशिकीभी अपेक्षा होती है[3] । वर्णदराशिके बनानेका

---

१ आरूढस्थानका निर्णय वृद्धोंनेभी कहा है । "लग्नाद्यावतिथे तिष्ठेद्राशौ लग्नेश्वरः क्रमात् । ततस्तावथितं राशिं जन्मारूढं प्रचक्षते ॥" अर्थ–लग्नसे जितनी संख्यावाले राशिपर लग्नस्वामी स्थित हो उस स्वामीसे उतनीही संख्यावाला राशि लग्नका आरूढपद होता है ॥

२ इस उदाहरणमें और भी प्रमाण है । "यदा लग्नाधिपो लग्ने सप्तमे वा स्थितो यदि । आरूढं लग्नमेवात्र निर्दिशेत्कालवित्तमः ॥ अर्थ–जब कि लग्नस्वामी लग्नमें अथवा सप्तम स्थानपर स्थित होवे तौ लग्नका आरूढपद लग्नराशि होता है ऐसा ज्योतिषी कहते हैं । "स्वस्थे दाराः, सुतस्थे जन्म" इन आरूढस्थानके उदाहरणरूप सूत्रोंकी जो कि कोई आचार्योंने यह व्याख्या की है कि लग्नस्वामी चतुर्थ स्थानमें स्थित होवे तो स्त्रियोंका विचार करे और लग्नस्वामी सप्तम स्थानमें स्थित होवे तो मातृ-जन्मका विचार करे सो यह व्याख्या असंगत है ॥

३ वर्णदराशिसे वृद्धोंने फलभी कहाहै । "पापदृष्टिः पापयोगो वर्णदस्य त्रिकोणके । यदि स्यात्तर्हि तद्राशिपर्यंतं तस्य जीवनम्॥रुद्रशूले तथैवायुर्मरणादि निरूप्यते । तथैव वर्णदस्यापि त्रिकोणे पापसंगमे ॥" अर्थ-वर्णदराशिके पंचम नवम स्थानमें

यह प्रकार है कि जो विषमराशिमें जन्मलग्न होवे तौ मेषसे क्रमपूर्वक जन्मलग्नतक गिने और समराशिमें जन्मलग्न होवे तौ मीनसे उलटे क्रमसे अर्थात् मीन कुम्भ इस रीतिसे जन्मलग्नतक गिने जो कि अंक आवे उसको पृथक् रखदेवे फिर होरालग्नको देखे कि होरा लग्न विषमराशिमें है अथवा समराशिमें है। यदि होरालग्न विषमराशि में होवे तौ मेष वृष इत्यादि रीतिसे होरालग्नतक गिने और यदि समराशिमें होवे तौ मीन कुम्भ इत्यादि रीतिसे होरालग्नतक गिने। जो अंक आवे उसको पृथक् रख देवे। यदि जन्मलग्न और होरा लग्न दोनों स्त्रीसंज्ञक वा पुरुषसंज्ञक होवें तौ उन आये हुए दोनों अंकोंको जोड देवे और यदि जन्मलग्न और होरालग्नमें एक स्त्रीसंज्ञक होय और दूसरा पुरुषसंज्ञक होय तौ उन दोनों अंकोंको परस्पर घटावे। जो अंक जोडनेसे अथवा घटानेसे आवे वह यदि १२ से अधिक होवे तौ १२ का भाग देवे जो बचे उतनी संख्या यदि

पापग्रहोंकी दृष्टि अथवा योग होवेतौ उसी राशिकी दशापर्यन्त उसका जीवन होताहै और रुद्रसंज्ञक ग्रह जोकि अगाडी कहा जायगा उसके शूलयोगमें आयुका मरणादि कहा है और वर्णदराशिके नवम पंचम राशि यदि पापयुक्त होवें तौ उसी राशिके दशापर्यन्त मरण कहा है। अन्यच्च—"वर्णदात्सप्तमाद्राशेः कलत्रादि विचिन्तयेत् एकादशादग्रजं तु तृतीयात्तु यवीयसम्॥पंचमे तनुजं विद्यान्मातरं तुर्यपंचमे।पितुस्तु नवमान्मातुः पंचमाद्वर्णदस्य तु॥ शूलराशिदशायां वै प्रबलायामरिष्टकम्।" अर्थ—वर्णद राशिसे जो कि सप्तम राशि है उसमें कलत्रादिको विचारे और ग्यारहवें राशिसे बडे भ्राता और तृतीय राशिसे छोटे भ्राताओंको विचारे और पंचम राशिसे पुत्रको विचारे और चतुर्थ और पंचमसे माताको और नवमसे पिताको विचारे। वर्णदराशिसे पंचम राशिसे शूलदशा प्रबल होनेपर माताको अरिष्ट होता है और वर्णराशिसे नवमराशिसे शूलदशा प्रबल होनेपर पिताको अरिष्ट होता है। कोई आचार्य इस सूत्रकी यह व्याख्या करते हैं इस समस्त ग्रंथमें भाव और राशि वर्णोंमें प्रतीत होते हैं। भाव यह है कि इस समस्त ग्रंथमें जो कि भाव राशि कहे जावेंगे उनकी प्रतीत अन्य शास्त्रके समान नहीं किन्तु एकादि संख्याके जतानेवाले अक्षरोंसे जाने जाते हैं। यह व्याख्या संमत नहीं क्योंकि "सिद्धमन्यत्' इस अगाडी कहे जानेवाले सूत्रके अभिप्रायसे शिवतांडवादि ग्रंथोंमें कटपयादि वर्णोंद्वारा जनाई हुई संख्या प्रसिद्ध है। इससे वर्णपद राशिपर है ऐसा जतानेके लिये यह सूत्र कहा है॥

जन्मलग्न विषम होवे तौ मेष वृषादि क्रमसें और यदि जन्मलग्न सम होवे तौ मीन कुम्भ इत्यादि क्रमसे जिस राशिपर समाप्त होवे वह राशि जन्मलग्नका वर्णदराशि होता है ॥ ३२ ॥

१ वर्णदराशिके बनानेकी रीति इसी प्रकार वृद्धोंने कही है। "ओजलग्नप्रसूतानां मेषादेर्गणयेत् क्रमात्। युग्मलग्नप्रसूतानां मीनादेरपसव्यतः ॥ मेषमीनादितो जन्मलग्नान्तं गणयेत्सुधीः। तथैव होरालग्नान्तं गणयित्वा ततः परम् ॥ पुंस्त्वेन स्त्रीतया वैते सजातीये उभे यदि। तर्हि संख्ये योजयति वैजात्ये तु वियोजयेत् ॥ मेषमीनादितः पश्चाद्यो राशिः स तु वर्णदः।" इन्ही श्लोकोंके अर्थसे टीकामें वर्णद राशि बनानेकी रीति लिखी है इस कारण इनका अर्थ यहां प्रत्येक श्लोकानुसार नहीं किया। अब वर्णद दशाके बनानेकी रीति लिखते हैं। होरा और लग्नराशिमें जो राशि निर्बल होवे उससे वर्णद दशाका आरम्भ होता है क्योंकि कहाभी है। "होरालग्नभयोर्वेया दुर्बलाद्वर्णदा दशा।" वर्णदशाके बतलानेका विधानभी वृद्धोंने कहा है। "यत्संख्या वर्णदो लग्नात्तत्तत्संख्याक्रमेण तु क्रमव्युत्क्रमभेदेन दशास्या(पुरुषस्त्रियोः ॥" अर्थ-लग्नसे जिस संख्यापर वर्णद राशि होवे सोई सोई संख्या क्रमसे विषम सम लग्नके अनुसार करके तिन २ राशियोंकी दशा होवे है। भाव यह है कि जिस प्रकार कि "नाथान्ताः" इत्यादि सूत्रमें अपने २ राशिके स्वामी पर्यन्त वर्ष लाये गये हैं। तिसी प्रकार यहां लग्न से ही अपने वर्णद राशिपर्यन्त वर्ष लाये जाते हैं। जैसे लग्न मेष है और उसका वर्णद राशि मिथुन है। मेष विषमराशि है इस कारण क्रमसे मिथुनराशितक गिननेसे दो संख्या हुई ये वर्ष मेषलग्नके हुए और यदि लग्न समराशिमें होता तौ लग्नसे उलटे क्रमसे वर्णद राशिसे गिननेसे जो संख्या आती वही वर्ष लग्नके माने जाते। इसी प्रकार धनादि भावोंके राशियोंके वर्णद निकालकर वर्णद राशितक धनादि भावोंसे पूर्वोक्त रीतिसे गिननेसे जो संख्या आवे वही धनादि भावोंके दशावर्ष होवेंगे। यदि वार्त्ता सूत्रमें जो कि सर्वत्र पद है उससे जनाई है। यदि कहो कि वर्णदका बनाना और वर्णदशाका बनाना सूत्रसे नहीं सिद्ध होता फिर यहां कैसे कहा है। समाधान-" सिद्धमन्यत् " इस सूत्रभिप्रायसे अन्य ऋषियोंके शास्त्रद्वारा वर्णद और वर्णद दशाका निश्चय होनेसे यहां सूत्रमें नहीं कहा और तिसी प्रकार है। अन्य शास्त्रके मतसे गुलिकका भी निश्चय किया जाता है। जिस प्रकार कि वर्णराशि लग्नके विषम सम होनेसे मेष मीनादि गणना करके जन्मलग्न होरालग्न पर्यन्त संख्यावंशसे लाया जाता है तिसी प्रकार भावलग्नको जन्मलग्न कल्पना कर भावका वर्णदराशि बनाना चाहिये। भावलग्नका तथा होरालग्नका बनाना वृद्धोंने कहा है। "सूर्योदय समारभ्य घटिकानां तु पंचकम्। प्रयाति जन्मपर्यन्तं भावलग्नं तथैव च ॥ तथा सार्द्धं द्विघटिकामितात्कालाद्विलग्नभात्। प्रयाति लग्नं तन्नाम होरालग्नं प्रचक्षते॥" अर्थ-सूर्यके उदयसे लेकर जन्म इष्टपर्यन्त जितनी घटिकाजावें उनमें पांचकाभाग

इसके अनन्तर ग्रहोंके वर्णदका निषेध, कहते हैं ।

न ग्रहाः ॥ ३३ ॥

सूर्यादिक ग्रह वर्णदराशिसहित नहीं होते हैं । भाव यह है कि जिस प्रकार कि भाव और राशियोंके वर्णदराशि होते हैं तिस प्रकार ग्रहोंके वर्णदराशि नहीं होते हैं इस कथनसे यह जनाया गया कि भावराशियोंकी वर्णदराशि होते हैं । सूर्यादि नहीं होते हैं ॥ ३३ ॥

इसके अनन्तर अन्तर्दशाविभाग दिखाते हैं ।

यावद्विवेकमावृत्तिर्भानाम् ॥ ३४ ॥

मेष, वृष, मिथुन इत्यादि राशियोंके मध्यमें प्रतिराशि जो कि चरस्थिरादि दशाओंमें सिद्ध हुए दशावर्ष हैं उन वर्षोंके बारह विभाग करके बारह राशियोंकी आवृत्ति होवे है । भाव यह है कि चरस्थिरादि संज्ञक दशाओंके विषे जो कि मेषादि बारह राशियोंके दशावर्ष हैं उनमें प्रत्येक राशिके दशावर्षोंके बारह भाग करे जितना प्रथम भाग हो उतने पर्यंत उसी राशिकी अन्तर्दशा रहती है और जितना दूसरा भाग हो उतने पर्यन्त उस राशिदशामें दूसरी राशिकी अन्तर्दशा रहती है । जो लग्न विषमराशिमें होवे मेष, वृष, मिथुन इत्यादि क्रमसे अन्तर्दशाका भोग होना

देवे लब्ध मिले वह राशि होते हैं । शेषको ३० से गुणाकर ५ का भाग देनेसे जो लब्ध मिले वह अंश होते हैं फिर शेषको ६० से गुणाकर ५ का भाग देनेसे जो लब्ध मिले वह कलाहोतेहैं । यह राशि आदिक संख्या जन्मलग्नसे गिननेसे जहां समाप्त होवे वह भाव लग्न होता है । होरालग्नके बनानेकी यह रीति है कि इष्ट घटिकाओंमें अढाईका भाग देनेसे जो लब्ध मिले वह राशि और शेषको ३० से गुणाकर अढाईका भाग देनेसे जो लब्ध मिले वह अंश और इसी प्रकार कला निकले हैं । यह राशि आदिक संख्या यदि जन्मलग्न विषम होवे तो सूर्यके राशि में गिननेसे और यदि जन्मलग्न सम होवे तो जन्मलग्नसे गिननेसे जहां समाप्त होवे वह राशि होरालग्न होता है॥

१ कोई आचार्य इस सूत्रकी यह व्याख्या करते हैं । जिस प्रकार भाव और राशि सवर्ण हैं अर्थात् संख्याबोधक अक्षरोंसे जाने जाते हैं तिस प्रकार ग्रहसंख्याबोधक अक्षरोंसे नहीं जाते किन्तु अपने प्रसिद्ध पदोंकरही जाने जाते हैं॥

है और यदि लग्न सम होवे तो उलटे क्रमसे अर्थात् वृष, मेष इत्यादि रीतिसे अन्तर्दशाका भोग होता है[1] ॥ ३४ ॥

इसके अनन्तर ग्रन्थान्तरप्रसिद्ध होरा द्रेष्काणादिकोंको उपलक्षणमात्र कहते हैं क्योंकि इस ग्रन्थमें कहे जाने- वाले सूत्रोंके विषे होराद्रेष्काणादिका ग्रहण है।

होरादयः सिद्धाः ॥ ३५ ॥

होरा और आदिशब्दसे द्रेष्काण, त्रिंशांश, सप्तांश नवांश, द्वादशांश यह शास्त्रान्तरमें प्रसिद्ध हुई मेषादि गणना करके प्रसिद्ध है किन्तु दृष्टि और अर्गलाके समान गुप्त नहीं इस कारण इनका विवरण यहां नहीं किया है[2] ॥ ३५ ॥

---

१ अन्तर्दशाविभाग वृद्धोंने कहा है। "कृत्वार्कधा राशिदशां राशेर्भुक्तिं क्रमाद्वदेत् ॥ एवं दशान्तर्दशादि कृत्वा तेन फलं वदेत् ॥ अर्थ-राशिदशाके १२ विभाग करके राशिके अन्तर्दशाका भोग क्रमसे कहे इसी प्रकार समस्त दशाओंकी अन्तर्दशा करके उसीसे फल कहे। "एकैकभावस्यैकैकं वर्षे लग्नादि कल्पयेत्। सा पर्यायदशा लग्ने युग्मे तु व्युत्क्रमाद्वदेत् ॥ लग्नं युग्मं यदा तर्हि सन्मुखं तस्य चादिभम्।" अर्थ--दशावर्षमें एक २ भावके एक २ लग्नादिको कल्पना करे यह अन्तर्दशा होवे है। यदि लग्न सम होवे तो उलटे क्रमसे एक २ भावके एक २ लग्नादिको कहे। जैसे वृषसे मेष। सूत्रमें जो कि विवेकापदका ग्रहण है तिससे यह जाना जाता है कि जिस प्रकार एक राशिके १२ भाग होते हैं इसी तरह बारह राशियोंके अन्तर्दशामें एक सौ चवालीस भाग होते हैं और जो कि कोई आचार्यों- ने यह कहा है कि उपस्थित होनेसे दशाके आरम्भकी अवधि अपना २ लग्नहै सो यहभी नहीं क्योंकि कारिकावचन है। "होरालग्नभयोर्ज्ञेया दुर्बलाद्दुर्णदा दशा" ॥

२ होरादिकोंके जाननेके विषयमें वृद्धवचन है। "राशेरर्द्धं भवेद्धोरा ताश्चतुर्विंशतिः स्मृताः। मेषादि तासां होराणां परिवृत्तिद्वयं भवेत् ॥ राशित्रिभागा द्रेष्काणास्ते च षट्त्रिंशदीरिताः परिवृत्तित्रयं तेषां मेषादेः क्रमशो भवेत् ॥ सप्तांशकास्त्वोजगृहे गणनीया निजेशतः। युग्मराशौ तु विज्ञेयाः सप्तमर्क्षाधिनायकात् ॥ नांवशेशाश्चरेत्तस्मात् स्थिरे तन्नवमादितः। उभये तु तत्पंचमादेरिति चिन्त्यं विचक्षणैः ॥ द्वादशांशस्य गणना तत्तत्क्षेत्राद्विनिर्दिशेत्।" होरा द्रेष्काण, त्रिंशांश, सप्तांश नवांश, द्वादशांश इस षड्वर्गके जाननेका विधि चक्रोंमें लिखा है इस कारण इन श्लोकोंका अर्थ यहां नहीं लिखा है ॥

होराचक्रम्.

	मेश	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनः	मकर	कुम्भ	मीन	लग्नग्रह केराशि
१५ अंशतक	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चन्द्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	होराके ग्रहराशि
३० अंशतक	चन्द्र कर्क	सूर्य सिंह.	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	चंद्र कर्क	सूर्य सिंह	होराके ग्रहराशि

द्रेष्काणचक्रम्.

	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनुः	मकर	कुम्भ	मीन	ग्रहलग्नरा.
१० अंशतक	मेष मंगल	वृषभ शुक्र	मिथुन बुध	कर्क चंद्रमा	सिंह सूर्य	कन्या बुध	तुला शुक्र	वृश्चिक मंगल	धनुः बृहस्प.	मकर शनि	कुम्भ शनि	मीन बृहस्प	द्रेष्काणके ग्रहराशि
२० अंशतक	सिंह सूर्य	कन्या बुध	तुला शुक्र	वृश्चिक मंगल	धनुः बृहस्प	मकर शनि	कुंभ शनि	मीन बृहस्प.	मेष मंगल	वृषभ शुक्र	मिथुन बुध	कर्क चंद्रमा	द्रेष्काणके ग्रहराशि
३० अंशतक	धनुः बृहस्प	मकर शनि	कुम्भ शनि	मीन बृहस्प.	मेष मंगल	वृषभ शुक्र	मिथुन बुध	कर्क चन्द्रमा	सिंह सूर्य	कन्या बुध	तुला शुक्र	वृश्चिक मंगल	द्रेष्काणके ग्रहराशि

विषमत्रिंशांशचक्रम्.

	मेष	मि	सिं.	तु.	ध.	कुं.	ग्रहलग्नके राशि
५	मं	मं	मं	मं	मं	मं	५ अंशतक
५	श	श	श	श	श	श	१० अंशतक
८	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	१५ अंशतक
७	बु	बु	बु	बु	बु	बु	२५ अंशवक
५	श	शु	शु	शु	शु	शु	३० अंशतक

समत्रिंशांशचक्रम्.

	वृ.	क.	क.	वृ.	म.	मी.	ग्रहलग्नकी राशि
५	शु	शु	शु	शु	शु	शु	५ अंशतक
७	बु	बु	बु	बु	बु	बु	१२ अंशतक
८	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	२० अंशतक
५	श	श	श	श	श	श	२५ अंशतक
[illegible]	मं	मं	मं	मं	मं	मं	३० अंशतक

नवांशचक्रम् ।

	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनुः	मकर	कुम्भ	मी	ग्रहल.रा.
३ अंश. २० कला	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चन्द्र	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चन्द्र	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चन्द्र	३।२०
६ अंश. ४० कला	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	६।४०
१० अं० तक	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	धनु बृहस्प.	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	धनुः बृहस्प.	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प	धनुः बृहस्प.	कन्या	१० अंश तक
१३ अंश. १० कला	कर्क चन्द्र	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चन्द्र	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चन्द्र	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	१३।१०
१६ अंश ४० कला	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	१६।४०
२० अंश तक	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	धनु बृहस्प	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	धनुः बृहस्प	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	धनुः बृहस्प.	२० अंश तक
२३ अंश. २० कला	तुला शुक्र	कर्क चन्द्र	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चन्द्र	मेष मंगल	मकर शनि	तुला शुक्र	कर्क चन्द्र	मेष मंगल	मकर शनि	२३।२०
२६ अंश ४० कला	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	वृश्चिक मंगल	सिंह सूर्य	वृषभ शुक्र	कुम्भ शनि	२६।४०
३० अं. शतक	धनु बृहस्प.	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	धनु बृहस्प.	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प	धनुः बृहस्प.	कन्या बुध	मिथुन बुध	मीन बृहस्प.	३० अंश तक

अथ द्वादशांशचक्रम्.

मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु.	मकर	कुंभ	मीन	ग्रहलग्नके रा.
मे मं	वृ. शु.	मि. बुध	क. चं	सिं. म्य.	क. बु.	तु. शु	वृ. म.	ध. बृ.	म. श.	कु. श,	मी बृ	२ अं. ३० क.
वृ. शुक्र	मि. बुध	क. चंद्र	सिंहसू.	क. बुध	तु. शु.	वृ. म.	ध. बृ.	म. श.	कुं. श,	मी. बृ.	मे. मं.	५ अंशतक
मि. बु.	क. चन्द्र	सिं. सूर्य	क. बुध	तु. शु.	वृ. मं.	ध. बृ.	म. श.	कुं श.	मी. बृ.	मे. म	वृ. शु	७ अं. ३० क.
क. चंद्र	सिं. सू.	क. बुध	तु. शु.	वृ मं.	ध. बृ.	मं. श.	कुं. श.	मी. बृ.	मेष मं.	वृ. शु	मि. बु.	१० अंशतक
सिं. सू.	क. बुध	तु. शु.	वृ. म.	ध. बृ.	म. श.	कुं श.	मी. बृ.	मेष मं.	वृ. शु.	मि. बु	क. चं.	११ अं ३० क
क बुध	तु. शुक्र	वृ. म.	ध. बृ.	म. श.	कुं. श,	मी. बृ.	मेष मं.	वृ. शु.	मि. बु.	क, चं	सिं. सू.	१५ अंशतक
तु. शु.	वृ. मं.	ध बृ.	म. श.	कुं. श.	मी. बृ.	मेष मं.	वृ. शु.	मि. बु.	क. च.	सिं सू.	क, बु.	१७ अं ३० क.
वृ. मं.	धनु बृ.	म. श.	कुं. श.	मी. बृ.	मेष मं	वृ. श,	मि. बु.	क. च.	सिं. सू	क. बु.	तु. शु.	२० अंशतक
ध. बृ.	म. श.	कुं. श.	मी. बृ	मेष मं.	वृ शु.	मि. बु	क. चं	सिं. सू.	क. बु.	तु. शु.	वृ. मं.	२२ अं ३० क.
म. श	कुं. श.	मी. बृ.	मेष मं.	वृ. शु.	मि. बु.	क. च.	सिं. सू.	क. बु.	तु. शुक्र	वृ. म.	ध. बृ.	२५ अंशतक
कुं. श.	मी. बृ.	मेष मं.	वृ. शु.	मि. बु.	क. च.	सिं. सूर्य.	क. बु.	तु. शु.	वृ. म.	ध. बृ.	म. श.	२७ अं ३० क.
मी. बृ	मेष मं.	वृ. शु.	मि. बु.	क. च.	सिं. सू,	क. बु.	तु. श.	वृ. मं.	वृ. ध.	म. श.	कु. श.	३० अंशतक

अथ सप्तांशचक्रम्.

	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि०	धनुः	मकर	कुम्भ	मीन
४ अं. १७ क ८ विकलातक	मेष मंगल	वृश्चिक मंगल	मिथुन बुध	मकर शनि	सिंह सूर्य	मीन बृह.	तुला शुक्र	वृषभ शुक्र	धनः बृह.	कर्क चन्द्र	कुम्भ शनि	कन्या बुध
८ अं. ३४ क १६ वि. तक	वृषभ शुक्र	धनु बृहस्प.	कर्क चन्द्र	कुम्भ शनि	कन्या बुध	मेष मंगल	वृश्चि मंगल	मिथुन बुध	मकर शनि	सिंह सूर्य	मीन बृह.	तुला शुक्र
१२ अं ५१ क. २४ वि. तक	मिथुन बुध	मकर शनि	सिंह सूर्य	मीन बृह.	तुला शुक्र	वृषभ शुक्र	धनु बृह	कर्क चन्द्र	कुम्भ शनि	कन्या बुध	मेष मंगल	वृश्चि. मंगल
१७ अं. ८ क. ३२ वि. तक	कर्क चन्द्र	कुम्भ शनि	कन्या बुध	मेष मंगल	वृश्चि. मंगल	मिथुन बुध	मकर शनि	सिंह सूर्य	मीन बृह.	तुला शुक्र	वृषभ शुक्र	धन बृह
२१ अं. २५ क. ४० वि. तक	सिंह सूर्य	मीन बृह.	तुला शुक्र	वृषभ शुक्र	धनु बृह.	कर्क चन्द्र	कुम्भ शनि	कन्या बुध	मेष मंगल	वृश्चि. मंगल	मिथुन बुध	मकर शनि
२५ अं. ४२ क. ४८ वि. तक	कन्या बुध	मेष मंगल	वृश्चिक मंगल	मिथुन बुध	मकर शनि	सिंह सूर्य	मीन बृह.	तुला शुक्र	वृषभ शुक्र	धनु बृह.	कर्क चन्द्र	कुम्भ शनि
३० अंशतक	तुला शुक्र	वृषभ शुक्र	धनुः बृह.	कर्क चन्द्र	कुम्भ शनि	कन्या बुध	मेष मंगल	वृश्चि मंगल	मिथुन बुध	मकर शनि	सिंह सूर्य	मीन बृह.

इति श्रीजैमिनीयसूत्रे प्रथमाध्याये श्रीनीलकंठीयतिलकानुसतभाषाटीकायां श्रीपाठकमंगलसेनात्मजकाशिरामविरचितायां प्रथमः पादः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयपादः ।

इनके अनन्तर आत्मकारकके नवांशका फल कहनेको आरम्भ करते हैं ।

अथ स्वांशो ग्रहाणाम् ॥ १ ॥

सूर्यादिक जो कि ग्रह हैं उन ग्रहोंके मध्यमें जो कि आत्मकारक है उस आत्मकारकका जो कि नवांश है उससे फल विचारने योग्य है ॥ १ ॥

प्रथम आत्मकारकके मेषादि नवांशोंका फल कहते हैं ।

पञ्च मूषिकमार्जाराः ॥ २ ॥

यदि आत्मकारकमें मेषनवांश होवे तो मूषिक और मार्जार जीव दुःखदायक होते हैं ॥ २ ॥

तत्र चतुष्पादः ॥ ३ ॥

यदि आत्मकारकमें वृष नवांश होवे तो चार पांववाले पशु सुखकर्त्ता होवे हैं ॥ ३ ॥

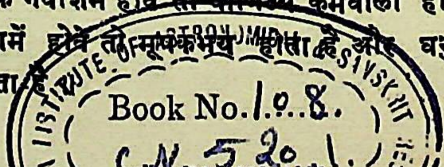
मृत्यौ कंडूः स्थौल्यं च ॥ ४ ॥

यदि आत्मकारकमें मिथुननवांश होवे तो शरीरमें खाज और शरीरमें स्थूलता हो जाती है ॥ ४ ॥

दूरे जलकुष्ठादिः ॥ ५ ॥

यदि आत्मकारकमें कर्कनवांश होवे तो जलसे भय और कुष्ठादिक रोग होता है ॥ ५ ॥

शंका–मूषिकादिक दुःखदाई होते हैं और चतुष्पाद सुखदाई होते हैं यहांपर एकही अर्थ अपेक्षित है भिन्न २ अर्थ करनेमें क्या कारण है ? समाधान–इसमें वृद्धवचन प्रमाण है । " वृषतौल्यंशकगते तस्मिन्वाणिज्यवान् भवेत् । मेषसिंहांशकगते ब्रूयान्मूषकदंशनम् ॥ कारके कार्मुकांशस्थे वाहनात्पतनं भवेत् । " अर्थ–यदि आत्मकारक ग्रह वृष वा तुलाके नवांशमें होवे तो वाणिज्य कर्मवाला होता है और यदि मेष वा सिंहके नवांशमें होवे तो मूषकभय होता है और धनुके नवांकमें होवे तो वाहनसे पतन होता है ।



शेषाः श्वापदानि ॥ ६ ॥

यदि आत्मकारकमें सिंहनवांश होवे तो श्वास आदिक जीव दुःख देनेवाले होते हैं ॥ ६ ॥

मृत्युवज्ज्ञायाग्निकणश्च ॥ ७ ॥

यदि आत्मकारकमें कन्यानवांश होवे तो मिथुननवांशवत् फल होता है और अग्निकणभी दुःख देनेवाला होतां है अर्थात् शरीरमें खाज और मोटापन तथा अग्निभय होता है ॥ ७ ॥

लाभे वाणिज्यम् ॥ ८ ॥

यदि आत्मकारकमें तुलानवांश होवे तो वाणिज्यकर्म करनेवाला होता है ॥ ८ ॥

अत्र जलसरीसृपाः स्तन्यहानिश्च ॥ ९ ॥

यदि आत्मकारकमें वृश्चिकनवांश होवे तो जल और सर्पादिक दुःख देनेवाले होते हैं और माताका स्तन्य नाम दुग्ध सूख जावे है ॥ ९ ॥

समे वाहनादुच्चाच्च क्रमात्पतनम् ॥१०॥

यदि आत्मकारकमें धनुर्नवांश होवे तो वाहनसे अथवा ऊंची जगहसे पतन होता है परन्तु वह पतन एकसाथ नहीं होता है किन्तु कहीं २ रुक २ कर होता है ॥ १० ॥

जलचरखेचरखेटकंडूजुष्टग्रन्थयश्च रिःफे ॥ ११ ॥

यदि आत्मकारकमें मकर नवांश होवे तो जलचारी मत्स्यादिक जीव और खेचर पक्षी और खेट नाम ग्रह ये फलदायक होते हैं और खाज और दुष्ट ग्रंथि गण्डमाला आदिक रोग होते हैं ॥११॥

तडागादयो धर्मे ॥ १२ ॥

यदि आत्मकारकमें कुम्भनवांश होवे तो तडाग, बावडी, कूप आदिकोंके करनेवाले होते हैं ॥ १२ ॥

उच्चे धर्मनित्यता कैवल्यश्च ॥ १३ ॥

यदि आत्मकारकमें मीननवांश होवे तो धर्मकी नित्यता और मोक्ष होता है[1]॥ १३ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवांशका ग्रहस्थितिसे फल कहते हैं।

तत्र रवौ राजकार्यपरः ॥१४॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें सूर्य स्थित होवे तो राजकर्म करनेवाला होता है ॥ १४ ॥

पूर्णेन्दुशुक्रयोर्भोगी विद्याजीवी च ॥ १५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें परिपूर्ण चन्द्रमा और शुक्र ये दोनों स्थित होवें तो भोगकर्ता और विद्यासे जीविका करनेवाला होता है ॥ १५ ॥

धातुवादी कौंतायुधो वह्निजीवी ॥ १६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें भौम स्थित होवे तो धातुवादी नाम रसायनविद्यावाला और बरछी शस्त्र बांधनेवाला तथा अग्निसे जीविका करनेवाला होता है ॥ १६ ॥

---

१ आत्मकारकके नवांशादि गुणोंकर फल वृद्धोंने कहा है। "शुभराशौ शुभांशे वा कारकांशे धनी भवेत्। तदंशकेन्द्रेषु शुभे राजा नूनं प्रजायते ॥" अर्थ-यदि आत्मकारक ग्रहका नवांश शुभ राशिमें अथवा शुभग्रहके नवांशमें होवे तो धनी होता है और यदि आत्मकारक ग्रहके नवांशके कुण्डलीमें जो कि केंद्र होवे उनमें यदि शुभ ग्रह होवे तो निश्चयही राजा होता है। अन्यच्च-"कारके शुभराश्यंशे लग्नांशस्थे शुभग्रहे। उपग्रहस्य पाश्चात्ये स्वोच्चस्वर्क्षशुभर्क्षगे ॥ पापदृग्योगरहिते कैवल्यं तस्य निर्दिशेत्। मिश्रे मिश्रं विजानीयाद्विपरीते विपर्यय ॥" अर्थ-यदि आत्मकारक शुभग्रह होकर शुभराशिके नवांशमें और लग्नके नवांशमें स्थित होवे और उपग्रहके पिछाडी स्थित होवे और अपने उच्चका अथवा निजराशिका अथवा शुभग्रहके राशिका होवे और पापग्रहकी दृष्टि और योगसे वर्जित होवे तो मोक्ष होता है और यदि पापग्रह तथा शुभग्रह इन दोनोंकी दृष्टि वा योगसे युक्त होवे तो मिश्रस्वर्गवास होता है और यदि केवल पापग्रहकी दृष्टि और योगसेही युक्त होवे तो न मुक्ति होती है न स्वर्गवास होता है। अन्यच्च-"चंद्रभृग्वार्कवर्गमें कारके पारदारिकः" अर्थ-यदि आत्मकारक चन्द्र, शुक्र, मंगल इसके वर्गोंमें स्थित होवे तो परस्त्रीसे भोग करनेवाला होता है ॥

वणिजस्तन्तुवायाः शिल्पिनो व्यवहारविदश्च सौम्ये १७

यदि आत्मकारकके नवांशमें बुध स्थित होवे तो वणिक् और वस्त्र बुननेवाला तथा शिल्पविद्यावान् और समस्त व्यवहार जाननेवाला होता है ॥ १७ ॥

कर्मज्ञाननिष्ठा वेदविदश्च जीवे ॥ १८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें बृहस्पति स्थित होवे तो वैदिककर्ममें निष्ठा रखनेवाला तथा ज्ञानी और वेदको जाननेवाला होता है ॥ १८ ॥

राजकीयाः कामिनः शतेंद्रियाश्च शुक्रे ॥ १९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें शुक्र स्थित होवे तो राजाके अधिकारवाला और बहुत स्त्रियोंके भोगनेमें इच्छा रखनेवाला और सौ वर्षपर्यन्त जीवन धारण करनेवाला होता है ॥ १९ ॥

प्रसिद्धकर्माजीवः शनौ ॥ २० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें शनैश्चर स्थित होवे तो लोकप्रसिद्ध कर्मसे जीविका करनेवाला होता है ॥ २० ॥

धानुष्काश्चौराश्च जांगलिका लोहयंत्रिणश्च राहौ ॥२१॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें राहु स्थित होय तो धनुष रखनेवाला और चोरी करनेवाला होता है अथवा जांगलिक और लोहयंत्र रखनेवाला होता है ॥ २१ ॥

गजव्यवहारिणश्चौराश्च केतौ ॥ २२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें केतु स्थित होवे तो हाथियोंका व्यवहार करनेवाला तथा चोर होता है ॥ २२ ॥

रविराहुभ्यां सर्पनिधनम् ॥ २३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें सूर्य और राहु दोनों स्थित होवें तो सर्पसे मृत्यु होता है ॥ २३ ॥

शुभदृष्टे सन्निवृत्तिः ॥ २४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुए सूर्य राहु ये दोनों शुभ ग्रहने देखे होवें तो सर्पसे मृत्यु नहीं होती है ॥ २४ ॥

शुभमात्रसंबन्धाज्जांगलिकः ॥ २५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुए सूर्य राहुके विषे शुभ-ग्रह मात्रका योग होवे तो जांगलिक नाम विषवैद्य होता है ॥२५॥

कुजमात्रदृष्टे गृहदाहकोऽग्निदो वा ॥ २६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुए सूर्य राहु ये दोनों मंगलने देखे होंय तो अपने गृहको जलानेवाला अथवा अग्नि देने-वाला होता है ॥ २६ ॥

शुक्रदृष्टेर्न दाहः ॥ २७ ॥

यदि आत्मकारके नवांशमें स्थित हुए सूर्य राहु इन दोनोंपर शुक्रकी दृष्टि होवे तो गृहको जलानेवाला नहीं होता हैं किन्तु अग्निका दाह मात्र करनेवाला होता है ॥ २७ ॥

गुरुदृष्टेस्त्वासमीपगृहात् ॥ २८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुए सूर्य राहुपर बृहस्पतिकी दृष्टि होवे और शुक्रकी दृष्टि न दोवे तो समीप गृहपर्यंत दाह हो जावे, अपने गृहमात्रका दाह न होवे ॥ २८ ॥

सगुलिके विषदो विषहतो वा २९ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश गुलिकसहित होवे तो दूसरेको विष देनेवाला तथा स्वयं विष खाकर मरनेवाला होता है[1] ॥ २९ ॥

---

१ गुलिक बनानेकी रीति वृद्धोंने कही है "रविवारादिशन्यन्तं गुलिकादि निरूप्यते । दिवसानष्टधा कृत्वा वारेशाद्गणयेत् क्रमात् ॥ अष्टमोंऽशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः । रात्रिमप्यष्टधा भक्त्वा वारेशात्पंचमादितः ॥ गणयेदष्टमः खंडो निष्पत्तिः परिकीर्तितः शन्यंशे गुलिकः प्रोक्तो गुर्वंशे यमघंटकः ॥ भौमांशे मृत्युरादिष्टो रव्यंशे कालसंज्ञकः । सौम्यांशेऽर्द्धप्रहरकः स्पष्टकर्मप्रदेशकः ॥" अर्थ—रविवारसे लेकर शनैश्चरपर्यन्त गुलिकादि योग कहे हैं । दिनमानके आठभाग करे और उस दिन जो वार होवे उससे क्रम करके गिने । आठवां भाग स्वामीकर

चंद्रदृष्टौ चौराऽपहृतधनश्चौरो वा ॥ ३० ॥

यदि गुलिकसहित आत्मकारकके नवांशपर चन्द्रमाकी दृष्टि होवे तौ चौरोंकर चुराये हुए धनवाला वा स्वयं चोर होता है ॥ ३० ॥

बुधमात्रदृष्टे बृहद्बीजः ॥ ३१ ॥

यदि गुलिकसहित आत्मकारकका नवांश केवल बुधहीने देखा हो और अन्य ग्रहकी दृष्टि न होवे तौ बडे २ वृषणोंवाला होता है ॥ ३१ ॥

तत्र केतौ पापदृष्टे कर्णच्छेदः कर्णरोगो वा ॥ ३२ ॥

वर्जित होता है अर्थात् आठवें भागका कोई स्वामी नहीं होता है। उन आठों भागोंमें जो कि शनैश्चरका भाग है यह गुलिक कहा है। इसी प्रकार रात्रिमानके आठ भाग करे और उस दिन जो वार हो उससे जो कि पांचवां वार है उससे क्रमकरके गिने जो आठवां भाग हो वह स्वामिवर्जित होता है। उन आठों भागोंमें जो कि शनैश्चरका भाग है वह गुलिक होता है और जो कि बृहस्पतिका भाग है वह यमघंटक होता है और जो कि भौमका भाग है वह मृत्युयोगसंज्ञक होता है और जो कि सूर्यका भाग है वह कालयोगसंज्ञक है और जो कि बुधका भाग है वह अर्द्धप्रहरसंज्ञक है। जैसे रविवारके दिन दिनके सातवें भागमें और रात्रिके तीसरे भागमें गुलिकयोग रहता है और सोमवारके दिन दिनमें छठे भागमें और रात्रिके द्वितीयभागमें गुलकयोग रहता है और भौमवारके दिन दिनके पांचवें भागमें और रात्रिके प्रथम भागमें और गुलिकयोग रहता है। इसी प्रकार बुधके दिन दिनके चतुर्थ भागमें और रात्रिके सप्तम भागमें और बृहस्पतिके दिन दिनके तृतीय भागमें और रात्रिके छठे भागमें और शुक्रके दिन दिनके द्वितीय भागमें और रात्रिके पंचम भागमें और शनैश्चरके दिन दिनके प्रथम भागमें और रात्रिके चतुर्थ भागमें गुलिकयोग रहता है। इसी प्रकार अन्यवचनभी है। "तथा च रविवारादौ दिने गुलिकसंस्थितिः। सप्तर्तुशरवेदत्रिद्विकुखण्डेषु हि क्रमात्॥ रात्रौ त्रिद्विकुसप्तर्तुपंचतुर्येषु तत्स्थितिः।" अर्थ-रविवारादिक वारोंके विषे दिनमें क्रमसे सप्तम, षष्ठ, पंचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय, प्रथम इन भागोंमें गुलिकयोग रहता है और रात्रिमें तृतीय, द्वितीय, प्रथम, सप्तम, षष्ठ, पंचम, चतुर्थ इन भागोंमें गुलिकयोग रहता है। जिस समय गुलिकयोगका आरम्भ होवे उस समय जो लग्न विद्यमान हो उस लग्नका जो नवांश उस समय होवे वहही नवांश आत्मकारकका यदि होवे तौ वह आत्मकारकका नवांश सगुलिक कहा जाता है ऐसा जानना॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें पापग्रहोंकर देखा हुआ केतु स्थित होवे तौ वर्णच्छेद अथवा कर्णरोग होता है ॥ ३२ ॥

शुक्रदृष्टे दीक्षितः ॥ ३३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ केतु शुक्रने देखा होवे तो किसी एक यज्ञक्रिया करके दीक्षित होता है ॥ ३३ ॥

बुधशनिदृष्टे निर्वीर्यः ॥ ३४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ केतु, बुध और शनैश्चर दोनोंने देखा होवे तो नपुंसक होता है ॥ ३४ ॥

बुधशुक्रदृष्टे पौनःपुनिको दासीपुत्रो वा ॥ ३५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ केतु बुध और शुक्र दोनोंने देखा होवे तो वार २ कहे हुए वचनके कहनेवाला होता है अथवा दासीका पुत्र होता है ॥ ३५ ॥

शनिदृष्टे तपस्वी प्रेष्यो वा ॥ ३६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ केतु अन्यग्रह और शनैश्चरने देखा होवे तो तपस्वी अथवा दास होता है ॥ ३६ ॥

शनिमात्रदृष्टे संन्यासाभासः ॥ ३७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ केतु अन्य ग्रहने तो देखा न होवे केवल शनैश्चरने देखा होवे तौ कथनमात्र संन्यासी होता है। परिपूर्ण संन्यासी नहीं होता है ॥ ३७ ॥

तत्र रविशुक्रदृष्टे राजप्रेष्यः ॥ ३८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांश सूर्य और शुक्र दोनोंने देखा होवे तो राजाका सेवक होता है ॥ ३८ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवांशसे दशम नवांशका विचार करते हैं।

रिःफे बुधे बुधदृष्टे वा मन्दव ॥ ३९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे दशम स्थानपर बुध स्थित होवे अथवा आत्मकारकके नवांशसे दशम स्थान बुधने देखा होवे तौ " प्रसिद्धकर्मा जीवः शनौ " इस सूत्रका कहा हुआ फल होता है अर्थात् लोकप्रसिद्ध कर्मसे जीविका करनेवाला होता है ॥ ३९ ॥

शुभदृष्टे स्थैर्यः ॥ ४० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे दशम स्थान बुधको त्यागके अन्य शुभ ग्रहोंने देखा होवे तो स्थिर स्वभाव होता है, चंचल नहीं होता है ॥ ४० ॥

रवौ गुरुमात्रदृष्टे गोपालः ॥ ४१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे दशम नवांशमें स्थित हुआ सूर्य केवल बृहस्पतिने देखा होवे और किसी ग्रहने न देखा होवे तो गौओंकी रक्षा करनेवाला होता है ॥ ४१ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवमांशसें चतुर्थ नवमांशका विचार करते हैं।

दारे चंद्रशुक्रदृग्योगात्प्रासादः ॥ ४२ ॥

यदि आत्मकारकके नवमांशसे चतुर्थ नवमांशपर चन्द्र शुक्र इन दोनोंकी दृष्टि अथवा योग होनेसे उत्तम २ राजमन्दिरोंवाला होता है ॥ ४२ ॥

उच्चग्रहेऽपि ॥ ४३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ स्थानपर कोई उच्चका ग्रह स्थित होवे तोभी उत्तम २ राजमन्दिरोंवाला होता है ॥ ४३ ॥

राहुशनिभ्यां शिलागृहम् ॥ ४४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ स्थानपर राहु शनैश्चर दोनोंकी स्थिति होवे तौ शिलाओंका रचा हुआ गृह होता है॥४४॥

कुजकेतुभ्यामैष्टकम् ॥ ४५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवमांशपर मंगल केतु ये दोनों स्थित होवें तो ईटोंका रचा हुआ गृह होता है ॥ ४५ ॥

गुरुणा दारवम् ॥ ४६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशपर बृहस्पतिकी स्थिति होवे तो काष्ठका रचा हुआ गृह होता है ॥ ४६ ॥

तार्णं रविणा ॥ ४७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशपर सूर्यकी स्थिति होवे तो तृणका रचा हुआ गृह होता है ॥ ४७ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवमांशसे नवम नवमांशका विचार करते हैं।

समे शुभदृग्योगाद्धर्मनित्यः सत्यवादी गुरुभक्तश्च॥४८॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि अथवा योग होवे तो धर्मनिष्ठ और सत्य बोलनेवाला तथा गुरुजनोंका भक्त होता है ॥ ४८ ॥

अन्यथा पापैः ॥ ४९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशपर पापग्रहोंकी दृष्टि तथा योग होवे तौ धर्मसे विपरीत चलनेवाला तथा झूंठ बोलनेवाला तथा गुरुजनोंका भक्त नहीं होता है ॥ ४९ ॥

शनिराहुभ्यां गुरुद्रोहः ॥ ५० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशपर शनि, राहु इन दोनोंकी दृष्टि अथवा योग होवे तो गुरुसे विरोध करनेवाला होता है ॥ ५० ॥

गुरुरविभ्यां गुरावविश्वासः ॥ ५१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशपर बृहस्पति, सूर्य इन दोनोंकी दृष्टि अथवा योग होवे तौ गुरुमें विश्वास नहीं होता है ॥ ५१ ॥

तत्र भृग्वंगारकवर्गे पारदारिकः ॥ ५२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशमें शुक्र वा मङ्गलका षड्वर्ग होवे तो परस्त्रीगामी होता है ॥ ५२ ॥

दृग्योगाभ्यामधिकाभ्यामामरणम् ॥ ५३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशमें शुक्र वा मङ्गलका षड्वर्ग होवे और शुक्र व मंगलकी दृष्टि अथवा योग होवे तौ मरण-पर्यन्त परस्त्रीसे गमन करनेवाला होता है ॥ ५३ ॥

केतुना प्रतिबन्धः ॥ ५४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशमें केतुकी दृष्टि अथवा योग होवे तौ मरणपर्यन्त परस्त्रीसे विमुख रहता है ॥ ५४ ।

गुरुणा स्त्रैणः ॥ ५५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवमांशमें बृहस्पतिकी दृष्टि अथवा योग होवे तो स्त्रीके आधीन रहता है ॥ ५५ ॥

राहुणार्थनिवृत्तिः ॥ ५६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवमांशममें राहुकी दृष्टि अथवा योग होवे तो परस्त्रीसंगसे धनका नाश होता है ॥ ५६ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशका विचार करते हैं ।

लाभे चंद्रगुरुभ्यां सुन्दरी ॥ ५७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशमें चन्द्र बृहस्पति इन दोनोंका योग होवे तौ स्त्री सुन्दरी होती है ॥ ५७ ॥

राहुणा विधवा ॥ ५८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशमें राहुका योग होवे तौ गृहमें विधवा स्त्री होती है ॥ ५८ ॥

शनिना वयोधिका रोगिणी तपस्विनी वा ॥ ५९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशमें शनैश्चरका योग होवे तौ आपसे अधिक अवस्थावाली अथवा रोगिणी वा तपस्विनी स्त्री होती है ॥ ५९ ॥

कुजेन विकलांगी ॥ ६० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशमें मंगलका योग होवे तौ दुर्लक्षण अंगवाली स्त्री होवे है ॥ ६० ॥

रविणा स्वकुले गुप्ता च ॥ ६१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशमें सूर्यका योग होवे तौ अपनी स्त्री मरणपर्यन्त अपने घरमें रक्षित रहती है और स्वातंत्र्यसे इधर उधर फिरनेवाली नहीं होती है और सूत्रमें जो कि चकारका ग्रहण है तिससे विकलांगी अर्थात् दूर्लक्षण अंगवालीभी होती है ॥ ६१ ॥

बुधेन कलावती ॥ ६२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशपर बुधका योग होवे तौ स्त्री गानेमें तथा बजानेमें बहुत निपुण होती है ॥ ६२ ॥

चापे चंद्रेणानावृते देशे ॥ ६३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशपर चन्द्रमा होवे और पूर्व कहे हुए स्त्रीकारक योग विद्यमान होवे तो अनाच्छादित देशमें प्रथम स्त्रीका संग होता है अथवा आत्मकारकके नवांशसे सप्तम नवांशमें धनुराशि और चन्द्रमा स्थित होवे तो अनाच्छादित देशमें प्रथम स्त्रीसंग होता है ॥ ६३ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारकके नवांशसे तृतीय नवांशका विचार करते हैं ।

कर्मणि पापे शूरः ॥ ६४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे तृतीय नवांशमें पाप ग्रह स्थित होवे तो शूर वीर होता है ॥ ६४ ॥

शुभे कातरः ॥ ६५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे तृतीय नवांशमें शुभग्रह होवे तो कातर नाम डरपनेवाला होता है ॥ ६५ ॥

मृत्युचिन्तयोः पापे कर्षकः ॥६६॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे तृतीय और षष्ठ नवांश दोनोंमें पापग्रह होवें तो खेती करनेवाला होता है ॥ ६६ ॥

समे गुरौ विशेषेण ॥ ६७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे नवम नवांशमें बृहस्पति होवे तो विशेष करके खेनी करनेवाला होता है ॥ ६७ ॥

इसके अनन्तर आत्मकारके नवांशसे द्वादश नवांशका विचार करते हैं ।

उच्चे शुभे शुभलोकः । ६८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे द्वादश नवांशमें शुभ ग्रह होवे तौ शुभ लोककी प्राप्ति होवे है ॥ ६८ ॥

केतौ कैवल्यम् ॥ ६९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे द्वादश नवांशमें केतु होवे तो मोक्ष होता है अथवा आत्मकारकके नवांशमें शुभ ग्रह होवे तो मोक्ष होता है ॥ ६९ ॥

क्रियचापयोर्विशेषेण ॥ ७० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें मेषराशि अथवा धनुराशि होवे और शुभ ग्रहके साथ स्थित होवे तो विशेषकरके मोक्ष होता है अर्थात् सायुज्य मोक्ष होता है अथवा आत्मकारकके नवांशसे द्वादश नवांशमें मेष वा धनुराशि स्थित होवे और सातवें केतु स्थित होवे तो सायुज्य मोक्ष होता है[1] ॥ ७०

---

१ शुभग्रहकी अपेक्षासे केतुको पापग्रह होनेसे केतु सायुज्यमुक्तिको देनेवाला नहीं हो सकता इससे "केतौ कैवल्यम्, क्रियचापयोर्विशेषेण" इन सूत्रोंपर यह

पापैरन्यथा ॥ ७१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे द्वादश नवांशमें और आत्मकारकके नवांशमें पापग्रहोंका योग होवे तो न शुभ लोक होता है त मुक्ति होती है ॥ ७१ ॥

रविकेतुभ्यां शिवे भक्तः ॥ ७२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें सूर्य और केतु दोनों मिलकर स्थित होवें तो शिवका भक्त होता है ॥ ७२ ॥

चंद्रेण गौर्याम् ॥ ७३ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश चन्द्रमाकरके युक्त होवे तो गौरीका भक्त होता है ॥ ७३ ॥

शुक्रेण लक्ष्म्याम् ॥ ७४ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश शुक्रकरके युक्त होवे तो लक्ष्मीका भक्त होता है ॥ ७४ ॥

कुजेन स्कंदे ॥ ७५ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश मंगलकरके युक्त होवे तो स्कन्द भगवान्‌का भक्त होता है ॥ ७५ ॥

बुधशनिभ्यां विष्णौ ॥ ७६ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश बुध शनैश्चर दोनोंसे युक्त होवे तो विष्णुका भक्त होता है ॥ ७६ ॥

गुरुणा सांबशिवे ॥ ७७ ॥

व्याख्याही उचित है । आत्मकारकके नवांशमें शुभग्रह होवे तो मुक्ति होती है और आत्मकारकके नवांशमें मेष वा धनु राशि स्थित होवे और साथमें शुभग्रह होवे तो सायुज्यमुक्ति होवे है सूत्रकारने केतुको शुभग्रह नहीं कहा है और जो कि, "चरदशायामत्र शुभः केतुः" इस आगाडी कहे जानेवाले सूत्रमें केतुको शुभकरके कहा है सो चरदशामेंही केतु शुभ है और जगह नहीं ऐसा अर्थ जानना॥

१ "रविकेतुभ्यां शिवे भक्तः" इस सूत्रसे लेकर "अमात्यदासे चैवम्" इस सूत्रपर्यन्त "केतौ" इस पदकी अनुवृत्ति जाननी ॥

यदि आत्मकारकका नवांश वृहस्पति करके युक्त होवे तो पार्वतीसहित शिवका भक्त होता है ॥ ७७ ॥

राहुणा तामस्यां दुर्गायाम् ॥ ७८ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश राहुसे युक्त होवे तो तामसी देवता और दुर्गाका भक्त होता है ॥ ७८ ॥

केतुना गणेशे स्कन्दे च ॥ ७९ ॥

यदि आत्मकारकका नवांश केतुसे युक्त होवे तो गणेश और स्कन्दका भक्त होता है ॥ ७९ ॥

पापर्क्षे मंदे क्षुद्रदेवतासु ॥ ८० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें पापराशि और शनैश्चरयुक्त होवे तौ कर्णपिशाचादि देवताओंका भक्त होता है ॥ ८० ॥

शुक्रे च ॥ ८१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें पापराशि और शुक्र स्थित होवे तोभी कर्णपिशाचादि देवताओंका भक्त होता है ॥ ८१ ॥

अमात्यदासे चैवम् ॥ ८२ ॥

आत्मकारक ग्रहसे कम अंशकलादिवाला ग्रह अमात्यकारक होता है उस अमात्यकारक ग्रहसे जो कि क्रमसे गिननेसे छठा ग्रह है वह ग्रह अमात्यदास संज्ञक है। यदि अमात्यदाससंज्ञक ग्रह आत्मकारकके नवांशमें स्थित होवे और पापराशिभी उस आत्मकारकके नवांशमें विद्यमान होवे तोभी क्षुद्र देवताओंका भक्त होता है ॥८२॥

त्रिकोणे पापद्वये मांत्रिकः ॥ ८३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें पंचम और नवम नवांश इन दोनों में क्रमसे दो पापग्रह स्थित होवें तो मंत्रवेत्ता होता है ॥ ८३ ॥

---

१ कोई आचार्य यह कहते हैं कि यदि यह अर्थ सम्मत होता तौ "पापर्क्षे मंदशुक्रामात्यदासेषु क्षुद्रदेवतासु" ऐसा सूत्र एकही रचित होता फिर पृथक् २

पापदृष्टे निग्राहकः ॥ ८४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे जो कि पंचम और नवम नवांश हैं वे दोनों पापग्रहोंसे युक्त होवें और पापग्रहोंने देखे होवें तो भूतादिकोंका निग्रह करनेवाला होता है ॥ ८४ ॥

शुभदृष्टेऽनुग्राहकः ॥ ८५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे पंचम नवम ये दोनों पापग्रहोंसे युक्त होवें और शुभग्रहोंने देखे होवें तो लोकमें अनुग्रह करनेवाला होता है ॥ ८५ ॥

शुक्रेन्दौ शुक्रदृष्टे रसवादी ॥ ८६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ चन्द्रमा शुक्रने देखा होवे तो रसोंके बनानेवाला होता है ॥ ८६ ॥

बुधदृष्टे भिषक् ॥ ८७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें स्थित हुआ चन्द्रमा शुक्रने देखा होवे तो वैद्य होता है ॥ ८७ ॥

चापे चन्द्रे शुक्रदृष्टे पांडुश्वित्री ॥ ८८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें स्थित हुआ चन्द्रमा शुक्रने देखा होवे तो श्वेत कुष्ठवाला होता है ॥ ८८ ॥

कुजदृष्टे महारोगः ॥ ८९ ॥

यदि आत्मकारक ग्रहके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें स्थित हुआ चन्द्रमा शुक्रने देखा होवे तौ महारोग अर्थात् कुष्ठ रोगवाला होता है ॥ ८९ ॥

सूत्र रचना व्यर्थ है सो एक सूत्र नहीं हो सकता क्योंकि यदि इस प्रकार एकही सूत्र होता तो यह अर्थ हो सकता । शनैश्वर शुक्र अमात्यदास यह ग्रह मिलकरके आत्मकारकके नवांशमें पापराशिके विषे स्थित होवे तौ क्षुद्रदेवताका भक्त होता है और जो कि शनैश्वर शुक्र अमात्यदास इनमेंसे एक एक की पापराशिमें स्थिति करके क्षुद्रदेवताकी भक्ति होती है तिससे योगविभागके लिये पृथक् २ सूत्र रचना उचितही है ॥

केतुदृष्टे नीलकुष्ठम् ॥ ९० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें स्थित हुआ चन्द्रमा केतुकर देखा होवे तौ नीलकुष्ठ रोगवाला होता है ॥ ९० ॥

तत्र मृतौ वा कुजराहुभ्यां क्षयः ॥ ९१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें अथवा पंचम नवांशमें मंगल राहु होवें तौ क्षयरोगवाला होता है ॥ ९१ ॥

चंद्रदृष्टौ निश्चयेन ॥ ९२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें अथवा पंचम नवांशमें स्थित हुए मंगल और राहुपर चन्द्रमाकी दृष्टि होवे तौ बडा प्रबल क्षयरोग होता है ॥ ९२ ॥

कुजेन पिटिकादिः ॥ ९३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें अथवा पंचम नवांशमें मंगल स्थित होवे तौ पिटिकादिक रोग होते हैं ॥ ९३ ॥

केतुना ग्रहणी जलरोगो वा ॥ ९४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें अथवा पंचमनवांशमें केतु स्थित होवे तौ संग्रहणी अथवा जलोदरादिक रोग होते हैं ॥ ९४ ॥

राहुगुलिकाभ्यां क्षुद्रविषाणि ॥ ९५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे चतुर्थ नवांशमें अथवा पंचम नवांशमें राहु और गुलिक होवें तौ मूषकादि विष होते हैं । भाव यह है कि गुलिकयोगके आरंभके लग्नका नवांशही आत्मकारकके नवांशका चतुर्थ वा पंचम नवांश होवे और तहां राहु स्थित होवे तौ क्षुद्रजीव मूषिकादि विष होते हैं ॥ ९५ ॥

तत्र शनौ धानुष्कः ॥ ९६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें और उससे चतुर्थ नवांशमें शनैश्चर स्थित होवे तौ धनुषविद्यामें निपुण होता है ॥ ९६ ॥

केतुना घटिकायंत्री ॥ ९७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें और उससे चतुर्थ नवांशमें केतु स्थित होवे तौ घटिकायंत्रको रखनेवाला होता है ॥ ९७ ॥

बुधेन परमहंसो लगुडी वा ॥ ९८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें और उससे चतुर्थ नवांशमें बुध स्थित होवे तौ परमहंस अथवा दण्डी होता है ॥ ९८ ॥

राहुणा लोहयंत्री ॥ ९९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें और उससे चतुर्थ नवांक्षमें राहु स्थित होवे तौ लोहरचित यंत्र रखनेवाला होता है ॥ ९९ ॥

रविणा खड्गी ॥ १०० ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें और उससे चतुर्थ नवांशमें सूर्य स्थित होवे तौ तलवार रखनेवाला होता है ॥ १०० ॥

कुजेन कुन्ती ॥ १०१ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें और उससे चतुर्थ नवांशमें मंगल स्थित होवे तौ कुन्तशस्त्र रखनेवाला होता है ॥ १०१ ॥

मातापित्रोश्चन्द्रगुरुभ्यां ग्रंथकृत् ॥ १०२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें चन्द्रमा और बृहस्पति ये दोनों स्थित होवें तौ ग्रंथ बनानेवाला होताहै १०२

शुक्रेण किञ्चिदूनम् ॥ १०३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें चंद्र-सहित शुक्र[1] स्थित होवे तौ ग्रंथ बनानेमें कुछ कम शक्तिवाला होता है ॥ १०३ ॥

---

१ शंका–सूत्रमें तौ केवल शुक्रकाही ग्रहण है फिर साथमें चंद्रमाका कैसे ग्रहण किया है ? समाधान–यहां पूर्व सूत्रसे चंद्रमाकी अनुवृत्ति है केवल शुक्रकाही ग्रहण नहीं क्योंकि केवल शुक्रका फल अगाडी कहा जावेगा। यदि कहो कि "शुक्रेण किञ्चिदूनम्, शुक्रेण कविर्वाग्मी काव्यज्ञश्च" इन दोनों सूत्रोंका यह अर्थ करे कि ग्रंथकार होनेमें कछुन्यून और कवि वाग्मी और काव्यवेता होता है सो यहभी

बुधेन ततोऽपि ॥ १०४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें चन्द्रसहित बुध स्थित होवे तो शुक्रकी अपेक्षा करके ग्रन्थ बनानेमें और भी कुछ कम शक्तिवाला होता है ॥ १०४ ॥

शुक्रेण कविर्वाग्मी काव्यज्ञश्च ॥ १०५ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें केवल शुक्रही स्थित होवे तौ कवि और कहनेमें अति चतुरवाणीवाला तथा काव्योंको जाननेवाला होता है ॥ १०५ ॥

गुरुणा सर्वविद् ग्रंथिकश्च ॥ १०६ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें केवल बृहस्पति स्थित होवे तौ सर्वज्ञ तथा ग्रन्थकर्त्ता होता है ॥ १०६ ॥

न वाग्मी ॥ १०७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें बृहस्पति होवे तौ वक्ता नहीं होता है ॥ १०७ ॥

विशिष्यवैयाकरणो वेदवेदांगविच्च ॥ १०८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें बृहस्पति होवे तौ विशेष करके व्याकरणशास्त्रका जाननेवाला तथा वेद वेदांगोंका जाननेवाला होता है ॥ १०८ ॥

सभाजडः शनिना ॥ १०९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें शनैश्चर स्थित होवें तौ सभाजड अर्थात् सभामें बोलनेवाला नहीं होता है ॥ १०९ ॥

नहीं कहा जा सकता क्योंकि यदि ऐसा अर्थ होता तौ "शुक्रेण किंचिदूनं कविर्वाग्मी काव्यश्च" ऐसा एकहीं सूत्र होता सो है नहीं इस कारण इस सूत्रका चंद्र इस पदकी अनुवृत्ति द्वारा अर्थ करना उचित है । यदि कहो कि समासके मध्यमें स्थित हुए पदोंके एक अंशकी अनुवृत्ति उचित नहीं है सो यहभी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इस ग्रंथमें इस प्रकारकी अनुवृत्ति करनेकी रीति है ॥

बुधेन मीमांसकः ॥११०॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें बुध स्थित होवे तौ मीमांसाशास्त्रका जाननेवाला होता है ॥११०॥

कुजेन नैयायिकः ॥१११॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पञ्चम नवांशमें मंगल स्थित होवे तौ न्यायशास्त्रका जाननेवाला होता है ॥१११॥

चंद्रेण सांख्ययोगज्ञः साहित्यज्ञो गायकश्च ॥ ११२ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें चन्द्रमा स्थित होवे तौ सांख्ययोगका जाननेवाला तथा साहित्यका जानने-वाला और गान करनेमें निपुण होता है ॥ ११२ ॥

रविणा वेदान्तज्ञो गीतज्ञश्च ॥ ११३ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पंचम नवांशमें सूर्य स्थित होवे तौ वेदान्तशास्त्रका जाननेवाला तथा गीतोंका जाननेवाला होता है ॥ ११३

केतुना गणितज्ञः ॥ ११४ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पञ्चम नवांशमें केतु स्थित होवे तौ गणितका जाननेवाला होता है ॥ ११४ ॥

गुरुसंबन्धेन संप्रदायसिद्धिः ॥ ११५ ॥

यदि इन कहे हुए समस्तयोगोंके विषे बृहस्पतिकी दृष्टि और बृहस्पतिका षड्वर्ग सम्बन्ध होवे तौ जिस २ शास्त्रके जाननेका जो २ योग है उस २ शास्त्रकी सम्प्रदायसिद्धि अर्थात् समस्त भेद जाननेकी गति होती है । भाव यह है कि जिस शास्त्रके जाननेका जो योग पाया जावे यदि उस योगपर बृहस्पतिकी दृष्टि अथवा षड्वर्ग संबन्ध होवे तौ उस शास्त्रके समस्त गम्भीर भावका जानने-वाला होता है ॥ ११५ ॥

भाग्ये चैवम् ॥ ११६ ॥

जिस प्रकार कि आत्मकारकके नवांशमें अथवा उससे पञ्चमांशमें पूर्व कहे हुए चन्द्र बृहस्पति आदिकोंके योग करके ग्रन्थकर्तृत्वादि फल विचारा जाता है तिसी प्रकार आत्मकारकके नवांशसे द्वितीय नवांशमें चंद्र बृहस्पति आदिकोंके योगसे ग्रन्थकर्तृत्वादि फल विचारना चाहिये ॥ ११६ ॥

सदा चैवमित्येके ॥ ११७ ॥

आत्मकारकके नवांशमें तृतीय नवांशमेंभी पूर्व कहे हुए चन्द्र, बृहस्पति आदिक ग्रहोंके योग करके पूर्व कहा हुआ ग्रन्थकर्तृत्वादि फल विचारना चाहिये ऐसा कोई आचार्य कहते हैं ॥ ११७ ॥

भाग्ये केतौ पापदृष्टे स्तब्धवाक् ॥ ११८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशसे द्वितीय नवांशमें पापग्रहकर देखा हुआ केतु स्थित होवे तो कुछ रुक २ कर बोलनेवाला अथवा शीघ्र उत्तर देनेमें असमर्थ वाणीवाला होता है ॥ ११८ ॥

इसके अनन्तर केमद्रुमयोग कहते हैं ।

स्वपितृपदाद्भाग्यरोगयोः पापे साम्ये केमद्रुमः ॥११९॥

अपने जन्मलग्नसे अथवा जन्मलग्नके आरूढ स्थानसे द्वितीय और अष्टमराशिपर केवल पापग्रह होवें अथवा इन्हीं स्थानोंपर पाप ग्रह और शुभ ग्रह समान संख्यावाले होवें तौ केमद्रुम योग होता है। भाव यह है कि अपने जन्मलग्नसे वा जन्मलग्नके आरूढ स्थानसे जो कि द्वितीय और अष्टमराशि है उन दोनोंपर जो केवल पापग्रह होवें तो केमद्रुमयोग होता है और इन कहे हुए स्थानोंपर एक २ पापग्रहके साथ एक २ शुभग्रह हो अथवा दो २ पापग्रहोंके साथ दो २ शुभग्रह होवें अर्थात् पापग्रह और शुभग्रह बराबर स्थित होवें तोभी केमद्रुमयोग होता है और जो न्यूनाधिक होवें तो केमद्रुमयोग नहीं होता है[1] ॥ ११९ ॥

---

१ शंका–सूत्रमें जो कि स्वशब्द है तिससे आत्मकारकके नवांशका बोध हो सकता है सो कैसे नहीं कहा ? समाधान–यदि स्वशब्द आत्मकारकके नवांशका

चंद्रदृष्टौ विशेषेण ॥ १२० ॥

यदि केमद्रुमयोग होनेपर जन्मलग्नसे अथवा आरूढ स्थानसे द्वितीय और अष्टम स्थानपर चंद्रमाकी दृष्टि होवे तो विशेष करके केमद्रुमनाम दरिद्रयोग होता है ॥ १२० ॥

ये पूर्व कहे हुए फल क्या सब कालमें होते हैं अथवा किसी कालविशेषमें होते हैं इसका निर्णय कहते हैं।

सर्वेषां चैवं पाके ॥ १२१ ॥

समस्त राशियोंकी दशामें ये पूर्व कहे हुए फल होते हैं अथवा समस्त राशियोंके दशारम्भ कालमेंभी इस प्रकार केमद्रुमयोगका विचार करना चाहिये। केमद्रुमयोग होनेपर दशामें दारिद्र्य होता है ॥ १२१ ॥

इति श्रीजैमिनीयसूत्रप्रथमाध्याये श्रीनीलकंठीयतिलकानुसृतभाषा-टीकायां श्रीपाठकमंगलसेनात्मजकाशिरामकृतायां द्वितीय-पादः समाप्तः ॥ २ ॥

बोधक होता तौ "पितृपदात्" इस वाक्यसेही आत्मकारकके नवांशका लाभ होनेपर फिर स्वशब्दका ग्रहण करना निरर्थक होता और जब कि स्वशब्द न होता तौ "पितृपदात्" इस पदसे यह अर्थ होता आत्मकारकके नवांशसे और आत्म-कारकके नवांशके आरूढ स्थानसे सो यहां यह अर्थ अपेक्षित नहीं है। यहां तौ अपने जन्मलग्नसे और अपने जन्मलग्नके आरूढ स्थानसे ऐसा अर्थ अपेक्षित है क्योंकि ऐसे अर्थमें वृद्धवचन भी प्रमाण है "आरूढाज्जन्मलग्नाद्वा पापौ स्त्रीहा-निगौ यदि। केवलौ सग्रहत्वेऽपि समसंख्यौ शुभाशुभो॥ चंद्रदृष्टो विशेषेण योग केमद्रुमयोग मतः। अर्थ–जन्मलग्नसे अथवा जन्मलग्नके आरूढस्थानसे द्वितीय अष्टम स्थानपर केवल पापग्रह होवे अथवा पापग्रह और शुभग्रह उक्त स्थानोंपर बराबर संख्यावाले होवें तौ केमद्रुमयोग होता है और चंद्रमाकर देखे गये होवें तौ विशेषकरके केमद्रुमो होता है और इस सूत्रकी व्याख्या स्वाम्यादिकोंने इस प्रकार की है। आत्मकारकसे और अपने लग्नसे और आरूढ स्थानसे द्वितीय अष्टम स्थानोंपर पापग्रह होवें अथवा पापग्रह और शुभग्रह बराबर संख्यावाले होकर स्थित होवें तो केमद्रुमयोग होता है। यह व्याख्या वृद्धसंमत नहीं है ॥

अथ तृतीयपादः।



इसके अनन्तर आरूढकुण्डलीस्थ ग्रहोंके आश्रय करके फलोंके कहनेको पदका अधिकार करते हैं।

अथ पदम् ॥ १ ॥

इसके अनन्तर आरूढका दूसरा नाम जो कि पद है उसका अधिकार इस प्रकरणमें कहते हैं। भाव यह है कि " यावदाश्रयं पदमृक्षाणाम् " इस सूत्रमें जो कि आरूढके दूसरे नाम या पदका विवेचन किया है उस पदका अधिकार इस प्रकरणमें करते हैं ॥१॥

इसके अनन्तर लग्नारूढसे एकादशस्थानका फल कहते हैं।

व्यये सग्रहे ग्रहदृष्टे श्रीमन्तः ॥ २ ॥

लग्नारूढ स्थानसे एकादश स्थान किसी ग्रहसे युक्त होकर किसी ग्रहकर देखा गया होवे तो लक्ष्मीवाले पुरुष होते हैं ॥ २ ॥

शुभैर्न्याय्यो लाभः ॥ ३ ॥

यदि लग्नारूढ स्थानसे एकादश स्थान शुभ ग्रहोंसे युक्त होकर शुभ ग्रहोंने देखा होवे तो न्यायमार्गसे धनका लाभ होता है ॥ ३ ॥

पापैरमार्गेण ॥ ४ ॥

यदि लग्नारूढ स्थानसे एकादश स्थान पाप ग्रहोंसे युक्त होकर पाप ग्रहोंने देखा होवे तो शास्त्रविरुद्ध मार्गसे धनका लाभ होता है ॥ ४ ॥

उच्चादिभिर्विशेषात् ॥ ५ ॥

उच्च और अपने ग्रहादिकोंपर स्थित हुए ग्रहोंके योग करके विशेष धनकी प्राप्ति होवे है। भाव यह है कि लग्नारूढ स्थानसे एकादश स्थान उच्च स्वगृहादिस्थ शुभ ग्रहोंसे युक्त होकर उच्च स्वगृहादिस्थ शुभ ग्रहोंकर देखा होवे तौ न्यायमार्गसे विशेष धनकी

प्राप्ति होवे है और लग्नारूढ स्थानसे एकादश स्थान उच्चस्वगृहादिस्थ पाप ग्रहोंसे युक्त होकर उच्च स्वगृहादिस्थ पाप ग्रहोंकर देखा होवे तौ शास्त्रविरुद्ध मार्गसे विशेष धनकी प्राप्ति होवे है[1] ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर लग्नारूढ स्थानसे द्वादश स्थानका फल कहते हैं ।

नीचेग्रहदृग्योगाद्व्ययाधिक्यम् ॥ ६ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वादश स्थानपर ग्रहोंकी दृष्टि और योग होवे तौ खर्चकी अधिकता रहती है । भाव यह है कि लग्नारूढ स्थानसे द्वादश स्थान शुभग्रहयुक्त होकर शुभ ग्रहनेही देखा होवे तौ सन्मार्गमें खर्च बहुत होता है और पाप ग्रहोंसे युक्त होकर पाप ग्रहोंनेही देखा होवे तौ असन्मार्गमें खर्च बहुत होता है ॥ ६ ॥

रविराहुशुक्रैर्नृपात् ॥ ७ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वादश स्थानपर सूर्य राहु शुक्र ये इकट्ठे होकर अथवा एक २ ही स्थित होवे तौ राजद्वारमें खर्च होता है ॥ ७ ॥

चंद्रदृष्टौ निश्चयेन ॥ ८ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वादश स्थानपर स्थित हुए सूर्य राहु शुक्रपर

---

१ यहांपर वृद्धवचनभी है "आरूढाल्लाभभवनं ग्रहः पश्येत्तु न व्ययम् । यस्य जन्मनि सोऽपि स्यात्प्रबलो धनवानपि ॥ द्रष्टृग्रहाणां बाहुल्ये तदा द्रष्टरि तुङ्गगे । सार्गले चापि तत्रापि बह्वर्गलसमागमे ॥ शुभग्रहार्गले तत्र तत्राप्युच्चग्रहार्गले । सुखानि स्वामिना दृष्टे लग्नभाग्याधिपेन वा ॥ जातस्य पुंसः प्राबल्यं निर्दिशेदुत्तरोत्तरम् ।" अर्थ-लग्नारूढ स्थानसे ग्यारहवें स्थानको ग्रह देखता होवे और बारहवें स्थानको न देखता होवे तौ अत्यन्त धनवान् होता है । यदि आरूढ स्थानसे एकादश स्थानके देखनेवाले बहुत ग्रह होवें तौ औरभी अधिक धनवान् होता है और यदि देखनेवाला ग्रह उच्च होवे तौ औरभी अधिक धनवान् होता है और यदि देखनेवाला ग्रह अर्गलासहित होवे तौ औरभी अधिक धनवान् होताहै और यदि देखनेवाले ग्रहपर बहुत अर्गलाओंका समागम होवे तौ औरभी अधिक धनवान् होता है और यदि शुभ ग्रहकी अर्गला होवे तौ औरभी अधिक धनवान् होता है और यदि उच्च ग्रहकी अर्गला होवे औरभी अधिक धनवान् होता है और यदि स्वामी अथवा लग्न भाग्यनाथने देखा होवे तौ औरभी अधिक धनवान् होता है परन्तु इन योगोंमें कोई ग्रह बारहवें स्थानको न देखता हो ॥

चन्द्रमाकी दृष्टि होवे तौ निश्चय करके अवश्यही राजद्वारमें खर्च होता है और चन्द्रदृष्टि न होवे तौ राजद्वारके खर्चमें सन्देह रहता है ॥ ८ ॥

बुधेन ज्ञातिभ्यो विवादाद्वा ॥ ९ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वादश स्थानपर बुध स्थित होवे तौ जातिके निमित्त अथवा झगडेसे धनका खर्च होता है ॥ ९ ॥

गुरुणा करमूलात् ॥ १० ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वादश स्थानपर बृहस्पति स्थित होवे तौ किसी करके बहानेसे धनका खर्च होता है ॥ १० ॥

कुजशनिभ्यां भ्रातृमुखात् ॥ ११ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वादश स्थानपर मङ्गल और शनैश्चर दोनों स्थित होवें तौ भ्रातादिकोंके द्वारा धनका खर्च होता है ॥ ११ ॥

इसके अनन्तर एकादश स्थानमें व्ययवत्ही लाभका विचार करते हैं ।

एतैर्व्यय एवं लाभः ॥ १२ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वादश स्थानपर स्थित हुए जिन ग्रहोंसे कि जिस प्रकार कि जिस मार्गद्वारा खर्च कहा है तिसी प्रकार एकादश स्थानपर स्थित हुए उन्हीं ग्रहोंसे उसी प्रकार करके उसी मार्ग-द्वारा लाभभी होता है ॥ १२ ॥

इसके अनन्तर लग्नारूढसे सप्तम स्थानका फल कहते हैं ।

लाभे राहुकेतुभ्यामुदररोगः ॥ १३ ॥

लग्नारूढ स्थानसे सप्तम स्थानपर राहु अथवा केतु स्थित होवे तौ उदरका रोग होता है ॥ ॥ १३ ॥

इसके अनन्तर आरूढ स्थानसे द्वितीयस्थ केतुका फल कहते हैं ।

तत्र केतुना झटिति ज्यानि लिंगानि ॥ १४ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वितीय स्थानमें केतुके योग करके शीघ्रही थोड़ी अवस्थामें बुढापेके चिह्न होते हैं ॥ १४ ॥

चन्द्रगुरुशुक्रेषु श्रीमन्तः ॥ १५ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वितीय स्थानमें चन्द्र बृहस्पति शुक्र ये समस्त अथवा एकही एक स्थित होवें तौ लक्ष्मीवाले होते हैं ॥ १५ ॥

उच्चेन वा ॥ १६ ॥

लग्नारूढ स्थानसे द्वितीय स्थानमें कोई उच्चका शुभ ग्रह अथवा उच्चका पाप ग्रह स्थित होवे तौ लक्ष्मीवाले होते हैं ॥ १६ ॥

स्वांशवदन्यत्प्रायेण ॥ १७ ॥

जिस प्रकार कि आत्मकारकके नवांशसे फल कहा है तिसी प्रकार बहुधा करके लग्नारूढ स्थानसे फल जानना चाहिये । भाव यह है कि जिस २ प्रकार कि आत्मकारकके नवांशसे जिस जिस स्थानमें कि जो २ फल विचारा जाता है तिसी २ प्रकार लग्नारूढ स्थानसे उसी २ स्थानमें उसी २ फलका विचार कर्त्तव्य है[२] ॥ १७ ॥

लाभपदे केंद्रेत्रिकोणे वा श्रीमन्तः ॥ १८ ॥

---

१ "तत्र केतुना झटिति" इस सूत्रमें जो कि तत्र पद है तिसका अर्थ "लाभे" इस पदकी अनुवृत्तिसे "सप्तमे" ऐसा स्वाम्यादिकोंने किया है सो अनुचित है क्योंकि यदि ऐसा अर्थ होता तौ "केतुना झटिति ज्यानि लिंगानि" ऐसा सूत्र उचित होता फिर "तत्र" इस पदकी क्या आवश्यकता थी । दूसरे--"चंद्रगुरुशुक्रेषु श्रीमन्तः" इस सूत्रके अगार वक्तव्य होनेसे सप्तममें धनका विचार नहीं किया जाता है । धनका विचार तो द्वितीय स्थानमेंही किया जाता है इस कारण इस सूत्रमें "तत्र" इस पदका प्रयोग है । द्वितीय स्थानमें धनका विचार वृद्धोंने भी कहा है । "आरूढात्पष्ठभे पापे चोरः स्याच्छुभवर्जिते । आरूढाद्धापि सौम्ये तु सर्वदिश्यधिपो भवेत् ॥ सर्वज्ञस्तत्र जीवे स्यात्कविर्वादी च भार्गवे ।" अर्थ-- आरूढ स्थानसे द्वितीय स्थानपर पाप ग्रह होवे और शुभग्रह वर्जित होवे तौ चोर होता है और बुध होवे तौ सर्व दिशामें राजा होता है । यदि बृहस्पति होवे तौ सर्वज्ञ होता है । शुक्र होवे तौ कवि और वादी होता है ॥

२ सूत्रमें जो कि "प्रायेण" ऐसा पद कहा है तिसकरके सब जगह कारकांशवत् फल नहीं विचारना चाहिये क्योंकि औपदेशिक शास्त्रके विरुद्ध अतिदेशिकशास्त्रकी प्रवृत्ति नहीं होती है ॥

लग्नारूढ स्थानसे केन्द्र नाम प्रथम चतुर्थ सप्तम दशम स्थानमें अथवा त्रिकोण नाम पञ्चम नवम स्थानमें सप्तम भावका आरूढ राशि होवे तौ लक्ष्मीवाले होते हैं ॥ १८ ॥

अन्यथा दुःस्थे ॥ १९ ॥

लग्नारूढ स्थानसे दुःस्थ नाम षष्ठ अष्टम द्वादश स्थानपर सप्तमभावका आरूढ राशि स्थित होवे तौ लक्ष्मीवाले नहीं होते हैं किंतु दरिद्री होते हैं ॥ १९ ॥

केंद्रे त्रिकोणोपचयेषु द्वयोर्मैत्री ॥ २० ॥

लग्नारूढ स्थानसे केंद्रमें अथवा त्रिकोणमें अथवा उपचय[1] नाम तृतीय दशम एकादश स्थानमें सप्तमभावका आरूढ राशि स्थित होवे तौ दोनों भार्या और भर्त्तामें परस्पर मित्रता रहती है । इसी प्रकार लग्नारूढसे केंद्र त्रिकोण उपचय स्थानमें पुत्रादिभावका आरूढ राशि स्थित होवे तौ पुत्रादिकोंकी मित्रता विचारने योग्य है ॥ २० ॥

रिपुरोगचिन्तासु वैरम् ॥ २१ ॥

लग्नारूढ स्थानसे रिपु नाम षष्ठ और रोग नाम अष्टम और चिंता नाम द्वादश इन स्थानोंपर जिस २ पुत्रादिभावका आरूढ राशि स्थित होवे तो उसी २ पुत्रादिसे वैर होता है । जैसे लग्नारूढ स्थानसे पुत्रभावका आरूढ राशि षष्ठ अष्टम द्वादश इन स्थानोंपर स्थित होवे तो पुत्र और पिताका परस्पर वैर होता है । तिसी प्रकार स्त्री माता पिता बान्धव आदिकोंके वैर विचारना चाहिये[2] ॥ २१ ॥

---

१ यहां उपचयसंज्ञक स्थानोंके मध्यमें षष्ठस्थानका ग्रहण नहीं है क्योंकि षष्ठस्थानका फल " रिपुरोगचिन्तासु वैरम् " इस सूत्रमें कहा जावेगा ॥

२ " लाभपदे केंद्रे " इससे लेकर " रिपुरोगचिन्तासु वैरम् " इसपर्यन्त जो कि विषय कहा है उसके पुष्ट करनेमें वृद्धवचनभी है । " लग्नारूढं दारपदं मिथः केंद्रगतं यदि । त्रिलाभे वा त्रिकोणे वा तथा राजान्यथाऽधमः ॥ आरूढौ पुत्रपित्रोस्तु त्रिलाभकेन्द्रगौ यदि । द्वयोर्मैत्री त्रिकोणे तु साम्यं द्वेषोऽन्यथा भवेत् ॥ एवं दारादिभावानामपि पत्यादिमित्रता । जातकद्वयमालोक्य चिन्तनीयं विचक्षणैः ॥ " इन तीनों श्लोकोंका अर्थ सुगम है ॥

पत्नीलाभयोर्दिष्टचा निराभासार्गलया ॥ २२ ॥

लग्नारूढ और सप्तमारूढ इन दोनोंकी अप्रतिबन्ध अर्गला होवे तो उसकरके भाग्यवान् होते हैं। भाव यह है कि लग्नारूढ राशि और सप्तम भावका आरूढ राशि इन दोनोंका अर्गलायोग होवे और उस अर्गलायोगका बाधकयोग न होवे तो भाग्यवान् होता है[1] ॥ २२ ॥

शुभार्गले धनसमृद्धिः ॥ २३ ॥

लग्नारूढ और सप्तमारूढ इन दोनोंकी अर्गला यदि शुभ ग्रहोंकरके होवे तो धनकी बहुत वृद्धि होवे है। इस कथनसे यह जनाया गया कि लग्नारूढ और सप्तमारूढ इन दोनोंकी अर्गला पाप ग्रहोंकरके होवे तो धन मात्र होता है और शुभ ग्रहोंकरके होवे तो धनकी विशेषत होवे है। पूर्वसूत्रमें शुभ पाप साधारणी बाधकयोगवर्जित अर्गला करके धनादि होनेके लक्षणवाला भाग्ययोग कहा है और इस सूत्रमें शुभग्रहमात्र अर्गलाकरके धनकी वृद्धि और पापग्रहमात्र अर्गलासे धनकी यथावत् स्थिति और शुभ पापग्रह दोनोंकी अर्गलाकरके किसी समय धनकी वृद्धि और किसी समय धनकी यथावत् स्थिति होती है ऐसा कहा है ॥ २३ ॥

---

१ भाग्ययोगकी प्रवलतामें प्राचीनोंने कहाभी है। "यस्य पापः शुभो वापि ग्रहस्तिष्ठेच्छुभार्गले। तेन द्रष्टेक्षितं लग्नं प्रावल्यायोपकल्पते ॥ यदि पश्येद् ग्रहस्तत्र विपरीतार्गले स्थितः। अर्थ—जिसके प्रतिबन्धवर्जित अर्गलामें शुभ ग्रह अथवा पाप ग्रह स्थित होवे और उसी ग्रहने आरूढ लग्न देखा होवे तौ भाग्ययोगकी प्रबलताके लियें कल्पित होता है और प्रतिबन्धयुक्त अर्गलामें ग्रह स्थित होवे तौ भाग्यकी प्रबलताके लिये नहीं कल्पित होता है ॥

२ शङ्का—"शुभार्गले" इस सूत्रका अर्थ यह कैसा नहीं किया जा सकता है कि बाधकयोगवर्जित अर्गला होनेपर धनकी वृद्धि होती है? समाधान—यदि ऐसा अर्थ किया जावेगा तौ दोनों सूत्रोंमें एकही अर्गला हुई और जब कि एकही अर्गला हुई तौ पूर्वसूत्रसे यह सूत्र व्यर्थ हो सकता है इस कारण शुभ शब्दसे शुभ ग्रहकाही ग्रहण है। यदि कहो कि भाग्ययोग और धनयोगमें भेद है सो यहभी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि धनके विना भाग्यसिद्धि नहीं हो संकती है ॥

जन्मकालघटिकास्वेकदृष्टासु राजानः ॥ २४ ॥

जन्मलग्न और होरालग्न और घटिकालग्न ये तीनों किसी एक ग्रहकर देखे होवें तो राजा होते हैं। भाव यह है कि इन तीनोंको एक ग्रह देखता हो तो राजा होते हैं न कि एक दो लग्नके देखनेसे यहां एक ग्रहकी दृष्टिविषयकी अपेक्षा है न कि एक ग्रहमात्रकी[1] ॥ २४ ॥

पत्नीलाभयोश्च राश्यंशकदृक्काणैर्वा ॥ २५ ॥

जन्मराशिकुण्डली और नवांशकुण्डली और द्रेष्काणकुण्डली इन तीनोंके विषे प्रथम और सप्तम स्थान इन दोनोंको एक ग्रह देखता होवे तौ राजा होते हैं। भाव यह है कि राशिकुण्डलीके प्रथम सप्तम स्थान और नवांशकुण्डलीके प्रथम सप्तम स्थान और द्रेष्काण कुण्डलीके प्रथम सप्तम स्थान ये छःओं स्थान एक ग्रहकर देखे जावें तो परिपूर्ण राजयोग होता है। यहां राशिशब्दसे चन्द्रराशि अपेक्षित है न कि लग्नराशि ॥ २५ ॥

तेष्वेकस्मिन्न्यूने न्यूनम् ॥ २६ ॥

जन्मलग्न और होरालग्न और घटिकालग्न इनके विषे और राशि कुण्डली और नवांशकुण्डली और द्रेष्काणकुण्डली इनके विषे एक स्थान एक ग्रहकी दृष्टिसे न्यून होवे तौ न्यूनराजयोग होता है। भाव यह है कि जन्मलग्न होरालग्न घटिकालग्न इनमें दो लग्नको एक ग्रह देखता होवे तौ न्यूनराजयोग जानना और राशिकुण्डली द्रेष्काणकुण्डली और नवांशकुण्डली इनमें दो कुण्डलीके सप्तम स्थानको एक ग्रह देखता होवे तौ भी न्यूनराजयोग होता है[2] ॥ २६ ॥

---

१ घटिकालग्नके बनानेकी रीति वृद्धोंने कही है । "लग्नादेकघटीमात्रं याति लग्नं दिने दिने । परन्तु घटिकालग्नं निर्दिशेत्कालवित्तमः ॥" अर्थ--जन्मलग्नसे एक घटीमात्रमें घटिका लग्न व्यतीत होता है। इष्ट घटीको जन्मलग्नकी संख्यामें जोडकर १२ का भाग देनेसे जो बचे वही घटिकालग्न होता है ॥

२ इस कथनकी पुष्टतामें वृद्धवचनहै । "विलग्नघटिकालग्नहोरालग्नानि पश्यति । उच्चगृहे राजयोगो लग्नद्वयमथापि वा ॥ राशेर्दृक्काणतोंऽशाच्च राशेरंशादथापि वा ।

एवमंशतो दृक्काणतश्च ॥ २७ ॥

जिस प्रकार कि जन्मकुण्डलीके साथ होरालग्न और घटिकालग्न इन दोनोंका ग्रहण है तिसी प्रकार नवांशकुण्डलीके साथ और द्रेष्काणकुण्डलीके साथ पृथक् २ होराकुण्डली और घटिकाकुण्डली इन दोनोंका ग्रहण है । भाव यह है कि जैसे कि जन्मलग्न होरालग्न घटिका लग्न ये तीनो एक ग्रहकरके देखे होवें तौ राजयोग होताहै । तिसी प्रकार नवांशलग्न होरालग्न घटिकालग्न ये तीनों एक ग्रहकरके देखे होवें तौ राजयोग होता है और द्रेष्काणलग्न होरालग्न घटिका-लग्न ये तीनों एक ग्रह करके देखे होवें तौभी राजयोग होता है ॥ २७ ॥

इसके अनन्तर यानयोगका कहते हैं ।

शुक्रचंद्रयोर्मिथोदृष्टयोः सिंहस्थयोर्वा यानवंतः ॥२८॥

यहां कहीं स्थित हुए शुक्र चन्द्रमा ये दोनों परस्पर देखे गये होवें तौ पुरुष सवारीवाला होता है अथवा शुक्र चन्द्रमा दोनोंमें

यद्वा राशिदृक्काणाभ्यां लग्नद्रष्टा तु योमदः ॥ प्रायेणायं जातकेषु प्रभूणामेव दृश्यते ।'' अर्थ--जन्मलग्न घटिकालग्न होरालग्न इन तीनोंको उच्चगृहमें स्थित हुआ ग्रह देखता हो अथवा इन तीनोंमेंसे दोहोंका उच्चस्थ ग्रह देखता होवे तौ राजयोग होता है । राशिलग्न द्रेष्काणलग्न नवांशलग्न इन तीनोंको उच्चग्रह देखत होवे अथवा इन तीनोंमें राशिलग्न और नवांशलग्न इन दोनोंको अथवा राशिलग्न और द्रेष्काणलग्न इन दोनोंको उच्चस्थ ग्रह देखता होवे तौभी राजयोग होता है । राजयोगमें अन्य वाक्यभी हैं । ''जन्मकालघटीलग्नेष्वेकेनैवेक्षितेषु तु । उच्चारूढे तु संप्राप्ते चंद्राक्रान्ते विशेषतः ॥ क्रान्ते वा गुरुशुक्राभ्या केनाप्युच्चग्रहेण वा । दुष्टार्गलग्रहाभावे राजयोगो न संशयः ॥'' अर्थ--जन्मलग्न और होरालग्न और घटिकालग्न ये तीनों एकही ग्रहने देखे हों और वह देखनेवाला ग्रह उच्चका हो अथवा चंद्रमाके साथ होवे अथवा बृहस्पति शुक्र वा किसी उच्च ग्रहक साथ होवे दुष्टार्गलग्रहका अभाव होवे तो राजयोग होता है इसमें संसय नहीं ॥

१ अन्यराजयोग यहां ग्रन्थान्तरसे लिखते हैं । ''निशार्द्धाच्च दिनार्द्धाच्च परं सार्द्धाद्रिनाडिका शुभात्तदुद्भवो राजा धनी वा तत्समोऽपि वा ॥'' अर्थ--अर्द्धरात्र-से ऊपर और दोपहरसे ऊपर अढाई घटिका शुभ कही हैं उनमें उत्पन्न हुआ राजा व धनीका राजसमान होता है ॥

एकसे दूसरा तृतीय स्थानपर स्थित होवे तौभी पुरुष सवारीवाला होता है । भाव यह है कि कुण्डलीमें जिसी किसी स्थानमें स्थित हुआ शुक्र चन्द्रमाको देखता हो और चन्द्रमा शुक्रको देखता हो तौ यानयोग होता है और शुक्रसे चन्द्रमा तृतीय स्थानपर स्थित होवे तोभी यानयोग होता है[1] ॥ २८ ॥

शुक्रकुजकेतुषु वैतानिकाः ॥ २९ ॥

यदि शुक्र मंगल केतु ये तीनों परस्पर एक दूसरेको देखते होवें अथवा परस्पर तृतीय स्थानपर स्थित होवें तौ वितानादि राजचिह्नवाले होते हैं । भाव यह है कि कुण्डलीमें शुक्र–मंगल और केतुको और मंगल–शुक्र और केतुको और केतु–मंगल और शुक्रको देखता हो तौ वितानादि राजचिह्नवाले पुरुष होते हैं अथवा शुक्रसे मंगल केतु तृतीय स्थानपर स्थित हों अथवा मंगलसे शुक्र केतु तृतीय स्थानपर स्थित होवें अथवा केतुसे शुक्र मंगल तृतीय स्थानपर स्थित होवें तो भी वितानादि राजचिह्नवाले पुरुष होते हैं ॥२९॥

स्वभाग्यदारमातृभावसमेषु शुभे राजानः ॥३०॥

आत्मकारकग्रहसे जो कि द्वितीय चतुर्थ पञ्चमभावके राश्यादि हैं उनके समानही शुभ ग्रहोंके राश्यादि होवें तौ राजा होते हैं । भाव यह है कि आत्मकारकग्रहका जो कि राश्यादि है उससे द्वितीयभावका जो कि राश्यादि है और चतुर्थभावका जो कि राश्यादि है और पञ्चमभावका जो कि राश्यादि है इन तीनोंके समान शुभ ग्रहोंके राश्यादि होवें तौ राजा होते हैं इसी प्रकार पुत्रादिकारकवशसे पुत्रादिकोंका फल विचारना चाहिये । यदि पुत्रादिकारकोंके विषेभी राजयोगबल होवे तौ पुत्रादिकोंकाभी राजयोग कहना चाहिये ॥ ३० ॥

---

१ इसमें वृद्धवचनभी प्रमाण है । " चंद्रः कविं कविश्चन्द्रं पश्यत्यपि तृतीयगो । शुक्राच्चन्द्रे ततः शुक्रे तृतीये वाहनार्थवान् ॥ " इसका अर्थ सुगम है ॥

कर्मदासयोः पापयोश्च ॥ ३१ ॥

यदि आत्मकारकग्रहसे जो कि तृतीयभावका राश्यादि है और जो कि छठे भावका राश्यादि है इन दोनोंके समान दो पाप ग्रहोंके राश्यादि होवें तौभी राजा होते हैं ॥ ३१ ॥

पितृलाभाधिपाश्चैवम् ॥ ३२ ॥

लग्नेशसे और सप्तमेशसे द्वितीय चतुर्थ पञ्चमभाव इन तीनोंके राश्यादिके समान शुभ ग्रहोंके राश्यादि होवें और लग्नेशसे और सप्तमेशसे तृतीय षष्ठ इन दोनों भावोंके राश्यादिके समान दो पाप ग्रहोंके राश्यादि होवें तौ राजा होते हैं[1] ॥ ३२ ॥

मिश्रे समाः ॥ ३३ ॥

लग्नेशसे और सप्तमेशसे द्वितीय चतुर्थ पञ्चम इन भावोंके विषे शुभ ग्रह तथा पाप ग्रह दोनों होवें और तृतीय भाव और षष्ठ भावमेंभी पाप ग्रह दोनों होवें तौ राजाके समान होते हैं ॥ ३३ ॥

दरिद्रा विपरीते ॥ ३४ ॥

यदि पूर्वोक्त स्थानोंके मध्यमें शुभ स्थानोंके विषे पाप ग्रह और पाप स्थानोंके विषे शुभ ग्रह होवें तौ दरिद्री होते हैं ॥ ३४ ॥

मातरि गुरौ शुक्रे चन्द्रे वा राजकीयाः ॥ ३५ ॥

यदि लग्नेशसे और सप्तमेशसे पञ्चम स्थानके विषे बृहस्पति अथवा शुक्र वा चन्द्रमा स्थित होवे सौ राजकार्यके अधिकारवाला होता है ॥ ३५ ॥

कर्मणि दासे वा पापे सेनान्यः ॥ ३६ ॥

लग्नेशसे और सप्तमेशसे तृतीय अथवा षष्ठ भावमें पाप ग्रह होवे तौ सेनाधिपति होते हैं ॥ ३६ ॥

---

१ शङ्का-इस पादमें तौ आरूढस्थानका अधिकार है इससे पितृशब्दसे आरूढस्थान कैसे नहीं ग्रहण किया ? समाधान- ' जन्मकाल '' इस सूत्रसे सूत्रकारने कहीं कारक और कहीं जन्मलग्नका ग्रहण किया है । दूसरे इस ग्रंथमें बहुधाकरके पितृशब्दसे जन्मलग्नकाही ग्रहण है ॥

स्पपितृभ्यां कर्मदासस्थदृष्ट्या तदीशदृष्ट्या मातृनाथदृष्ट्या च धीमन्तः ॥ ३७॥

आत्मकारकसे और लग्नसे तृतीय और षष्ठ स्थानमें स्थित हुए ग्रहकी आत्मकारक और लग्नपर दृष्टि होवे अथवा आत्मकारकसे और लग्नसे तृतीय स्थानका स्वामी और षष्ठ स्थानका स्वामी आत्मकारक लग्नको देखता हो अथपा पञ्चम स्थानका स्वामी आत्मकारक और लग्नको देखता होवे तौ बुद्धिमान् होते हैं ॥ ३७ ॥

दारेशदृष्ट्या च सुखिनः ॥ ३८ ॥

आत्मकारकसे और लग्नसे चतुर्थ स्थानके स्वामीकी दृष्टि आत्मकारक और लग्नपर होवे तौ सुखी होते हैं ॥ ३८ ॥

दारेशदृष्ट्या दरिद्राः ॥ ३९ ॥

आत्मकारक अथवा लग्नसे अष्टम स्थानके स्वामीकी आत्मकारक और लग्नपर दृष्टि होवे तौ दरिद्री होते हैं ॥ ३९ ॥

रिपुनाथदृष्ट्या व्ययशीलाः ॥ ४० ॥

आत्मकारक और लग्नसे द्वादशस्थानके स्वामीकी दृष्टि आत्मकारक और लग्नपर होवे तौ खर्चीले स्वभाववाला होता है ॥ ४० ॥

स्वामिदृष्ट्या प्रबलाः ॥ ४१ ॥

लग्नपर लग्नेशकी दृष्टि होवे और आत्मकारकपर आत्मकाराश्रित राशिके स्वामीकी दृष्टि होवे तौ बलवान् होते हैं ॥ ४१ ॥

इसके अनन्तर आपद्योग कहते हैं ।

पश्चाद्रिपुभाग्ययोर्ग्रहसाम्यं बन्धः कोणयो रिपुजाययोः कीटयुग्मयोर्दाररिः फणीश्च ॥ ४२ ॥

लग्नसे द्वितीय और द्वादश स्थानमें और पञ्चम और नवम स्थानमें और द्वादश और षष्ठ स्थानमें और चतुर्थ और दशम स्थानमें ग्रहोंकी तुल्यता होवे अर्थात् एक होवे तौ एक और दो होवे तौ दो और तीन होवे तौ तीन इस रीति ग्रह बराबर स्थित

होवें तौ कारागृहमें बन्धन होता है। भाव यह है कि जो द्वितीय स्थानपर एक ग्रह होवे और द्वादश स्थानमें एक ग्रह होवे और जो दो वा तीन ग्रह द्वितीय स्थानमें होवे और द्वादशस्थानमेंभी दो वा तीन ग्रह स्थित होवें इसी प्रकार पञ्चम और नवम इन दोनोंमें ग्रह बराबर स्थित हों और द्वादश और षष्ठ इन दोनोंमें ग्रह बराबर स्थित हों और चतुर्थ और दशम इन दोनोंमें ग्रह बराबर स्थित होवें तौ कारागृहमें बन्धन होता है। यदि इन स्थानोंपर शुभ ग्रह स्थित हों अथवा शुभ ग्रह देखते हों अथवा इन स्थानोंके स्वामियोंके साथ शुभ ग्रह होवें अथवा स्वामियोंको शुभ ग्रह देखते होवें तौ विना बेडी बन्धनके कारागृहमें नाममात्रका बन्धन होता है और यदि इन स्थनोंपर पाप ग्रह स्थित होवें अथवा पाप ग्रह देखते हों अथवा इन स्थानोंके स्वामियोंके साथ पापग्रहोंका संबन्ध होवे तौ बेडी आदिकोंसे बन्धन होकर कारागृहमें निवास होता है॥ ४२॥

इसके अनन्तर नेत्रभंगयोग कहते हैं।

शुक्राद्गौणपदस्थो राहुः सूर्यदृष्टो नेत्रहा ॥४३॥

लग्नसे पञ्चम राशिके आरूढ स्थानमें स्थित हुआ राहु सूर्यने देखा होवे तौ नेत्रोंके नाशकर्त्ता होता है॥ ४३॥

स्वदारगयोःशुक्रचन्द्रयोरातोद्यं राजचिह्नानि च ॥४४॥

आत्मकारकके स्थानसे चतुर्थ स्थानपर शुक्र चन्द्र दोनों विद्यमान होवें तौ आतोद्य नाम बाजे और राजचिह्न पताकादिकके धारण करनेवाले होते हैं॥ ४४॥

इति श्रीजैमिनीयसूत्रप्रथमाध्याये नीलकंठीयतिलकानुसृतभाषाटीकायां श्रीपाठकमंगलसेनात्मजकाशिरामकृतायां तृतीयः पादः समाप्तः ॥३॥

अथ चतुर्थपादः ।

इसके अनन्तर उपपदादिके आश्रयसे फल कहते हैं ।
प्रथम उपपदको दिखाते हैं ।

उपपदं पदं पित्रनुचरात् ॥ १ ॥

लग्नसे जो कि द्वादश राशि है उसका जो कि आरूढस्थान है वह उपपदसंज्ञक है[1] ॥ १ ॥

तत्र पापस्य पापयोगे प्रव्रज्या दारनाशो वा ॥२॥

उपपदसे जो कि तत्र नाम द्वितीयस्थान है उसमें पापग्रहकी राशि विद्यमान होवे और पापग्रह उसमें स्थित होवे तो संन्यास होता है अथवा स्त्रीका नाश होता है[2] ॥ २ ॥

उपपदस्याप्यारूढत्वादेव नात्र रविः पापः ॥ ३ ॥

---

१ शङ्का–पित्रनुचरपदसे द्वादशस्थानका ज्ञान कैसे हुआ ? समाधान–पितृलग्न है अनुचर द्वितीय जिसका इस व्युत्पत्तिसे द्वादश स्थानका ज्ञान होता है और " पित्रनुचरात् " इस पाठकोही स्वीकार करके इस पदके अक्षरोंकी संख्या पिंडसे सप्तसंख्याके लाभकर " सप्तमात्पदमुपपदम् " ऐसी व्याख्या जो कोई आचार्योंने करी है सो अयुक्त है । यदि यह व्याख्या युक्त मानी जाने तो थोडा होनेसे " उपपदं पदं लाभात् " ऐसा सूत्र रचित होता ॥

२ शङ्का–जिस प्रकार कारकाधिकार और पदाधिकार इन दोनोंमें " तत्र " इस पदसे " कारके पदे " ऐसा अर्थ होता है तिसी प्रकार इस प्रकरणमें " तत्र " इस पदसे " उपपदे " ऐसा अर्थ कैसे नहीं किया ? समाधान–यह कथन सत्य है परन्तु यहां " तत्र " यह पद अधिकारमें स्थित नहीं इस कारण " तत्र " इस पदसे द्विसंख्याके लाभसे " उपपदं द्वितीये " ऐसा अर्थ कहा है । दूसरे ऐसा अर्थ अनुभवसिद्ध है क्योंकि इसमें वृद्धवचन है । " आरूढात्षष्ठभे पापे चोरः स्याच्छुभवर्जिते । आरूढाद्वापि सौम्ये तु सर्वदिश्यधिपो भवेत् ॥ सर्वज्ञस्तत्र जीवे स्यात्कविर्वादे च भार्गवे ॥ " अर्थ–आरूढ नाम उपपदसे द्वितीय स्थानमें शुभवर्जित पाप ग्रह होवे तौ चोर होता है बुध होवे सब दिशामें अधिप और बृहस्पति होवे तो सर्वज्ञ और शुक्र होवे तौ कवि होता है । शङ्का–आरूढशब्दसे उपपदका अर्थ कैसे ग्रहण करते हो ? आरूढकाही ग्रहण करना चाहिये । समाधान–आरूढपदसे आरूढाधिकारमेंही आरूढका ग्रहण है और यहां आरूढपदसे आरूढका ग्रहण नहीं उपपदकाही ग्रहण है ॥

इस विषयमें सूर्य पापग्रहसंज्ञक नहीं होता है किंतु शुभग्रहसंज्ञक होता है । इस कथनसे यह जनाया गया कि उपपदसे द्वितीय स्थानमें सिंहराशिपर अथवा मेषादि पापग्रहोंके राशिपर विराजमान होकर सूर्य स्थित होवे तो संन्यास अथवा स्त्रीनाश नहीं होता है॥३॥

शुभदृग्योगान्न ॥ ४ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानपर शुभग्रहकी दृष्टि अथवा योग होवे तो पूर्वोक्त योगके होनेपरभी यह फल नहीं है । भाव यह है कि उपपदसे द्वितीय स्थानमें पाप ग्रहके राशिपर स्थित होकर पापग्रहयुक्त होवे और उपपदसे द्वितीय स्थानपर शुभ ग्रहकीभी दृष्टि अथवा योग होवे तो संन्यास अथवा स्त्रीनाश नहीं होता है ॥ ४ ॥

नीचे दारनाशः ॥ ५ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें नीचग्रह स्थित होवे अथवा उच्चग्रहका नवांश स्थित होवे तो स्त्रीका नाश होता है ॥ ५ ॥

उच्चे बहुदारः ॥ ६ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें उच्चग्रह स्थित होवे अथवा उच्चग्रहका नवांश स्थित हो तो बहुत स्त्रियोंवाला होता है ॥ ६ ॥

युग्मे च ॥ ७ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें मिथुनराशि होवे तोभी बहुत स्त्रियोंवाला होता है ॥ ७ ॥

तत्र स्वामियुक्ते स्वर्क्षे वा तद्धेतावुत्तरायुषि निर्दारः॥८॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें स्वामीसे युक्त होवे अथवा उपपदके द्वितीय स्थानका स्वामी अपनेही राशिमें स्थित होवे तो उत्तर अवस्थामें स्त्रीवर्जित हो जाता है अर्थात् वृद्धावस्थामें स्त्रीका नाश हो जाता है ॥ ८ ॥

---

१ शङ्का–स्वाम्यादिकोंने तौ मतशब्दसे दारकारकका ग्रहण किया है फिर ऐसा अर्थ कैसा किया है ? समाधान–जब कि आदिमें दारकारकका ग्रहण नहीं फिर

उच्चे तस्मिन्नुत्तमकुलाद्दारलाभः ॥ ९ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानका स्वामी यदि उच्च राशिमें स्थित होवे तो उत्तम कुलसे स्त्रीका लाभ होता है ॥ ९ ॥

नीचे विपर्ययः ॥ १० ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानका स्वामी यदि उच्च राशिमें स्थित होवे तो नीच कुलसे स्त्रीका लाभ होता है ॥ १० ॥

शुभसम्बंधात् सुन्दरी ॥ ११ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें शुभग्रहका षड्वर्ग वा शुभग्रहकी दृष्टि अथवा शुभग्रहका योग होवे तो स्त्री सुन्दरी होती है ॥ ११ ॥

राहुशनिभ्यामपवादात्त्यागो नाशो वा ॥१२॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें राहु और शनैश्वर दोनोंका योग होवे तो लोकनिंदासे स्त्रीका त्याग अथवा नाश होता है ॥ १२ ॥

शुक्रकेतुभ्यां रक्तप्रदरः ॥ १३ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें शुक्र और केतु इन दोनोंका योग होवे तो रक्तप्रदर रोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ १३ ॥

अस्थिस्रावो बुधकेतुभ्याम् ॥ १४ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें बुध और केतु इन दोनोंका योग होवे तो अस्थिस्रावरोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ १४ ॥

शनिरविराहुभिरस्थिरज्वरः ॥ १५ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें शनैश्वर सूर्य राहु इन तीनोंका योग होवे तो अस्थिज्वरवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ १५ ॥

बुधकेतुभ्यां स्थौल्यम् ॥ १६ ॥

तत्शब्दसे दारकारकका ग्रहण करना अनुचित है । शङ्का—चंद्र सूर्य इन दोनोंका तौ एकही एक राशि है उसके विषे " स्वर्क्षे तद्वतो " इस अंशका संभव नहीं होसकता । समाधान—मत होवो चन्द्रसूर्यमें, इसमें हमारी का हानि है । शेष ग्रहोंमें तौ होवे है ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें बुध और केतु इन दोनोंका योग होवे तो स्थूल स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ १६ ॥

बुधक्षेत्रे मंदाराभ्यां नासिकारोगः ॥ १७ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें बुधका राशि स्थित होवे और शनैश्वर मंगल दोनोंका योग होवे तो नासिकारोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ १७ ॥

कुजक्षेत्रे वा ॥ १८ ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें मंगलका राशि स्थित होवे और शनैश्वर मंगल इन दोनोंका योग होवे तोभी नासिकारोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ १८ ॥

गुरुशनिभ्यां कर्णरोगो नरहका च ॥१९॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें बुधका राशि अथवा मंगलका राशि स्थित होवे और बृहस्पति शनैश्वर इन दोनोंका योग होवे तो कर्णरोगवाली और नाडिकानिस्सरण रोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है॥१९॥

गुरुराहुभ्यां दन्तरोगः ॥ २० ॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें बुधका राशि अथवा मङ्गलका राशि होवे और बृहस्पति राहु इन दोनोंका योग होवे तौ दन्तरोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ २० ॥

शनिराहुभ्यां कन्यातुलयोः पंगुर्वातरोगो वा॥२१॥

उपपदसे द्वितीय स्थानमें कन्या अथवा तुलाराशि होवे और शनैश्वर राहु इन दोनोंका योग होवे तो पंगुली अथवा वातरोगवाली स्त्रीकी प्राप्ति होवे है ॥ २१ ॥

शुभदृग्योगान्न ॥ २२ ॥

यदि उपपदसे द्वितीय स्थानमें शुभ ग्रहकी दृष्टि अथवा योग होवे तो यह पूर्व कहे हुए दोष स्त्रीमें नहीं होते हैं ॥ २२ ॥

सप्तमांशग्रहेभ्यश्चैवम् ॥ २३ ॥

उपपदसे जो कि सप्तमभाव है उससे और सप्तमभावमें स्थित जो नवांश है उससे और सप्तमभावका जो कि स्वामी है उससे और सप्तमस्थ नवांशका जो कि स्वामी है उससे जो कि द्वितीय स्थान है उसमें भी यह पूर्व कहे हुए फल विचारने चाहिये जो कि उपपदसे द्वितीय स्थानमें विचारे गये हैं[1] ॥ २३ ॥

बुधशनिशुक्रे चानपत्यः ॥ २४ ॥

उपपदसे जो कि सप्तम स्थान है और जो कि सप्तमभावस्थ नवांश है और जो कि सप्तम भावका स्वामी है और जो कि सप्तम-भावस्थ नवांशका स्वामी है इनके विषे बुध शनैश्चर शुक्र इन तीनोंका योग होवे तौ पुरुष सन्तानहीन होता है ॥ २४ ॥

पुत्रेषु रविराहुगुरुभिर्बहुपुत्रः ॥ २५ ॥

उपपदसे सप्तमस्थानसे और सप्तमस्थ नवांशसे और सप्तम भावके स्वामीसे और सप्तमस्थ नवांशके स्वामीसे जो कि पञ्चम स्थान है उनमें यदि सूर्य राहु बृहस्पति इन तीनोंका योग होवे तौ बहुत पुत्रोंवाला होता है ॥ २५ ॥

चन्द्रेणैकपुत्रः ॥ २६ ॥

उपपदसे जो कि सप्तम स्थान है और जो कि सप्तमस्थ नवांश है और जो कि सप्तम भावका स्वामी है और जो कि सप्तमस्थ नवांशका स्वामी है इन सबसे जो कि पञ्चम स्थान है उनमें यदि चन्द्रमा स्थित होवे तौ एक पुत्रवाला होता है ॥ २६ ॥

मित्रे विलम्बात्पुत्रः ॥ २७ ॥

उपपदसे जो कि सप्तम स्थान और सप्तमस्थान नवांश और सप्तम भावस्वामी और सप्तमस्थ नवांशस्वामी है इनसे पञ्चम स्थानोंमें सन्तानहानिकर्त्ता तथा बहुसन्तान दायक इन दोनों प्रकारके ग्रहोंका योग होवे तौ विलम्बसे पुत्रलाभ होता है ॥ २७ ॥

---

१ इसमें वृद्धवचन प्रमाण है। "सप्तमेशाद्द्वितीयस्थेऽप्येवं फलमुदाहृतम्।"॥

कुजशनिभ्यां दत्तपुत्रः ॥ २८ ॥

उपपदके सप्तम स्थानसे सप्तमस्थ नवांशसे और इन दोनोंके स्वामियोंसे पञ्चम स्थानोंमें मंगल और शनैश्चर ये दोनों स्थित होवें तौ दत्तकपुत्रका लाभ होता है ॥ २८ ॥

ओजे बहुपुत्रः ॥ २९ ॥

उपपदसे सप्तमस्थानसे तथा तथा सप्तमस्थ नवांशसे और इन दोनोंके स्वामियोंसे पञ्चम स्थानोंमें विषम राशि होवे तौ बहुत पुत्रवाले होते हैं ॥ २९ ॥

युग्मेऽल्पप्रजः ॥ ३० ॥

उपपदके सप्तम स्थानसे तथा सप्तमस्थ नवांशसे और इन दोनोंके स्वामियोंसे पञ्चम स्थानोंमें सम राशि होवे तौ बहुत पुत्रवाले होते हैं ॥ ३० ॥

गृहक्रमात्कुक्षितदीशपंचमांशग्रहेभ्यश्चैवम् ॥ ३१ ॥

जिस प्रकार कि जन्मलग्नसे क्रमसे भावोंका विचार किया जाता है तिसी प्रकार कुक्षि नाम उपपद और उपपदके स्वामी इत्यादिकोंसेभी विचार करे । कुक्षि नाम उपपद और तदीश नाम उपपदस्वामी इन दोनोंसे जो कि पंचमस्थान है और जो कि पञ्चमस्थ नवांश है और जो कि पञ्चमस्थानस्वामी है और जो कि पञ्चमस्थ नवांशस्वामी है इन सबसेभी पूर्वोक्त फलका विचार करना चाहिये ३१

भ्रातृभ्यां शनिराहुभ्यां भ्रातृनाशः ॥ ३२ ॥

---

१ कुक्षिपदसे प्रकरणपठित उपपदकाही ग्रहण होता है । स्वाम्यादिकोंने "कुक्षितदीशौ" इनका अर्थ- "सिंहराशी" ऐसा कहा है सो सर्वसाधारण होनेसे योग्य नहीं क्योंकि विशेषकर इस शास्त्रमें अक्षरोंसे सिद्ध किये हुए अंकोंकाही ग्रहण किया गया है । "भ्रातृभ्यां शनि०" इत्यादि सूत्रोंमें उपपद और उपपदस्वामीसे विचार करना चाहिये क्योंकि जहां जिसका संभव होता है उसीकी अनुवृत्ति अगले सूत्रमें कही जाती है ।

उपपदसे और उपपदस्वामीसे भ्रातृ नाम तृतीय एकादश स्थानमें शनैश्चर राहु ये दोनों स्थित होवें तौ भ्राताका नाश होता है । भाव यह है कि उपपदसे अथवा उपपदके स्वामीसे तृतीय स्थानपर शनैश्चर राहु ये दोनों स्थित होवें तौ छोटे भ्राताका नाश होता है और एकादश स्थानपर शनैश्चर राहु ये दोनों स्थित होवें तौ बडे भ्राताका नाश होता है[1] ॥ ३२ ॥

शुक्रेण व्यवहिते गर्भनाशः ॥ ३३ ॥

उपपदसे और उपपदके स्वामीसे एकादश अथवा तृतीय स्थानमें शुक्र स्थित होवें तौ माताके पहिले और पिछले गर्भका नाश होता है ॥ ३३ ॥

पितृभावे शुक्रदृष्टेऽपि ॥ ३४ ॥

लग्न अथवा लग्नसे अष्टम स्थान शुक्रकर देखा गया हो तबभी माताके पूर्व और पिछले गर्भका नाश होता है ॥ ३४ ॥

कुजगुरुचन्द्रबुधैर्बहुभ्रातरः ॥ ३५ ॥

उपपदसे और उपपदस्वामीसे तृतीय अथवा एकादश स्थानमें मंगल बृहस्पति चन्द्र ये स्थित होवें तो बहुत भ्राता होते हैं ॥३५॥

शन्याराभ्यां दृष्टे यथा स्वभ्रातृनाशः ॥ ३६ ॥

उपपदसे और उपपदस्वामीसे तृतीय और एकादश स्थान शनैश्चर मंगल इन दोनोंकर देखा गया होवे तौ स्थानानुसार भ्राताका नाश होता है अर्थात् तृतीय स्थान शनैश्चर मंगलकर देखा गया होवे तौ छोटे भ्राताका नाश होता है और एकादश स्थान शनैश्चर मंगलकर देखा गया होवे तौ बडे भ्राताका

---

१ शङ्का—उपपदसे और उपपदस्वामीसे ऐसा अर्थ यहां कहांसे लिया? समाधान—"गृहक्रमात्" इस सूत्रमें कुक्षि और तदीश ये दो दोष हैं तिनसे ऐसा अर्थ ग्रहण किया है ! यदि कहो कि समासपतित पदोंके एक अंशकी अनुवृत्ति नहीं हो सक्ती है सो यहभी कथन अनुचित है क्योंकि अन्यपदोंसे भ्रातृविचार अयोग्य है इससे एक अंशकी अनुवृत्ति की गई है ॥

नाश होता है और यादि दोनों स्थान शनैश्चर मंगलकर देखे गये होवें तौ छोटे बडे दोनों भ्राताओंका नाश होता है ॥ ३६ ॥

शनिना स्वमात्रशेषश्च ॥ ३७ ॥

उपपदसे और उपपदस्वामीसे तृतीय और एकादश स्थानमें केवल शनैश्चरकी दृष्टि होवे तौ केवल आपही शेष रहता है और सब भ्राता मर जाते हैं ॥ ३७ ॥

केतौ भगिनीबाहुल्यम् ॥ ३८ ॥

उपपदसे और उपपदस्वामीसे तृतीय और एकादश स्थानपर केतु स्थित होवे तो यथास्थांन बहिनी बहुत होती है अर्थात् तृतीय स्थानपर केतु स्थित होवे तो छोटी बहिनि बहुत होवे हैं और एकादशस्थानपर केतु स्थित होवे तो बडी बहिनि बहुत होवे हैं ॥३८॥

लाभेशाद्भाग्यभे राहौ दंष्ट्रावान् ॥ ३९ ॥

उपपदसे जो कि सप्तम स्थानका स्वामी है उससे द्वितीय राशिपर राहु होवे तौ स्थूल डाढोंवाला होता है[1] ॥ ३९ ॥

केतौ स्तब्धवाक् ॥ ४० ॥

उपपदसे जो कि सप्तम स्थानका स्वामी है उससे द्वितीय स्थानपर के स्थित होवे तौ अप्रकट अक्षरोंवाले वचनका कहनेवाला होता है ॥ ४० ॥

मन्दे कुरूपः ॥ ४१ ॥

उपपदसे सप्तम स्थानके स्वामीसे द्वितीय स्थानपर शनैश्चर होवे तौ भयानकरूपवाला होता है ॥ ४१ ॥

---

१ यहांपर अन्य प्राच्यवचन भी हैं । "सप्तमेशाद्द्वितीयस्थे राहौ मूकः खले स्थिते । अदन्तोऽधिकदन्तो वा दंष्ट्रयुक्तोऽथ वा भवेत् ॥ पवनव्याधिमान् केतौ यद्वा स्यादस्फुटोक्तिमान् । तत्र नानाग्रहैर्योगे मिश्रं फलमुदाहृतम् ॥" अर्थ—उपपदसे जो कि सप्तमेश है उससे द्वितीय स्थानमें राहु स्थित होवे तौ मूक होता है और खलग्रह स्थित होवे तौ विना दांत अथवा अधिक दांतवाला होता है और केतु स्थित होवे तौ वातव्याधिवाला होता है अथवा अप्रकट वचन कहनेवाला होता है और अनेक ग्रहोंका योग होवे तौ मिला हुआ फल कहे ॥

स्वांशमशाद्गौरनीलपीतादिवर्णाः ॥ ४२ ॥

आत्मकारकका जो कि नवांश है उसके स्वभावसे गौर नील पीतादिक वर्ण जातकके कहे । भाव यह है कि आत्मकारकके नवांशका जो कि अन्यजातक प्रसिद्ध वर्ण है वही गौर नील पीतादि वर्ण जातका जानना और इसी प्रकार पुत्रादिकारक नवांशवशसे पुत्रादिकोंका गौर नील पीतादि वर्ण जानने ॥ ४२ ॥

आमात्यानुचराद्देवताभक्तिः ॥ ४३ ॥

अमात्यसंज्ञक ग्रहसे अंश कलादिमें जो कि ग्रह कम होवे उससे देवताभक्ति विचारनी चाहिये । भाव यह है कि अमात्यसंज्ञक ग्रहसे अंशकलादिमें जो कि ग्रह कम होवे वह देवताकारक होता है उससे देवताभक्ति जाननी । यदि देवताकारक ग्रह शुभ होवे तौ सौम्य-देवताकी भक्ति होवे है और क्रूर होवे तौ क्रूर देवताकी भभि होने है । यदि देवताकारक ग्रह उच्च अथवा स्वराशिस्थ होवे तौ दृढभक्ति और नीच अथवा स्वाराशिका देवताकारक ग्रह होवे तौ अदृढ भक्ति होवे है ॥ ४३ ॥

स्वांशे केवलं पापसम्बंधे परजातः ॥ ४४ ॥

आत्मकारकके नवांशपर केवल पापग्रहोंका दृष्टियोग आदिक सम्बन्ध होवे तौ जारसे उत्पन्न हुआ जानना । यहां सम्बन्ध शब्दसे दृष्टियोग षड्वर्ग जानने ॥ ४४ ॥

नात्र पापात् ॥ ४५ ॥

यदि आत्मकारक पाप ग्रह होवे तौ यह फल नहीं होता है । भाव यह है कि आत्मकारकके नवांशपर आमकारकसे अन्य पाप ग्रहका संबन्ध होवे तौ यह फल कहना न कि पापग्रहरूप आत्मकारकसे अथवा अत्र नाम अष्टम स्थानमें पाप ग्रह होवे तौ भी यह योग नहीं होता है ॥ ४५ ॥

शनिराहुभ्यां प्रसिद्धिः ॥ ४६ ॥

यदि आत्मकारके नवांशपर शनैश्वर और राहुका योग दृष्टि षड्वर्ग होवे तो जारसे उत्पन्न होनेकी प्रसिद्धि होवे है ॥ ४६ ॥

गोपनमन्येभ्यः ॥ ४७ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशपर अन्य पापग्रहोंका योग दृष्टि षड्वर्ग होवे तौ जारसे उत्पन्न होनेकी प्रसिद्धि नहीं होवे है किन्तु जारसे उत्पन्न होनेमें छिपावट रहती है ॥ ४७ ॥

शुभवर्गेऽपवादमात्रम् ॥ ४८ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशपर पाप ग्रहोंका जारजातकत्व योग होवे और शुभ ग्रहोंका षड्वर्ग सम्बन्ध होवे तौ जारसे तौ उत्पन्न न हुआ हो केवल जारसे उत्पन्न होनेका कलंकमात्रही होवे है ॥४८॥

द्विग्रहे कुलमुख्यः ॥ ४९ ॥

यदि आत्मकारकके नवांशमें दो ग्रहोंका योग होवे तौ कुलमें मुख्य होता है ॥ ४९ ॥

इति श्रीजैमिनीयसूत्रप्रथमाध्याये श्रीनीलकंठीयतिलकानुसृतभाषा-टीकायां श्रीपाठकमंगलसेनात्मजकाशिरामकृतायां चतुर्थः पादः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ पंचमपादः ।



इसके अनन्तर आयुर्दायका विचार करते हैं ।

आयुः पितृदिनेशाभ्याम् ॥ १ ॥

लग्नेश और अष्टमेश इन दोनोंसे आयुःप्रमाण विचारना चाहिये ॥ १ ॥

प्रथम लग्नेश अष्टमेश दोनोंकी स्थितिवश दीर्घायुर्योग कहते हैं ।

प्रथमयोरुत्तरयोर्वा दीर्घम् ॥ २ ॥

प्रथम नाम चरराशिपर अथवा स्थिर द्विस्वभाव इन दोनोंपर लग्नेश अष्टमेश ये दोनों होवें तो दीर्घायु होवे है । भाव यह कि जहां कहींभी लग्नेश अष्टमेश ये दोनों चरराशिपरही केवल स्थित होवे तो दीर्घायु होवे है अथवा लग्नेश अष्टमेश इन दोनोंमें एक स्थिरराशिपर और एक द्विस्वभाव राशिपर स्थित होवे अर्थात् लग्नेश स्थिरराशिपर होवे तो अष्टमेश द्विस्वभाव राशिपर होवे अथवा लग्नेश द्विस्वभाव राशिपर होवे तो अष्टमेश स्थिर राशिपर होवे तबभी दीर्घायुयोग होता है ॥ २ ॥

इसके अनन्तर मध्यायुर्योग दिखाते हैं ।

प्रथमद्वितीययोरन्त्ययोर्वा मध्यम् ॥ ३ ॥

चर स्थित इन दोनों राशियोंपर अथवा केवल द्विस्वभाव राशि-परही लग्नेश अष्टमेश दोनों स्थित होवें तो मध्यायु होवे है । भाव यह है कि लग्नेश अष्टमेश इन दोनोंमेंसे एक चर राशिपर स्थित होवे और एक स्थिर राशिपर स्थित होवे अर्थात् लग्नेश चर राशि पर होवे तो अष्टमेश स्थिर राशिपर होवे और अष्टमेश राशिपर होवे तो लग्नेश स्थिर राशिपर स्थित होवे तो मध्यायुर्योग होता है अथवा लग्नेश अष्टमेश दोनों जहां कहींभी केवल द्विस्वभाव राशिपरही स्थित होवें तोभी मध्यायुर्योग होता है ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर अल्पायुर्योग कहते हैं ।

मध्ययोराद्यन्तयोर्वा हीनम् ॥ ४ ॥

केवल स्थिर राशिपरही लग्नेश अष्टमेश ये दोनों स्थित होवें तो अल्पायुर्योग होता है अथवा लग्नेश अष्टमेश इन दोनोंमेंसे एक चर राशिपर और एक द्विस्वभाव राशिपर स्थित होवे अर्थात् लग्नेश चर राशिपर तो अष्टमेश द्विस्वभाव राशिपर स्थित होवे वा अष्टमेश चर राशिपर तो लग्नेश द्विस्वभावराशिपर स्थित होवे तो अल्पायुर्योग होता है ॥ ४ ॥

जिस प्रकार कि लग्नेश अष्टमेश इन दोनोंके राशिस्थिति भेद-कर दीर्घायु और मध्यायु और अल्पायुर्योग कहा तिसी प्रकार लग्न चन्द्रमा इन दोनोंसेभी कहा है ।

एवं मन्दचंद्राभ्याम् ॥ ५ ॥

जिस प्रकार कि लग्नेश अष्टमेश इन दोनोंमेंसे दीर्घायु मध्यायु अल्पायुर्योग कहे तिसी प्रकार लग्न चन्द्रमा इन दोनोंसे दीर्घायु मध्यायु अल्पायुर्योग विचारने चाहिये ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर आयुर्दायके निर्णय करनेका तृतीय प्रकार कहते हैं ।

पितृकालतश्च ॥ ६ ॥

जन्मलग्न और होरालग्न इन दोनोंसेभी पूर्वोक्त प्रकारसे दीर्घमध्याल्पायुर्योग विचारने चाहिये । भाव यह है कि जिस प्रकार कि लग्नेश अष्टमेश इन दोनोंसे आयुर्विचार किया जाता है तिसीप्रकार जन्मलग्न होरालग्न इन दोनोंसे आयुका विचार कर्तव्य है ॥ ६ ॥

१इस सूत्रमें जो कि होरालग्नका ग्रहण किया है सो होरालग्नका बनाना पूर्व कह चुके हैं । वृद्धवचनोंसे तीन प्रकारसे दीर्घमध्याल्पायुर्योगोंके विचारमें वृद्धवचनभी प्रमाण है । "लग्नेशरन्ध्रपत्योश्च लग्नेन्द्वोर्लग्नहोरयोः । सूत्राण्येवं प्रयुञ्जीयात्संवादादायुषां त्रये ॥" अर्थ--लग्नेश अष्टमेष और लग्नचन्द्र और लग्नहोरा इन तीनोंमेंसे दो प्रकार कर जो आयु आवे वह ग्रहण कर्त्तव्य है न कि एक प्रकारकर आया हुआ आयु ग्रहण करना चाहिये दीर्घ मध्य अल्पायु प्रस्तारचक्रमें देखना चाहिये । प्रस्तारश्लोकः । "चरे चरस्थिरद्वन्द्वाः स्थिर द्वंद्वचरस्थिराः । द्वन्द्वे स्थिरोभयचरा दीर्घमध्याल्पकायुषः ॥" अर्थ--यदि चरराशिपर लग्नेश और चरही राशिपर अष्टमेश अथवा लग्नचन्द्र वा लग्नहोरा पर ये स्थिर होवे तौ दीर्घायुर्योग होता है और चर और स्थिरपर स्थित होवे तौ मध्यायुर्योग होता है और चर और द्विस्वभाव राशिपर स्थित होवें तौ अल्पायुर्योग होता है और यदि स्थिरराशि और द्विस्वभाव राशिमें स्थित होवें तौ दीर्घायुर्योग होता है और स्थिर और चरराशिपर स्थित होवें तौ मध्यायुर्योग होता है और स्थिर और स्थिरही राशि पर स्थित होवें तो अल्पायुर्योग होता है । यदि द्विस्वभाव और स्थिर राशिपर स्थिर हों तौ दीर्घायुर्योग होता है और द्विस्वभावपर और द्विस्वभावपर स्थित

जो तीन प्रकारके आयुर्दायनिर्णयके उपाय हैं उन तीनोंमें एकाकार आयु आवे तौ कुछ विवाद नहीं और जो दो प्रकारसे एकाकार आयु आवे और एक प्रकारसे भिन्न आयु आवे तहां निर्णय करते हैं ।

संवादात्प्रामाण्यम् ॥ ७ ॥

दो प्रकारसे जो कि आयु आवे वही ग्रहण करने योग्य है न कि एक प्रकारसे आया हुआ ग्रहण करने योग्य है ॥ ७ ॥

यदि तीनों प्रकारसे भिन्न २ आयु आवे तहां निर्णय करते हैं ।

विसंवादे पितृकालतः ॥ ८ ॥

यदि तीनों पक्षोंकी विरूपता होवे तौ जन्मलग्न होरालग्नसे आया हुआ आयु ग्रहण करने योग्य है । भाव यह है कि यदि तीनों प्रकारसे भिन्न २ आयु आवे तौ जो कि जन्मलग्न होरालग्नसे आया हुआ आयु है उसीका ग्रहण करना चाहिये ॥ ८ ॥

तीनों प्रकारसे भिन्नता होनेपर जन्मलग्न होरालग्नसे आये हुए आयुका निषेध कहते हैं ।

पितृलाभगे चन्द्रे चन्द्रमंदाभ्याम् ॥ ९ ॥

तीनों प्रकारकी भिन्नता होनेपर यदि लग्न अथवा सप्तम स्थानपर

होवें तौ मध्यायुर्योग होता है और द्विस्वभाव और चर राशिपर स्थित होवे तौ अल्पायुर्योग होता है । इसी प्रकार प्रस्तारचक्रमें जानना ॥

प्रस्तारचक्रम् ।

	दीर्घायुः	मध्यायुः	अल्पायुः	
लग्नेश अष्टमेश लग्नचन्द्र लग्नहोरा	चर चर	चर स्थिर	चर द्विस्वभाव	लग्नेश अष्टमेश लग्नचंद्र लग्नहोरा
लग्नेश अष्टमेश लग्नचंद्र लग्नहोरा	स्थिर द्विस्वभाव	स्थिर चर	स्थिर स्थिर	लग्नेश अष्टमेश लग्नचंद्र लग्नहोरा
लग्नेश अष्टमेश लग्नचंद्र लग्नहोरा	द्विस्वभाव स्थिर	द्विस्वभाव द्विस्वभाव	द्विस्वभाव चर	लग्नेश अष्टमेश लग्नचंद्र लग्नहोरा

चन्द्रमा स्थित होवे तौ चन्द्रमा और लग्नसे आया हुआ आयु ग्रहण करने योग्य है' ॥ ९ ॥

इसके अनन्तर दीर्घमध्याल्पायुर्योगोंके विषे कुछ विशेष कहते हैं।

शनौ योगहेतौ कक्ष्याह्रासः ॥ १० ॥

यदि शनैश्चर आयुर्योगके करनेवाला होवे तौ एक खण्डकी न्यूनता हो जावे है। तात्पर्य यह है कि शनैश्चर यदि आयुर्योगका करनेवाला होवे तौ दीर्घायुमें मध्यायु रहता है और मध्यायुमें अल्पायु रहता है और अल्पायुमें कुछभी नहीं रहता ॥ १० ॥

---

१ अल्पायुष्यादिक वृद्धोंने कहा है। "द्वात्रिंशात्पूर्वमल्पायुर्मध्यमायुस्ततो भवेत्। चतुःषष्ट्याः पुरस्तात्तु ततो दीर्घमुदाहृतम् ॥" अर्थ–बत्तीस वर्षसे पूर्व अल्पायु होवे है और बत्तीस वर्षसे पश्चात् चौंसठि वर्षपर्यन्त मध्यायु होवे है और चौंसठि वर्षसे ऊपर छयानवे वर्षपर्यन्त दीर्घायु होवे है। जन्मसे बत्तीसपर्यन्त और बत्तीससे चौंसठि वर्ष पर्यन्त और चौंसठि वर्षसे छयानवे वर्षपर्यन्त आये हुए आयुर्दायका स्पष्ट योग वृद्धोंने कहा है। "प्रथमयोरुत्तरयोर्वा दीर्घम्।" इत्यादि सूत्रोंकर जो कि आयु निर्णीत हुआ है वह यदि दीर्घायु होवे तौ मध्यमायुके अवधि चौंसठि वर्षपर्यन्त निःसंदेह सिद्ध आयु होही गया उससे ऊपर बत्तीस वर्षके दीर्घायुके खण्डमें कितने वर्ष लेने चाहिये इस संशयके दूर करनेके लिये यहां वृद्ध वचन है। "पूर्णमादौ हानिरन्तेऽनुपाते मध्यतो भवेत्। राशिद्वयस्य योगार्द्धं वर्षाणां स्पष्टमुच्यते ॥" अर्थ–यदि लग्नेश अष्टमेश ये दोनों राशिके आरम्भसे विद्यमान होवें तौ बत्तीस वर्षका दीर्घ मध्याल्प आयुका खण्ड पूर्ण ग्रहण करना चाहिये और यदि राशिके अन्तभागमें होवे तौ उस बत्तीस वर्षके खण्डका विनाश हो जाता है और यदि मध्यमें स्थित होवें तौ त्रैराशिकसे खण्डका एक देश ग्रहण करना चाहिये। भाव यह है कि लग्नेश अष्टमेश राशिके आरम्भसेंही स्थित हों तौ दीर्घायुके योगमें छयानवें वर्षतक आयुका प्रमाण है। मध्यायुके योगमें चौंसठि वर्षतक आयुका प्रमाण है। अल्पायुके योगमें बत्तीस वर्षतकआयुका प्रमाण है और यदि लग्नेश अष्टमेश राशिके अन्तमें स्थित होवें तौ दीर्घायुकेयोगमें चौंसठि वर्षतक आयुका प्रमाण है और मध्यायुके योगमें बत्तीस वर्षतक आयुका प्रमाण है। अल्पायु योगमें कुछभी आयुका प्रमाण नहीं है और यदि लग्नेश अष्टमेश राशिके मध्यभागमें स्थित होवें तौ त्रैराशिक करनेसे जो वर्ष आवें वह यदि दीर्घायुके होवें तौ चौसठि वर्षमें जोड देवें और मध्यायुके होवें तौ बत्तीस वर्षमें जोड देवे और यदि अल्पायुके होवें तौ वह आये हुएही वर्ष निज आयुके जानने परन्तु त्रैराशिक लग्नेश और अष्टमेश इन दोनोंका पृथक् २ करके दोनोंको जोड आधाकर लेवे जो फल आवे उसको दीर्घ मध्याल्पयुक्त खण्ड जाने न कि एक२के त्रैराशिक फलको। त्रैराशिक करनेका यह

इसके अनन्तर इसी विषयमें मतान्तर कहते हैं

विपरीतमित्यन्ये ॥ ११ ॥

कोई आचार्य कहते हैं कि यदि शनैश्चर आयुर्योगकर्त्ता होवे तौ यह पूर्वोक्त वचन नहीं होता किन्तु शनैश्चर योगकारक होनेसे यथास्ति आयु रहता है ॥ ११ ॥

इसके अनन्तर परमत कहकर निज मत कहते हैं ।

सूत्राभ्यां न स्वर्क्षतुंगगे सौरे ॥ १२ ॥

केवलपापदृग्योगिनि च ॥ १३ ॥

यदि शनैश्चर अपने राशिपर अथवा उच्चराशिपर स्थित होवे तथा शुभ ग्रहसम्बंधि दृष्टियोगसे वर्जित होकर केवल पाप ग्रहसंबंधि दृष्टियोगसे युक्त होवे तौ कक्ष्याह्रास नहीं होता है अर्थात् यथास्थित आयु रहता है अन्यथा ह्रास होवे है ॥ १२ ॥ १३ ॥

इसके अनन्तर कक्ष्यावृद्धि योग कहते हैं ।

पितृलाभगे गुरौ केवलशुभदृग्योगिनि च कक्ष्यावृद्धिः १४

यदि बृहस्पति लग्न अथवा सप्तम स्थानमें स्थित होवे और पापग्रहसंबन्धि दृष्टियोगसे वर्जित होकर केवल शुभग्रहसंबंधि दृष्टियोगसे युक्त होवे तौ कक्ष्यावृद्धि होवे है अर्थात् अल्पायु होवे

विधान है जब कि लग्नेश वा अष्टमेशके तीस अंश चले जाते तौ बत्तीस वर्ष प्राप्त होते अब एक अंश चला गया है तौ क्या प्राप्त होवेगा तब बत्तीसको एकसे गुणाकर तीसका भाग दिया लब्ध मिला १ १/१५ । इसी प्रकार लग्नेश अष्टमेश दोनोंके त्रैराशिकसे वर्ष स्पष्ट करके परस्पर जोड देवे फिर आधा करके जो फल आवे उसको दीर्घायुर्योग होवे तौ चौसठि वर्षमें जोड देवे जो जोड फल आवे वही दीर्घायुका प्रमाण जानना और यदि मध्यायुर्योग होवे तौ बत्तीस वर्षमें जोड देवे जो जोडफल आवे वही मध्यायुका प्रमाण जानना और यदि अल्पायुर्योग होवे तौ वही जन्मसे लेकर आयुका प्रमाण होता है इसी प्रकार लग्नचंद्रमा और लग्नहोरा इनके आये हुए आयुमें खण्डका स्पष्टीकरण जानना चाहिये । अन्य वचन है "होरालग्नादिमांश तु पूर्णमन्ते न किंचन । स्पष्टीकरणमेतत्स्याद्दीर्घमध्याल्पकायुषि ॥" अर्थ– और त्रैराशिक पर्वतही होता है । इस कथनसे होरालग्नभी अंशादियुक्त दिखाया है

तौ मध्यायु और और मध्यायु होवे तौ दीर्घायु और दीर्घायु होवे तौ छयानवे वर्षसेभी अधिक आयु होवे है ॥ १४ ॥

प्रमाणसिद्ध आयुमेंही मरण होता है या बीचमेंभी मरण हो जाता है इस आकांक्षामें कहते हैं।

मलिने द्वारबाह्ये नवांशे निधनं द्वारद्वारेशयोश्च मालिन्ये ॥ १५ ॥

द्वारराशि और बाह्यराशि ये दोनों स्वयं पाप और पापग्रहोंसे युक्त तथा पापग्रहोंकर देखे गये होवें तौ द्वारराशि और बाह्यराशिकी नवांशदशामें मरण हो जाता है तथा द्वारराशि और द्वारराशीश ये दोनोंभी स्वयं पाप और पापग्रहोंसे युक्त तथा पापग्रहोंकर देखे गये होवें तौ द्वारराशि तथा द्वारेशाश्रित राशिकी नवांशदशामें मरण हो जाता है[1] ॥ १५ ॥

इस मरणयोगका निषेधभी कहते हैं।

शुभदृग्योगान्न ॥ १६ ॥

द्वारराशि और बाह्यराशि और द्वारेश इनपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि तथा योग होवें तौ द्वारराशि तथा बाह्यराशि तथा द्वारेशराशि इनकी नवांशदशामें मरण नहीं होता है ॥ १६ ॥

---

१ "दशाश्रयो द्वारम्, ततस्तावतिथं बाह्यम्" द्वितीय अध्यायके चतुर्थपादसंबन्धि द्वितीय तृतीय इन सूत्रोंमें द्वारराशि और बाह्यराशिका लक्षण कहा है। जिस कालमें जिस राशिकी जो कि दशा चरस्थिरनामसे होवे उस दशाश्रय राशिको द्वार कहते हैं, इसीका दूसरा नाम पाकराशि है और लग्नसे जितनी संख्यापर द्वारराशि होवे उतनीही संख्यापर द्वारराशिसे बाह्यराशि कहा है इसी बाह्यराशिको भोगराशि कहते हैं। यहां लग्नशब्दसे वह राशि ग्रहण करना चाहिये जिस राशिसे कि प्रथमसे दशाका प्रारम्भ होता है कहीं तौ लग्नसेही दशाका आरम्भ होता है और कहीं सप्तमसेही दशाका आरम्भ होता है और कहीं ब्रह्मग्रहके राशिसे दशाका आरम्भ होता है इनमेंसे आद्यदशाकी राशि जो होवे वह पाकराशिकी अवधि होती है न कि प्रसिद्ध लग्न। "विषमे तदादिर्नवांशः" इस द्वितीय अध्यायके तृतीयपादसंबंधि प्रथम सूत्रमें नवांशदशा कही है नवांशदशा समस्त राशियोंकी होवे है नवांशदशामें प्रत्येक राशिके नौ ९ वर्ष होते हैं यदि लग्नमें विषमराशि होवे तौ लग्नसेही नवांशदशाका आरम्भ होता है और यदि समराशि होवे तौ सप्तमराशिसे नवांशदशाका आरम्भ होता है ॥

इसके अनन्तर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि योग होने परभी
नवांशका कालमृत्युका निषेध कहेते हैं।

रोगेशे तुंगे नवांशवृद्धिः ॥ १७ ॥

जन्मलग्नसे अष्टमस्थानका स्वामी यदि उच्चराशिपर स्थित होवे तौ कहा हुआ मृत्युयोग होनेपरभी नवांशदशामें मृत्यु नहीं होता है किन्तु उससे ऊपर नौ वर्षकी वृद्धि हो जावे है ॥ १७॥

यदि कहो कि नवांशदशामें राशिवृद्धि हो जावे है तौ फिर
किस राशिमें मृत्यु होता है इस शंकामें कहते हैं।

तत्रापि पदेशदशांते पदनवांशदशायां पितृदि-
नेशत्रिकोणे वा ॥ १८ ॥

वृद्धिपक्ष होनेपरभी लग्नारूढ स्थानके स्वामीका जो कि आश्रित राशि है उसकी दशाके अन्तमें मरण होता है अथवा जन्मलग्नारूढ राशिके नवांशदशामें मरण होता है अथवा लग्नेश अष्टमेशसे लग्न पञ्चम नवम इनमेंसे किसी राशिकी दशामें अथवा इनकी अन्तर्दशामें मरण है ॥ १८ ॥

इनके अनन्तर अन्य प्रकारसे दीर्घमध्याल्पायुर्योग कहते हैं।

पितृलाभरोगेशे प्राणिनिकंटकादिस्थे स्वतश्चैवं त्रिधा १९

लग्नसे सप्तम स्थानका जो कि स्वामी है और लग्नसे अष्टम स्थानका जो कि स्वामी है इन दोनोंमें जो कि बली होवे वह यदि केन्द्र पणफर आपोक्लिम संज्ञक स्थानमें स्थित होवे तौ क्रमसे तीन प्रकारका दीर्घमध्याल्पायुर्योग होता है। भाव यह है कि लग्नसे सप्तमेश अष्टमेशमें जो कि बली होवे वह यदि केन्द्र नाम लग्नसे लग्न चतुर्थ सप्तम दशम इन स्थानोंपर स्थित होवे तौ दीर्घायुर्योग होता है और यदि पणफर नाम लग्नसे द्वितीय पञ्चम अष्टम एकादश इन स्थानोंपर स्थित होवे तौ मध्यायुर्योग होता है और यदि आपोक्लिम नाम लग्नसे तृतीय षष्ठ नवम द्वादश इन

स्थानोंपर स्थित होवे तौ अल्पायुर्योग होता है और इसी प्रकार आत्मकारकसेभी योगत्रय जानने । आत्मकारकसे सप्तमेश अष्टमेशमें जो कि बली हो वह यदि केंद्रमें स्थित होवे तौ दीर्घायुर्योग होता है और पणफरमें स्थित होवे तौ मध्यायुर्योग होता है और आपोक्लिममें स्थित होवे तौ अल्पायुर्योग होता है ॥ १९ ॥

योगात्समे स्वस्मिन्विपरीतम् ॥ २० ॥

जन्मलग्नसे जो कि सप्तम स्थान है उससे जो कि सम नाम नवम स्थान है उसमें यदि आत्मकारकग्रह स्थित होवे तौ विपरीत होता है अर्थात् "पितृलाभे" इत्यादि सूत्रके कहे हुए योग नहीं होते हैं किन्तु दीर्घायु आया हो तौ मध्यायु होता है और मध्यायु आया हो तौ अल्पायु होता है और अल्पायु आया हो तौ कुछभी नहीं अथवा कोई आचार्य ऐसा अर्थ करते हैं दीर्घायु होवे तौ अल्पायु और अल्पायु होवे तौ दीर्घायु और मध्यायु होवे तौ मध्यायुही होता है ॥ २० ॥

इस प्रकरणमें कौन बल ग्रहण करना चाहिये इस शंकामें कहते हैं ।

राशितः प्राणः ॥ २१ ॥

---

१ यहां आयुर्दायविषयमें वृद्ध कुछ और विशेष कहते हैं । " एकोऽष्टमेशः स्वोच्चस्थः पर्यायार्द्धं प्रयच्छति । नीचस्थो नाशयेत्पर्यायार्द्धमायुषि निश्चिते ॥ नीचरन्ध्रेशसंयुक्ताः पर्यायार्द्धं पृथक् पृथक् । ग्रहा विनाशयन्त्येवं निर्णीते परमायुषि ॥ उच्चरन्ध्रेशसंयुक्तग्रहैः प्रत्येकमुन्नयेत् । एकैकमर्द्धपर्यायं परमायुषि निश्चिते ॥ " अर्थ-एक अष्टमेश उच्चका होवे तौ अपनी दशाका अर्द्धभाग देता है और नीचका होवे तौ अपनी दशाका अर्द्ध भाग निश्चित किये आयुमेंसे दूर कर देता है । भाव यह है कि " पितृदिनेशाभ्यां " इस सूत्रमें जो अष्टमेश ग्रहण किया है यह अष्टमेश यदि उच्चका होवे तौ अपनी दशाका अर्द्ध भाग देता है अर्थात् " नाथान्ताः " इस सूत्रकी रीतिसे जितना आयु आवे उसमें उसीका आधा और जोड देवे और यदि नीचका होवे तौ आयुमेंसे अर्ध भाग दूर कर देवे । इसी प्रकार और ग्रहभी यदि नीच अष्टमेशसे युक्त होवे तौ अपनी आयुका अर्ध भाग पृथक् २ दूर कर देते हैं और यदि उच्च अष्टमेशसे युक्त होवे तौ अपनी दी हुई आयुमें अपनी दशाका अर्द्ध भाग अधिक देते हैं । इसी प्रकार लग्नेशादिक ग्रहभी उच्च नीच गुणसे वृद्धि और ह्रास करते हैं ॥

यहां राशिसे बल ग्रहण करना चाहिये। भाव यह है कि "कारकयोगः प्रथमो भानाम्" इत्यादि सूत्रद्वारा कहे जानेवाला राशिबल ग्रहण करना चाहिये न कि अंशाधिक्य बल ग्रहण करना चाहिये ॥ २१ ॥

इसके अनन्तर अन्य प्रकारसे मध्यायुर्योग कहते हैं ।

रोगेशयोः स्वत ऐक्ये योगे वा मध्यम् ॥२२॥

लग्नसे अष्टमेश तथा सप्तमसे अष्टमेश इनका आत्मकारकके साथ ऐक्यता होवे अथवा इनके साथ आत्मकारकका योग होवे तौ मध्यायु होवे है। भाव यह है कि लग्नसे अष्टमेश आत्मकारक हो अथवा लग्नसे अष्टमेशके साथ आत्मकारकका योग होवे या सप्तमसे अष्टमेश आत्मकारक हो अथवा सप्तमसे अष्टमेशके साथ आत्मकारकका योग होवे तौ "पितृलाभ०" इत्यादि सूत्रसे प्राप्त हुए दीर्घायुवालोंकीभी मध्यायु होवे है[1] ॥ २२ ॥

इसके अनन्तर दीर्घादि योगोंके विषै कक्ष्याह्रास कहते हैं ।

पितृलाभयोः पापमध्यत्वे कोणपापयोगे वा कक्ष्याह्रासः ॥ २३ ॥

लग्न और सप्तम स्थान इन दोनोंको पाप ग्रहके मध्यवर्ती होनेपर कक्ष्याह्रास होता है। भाव यह है कि लग्नकुण्डलीके द्वितीय और बारहवें स्थानमें और छठे और आठवें स्थानमें पापग्रहोंके योग होनेसे लग्न और सप्तमस्थानको पापमध्यत्व होता है। यदि लग्न सप्तम स्थानका पापमध्यत्व योग होवे तौ दीर्घायुर्योगमें मध्यायु और मध्यायुर्योगमें अल्पायु और अल्पायुर्योगमें कुछभी नहीं होता है अथवा लग्न और सप्तमसे जो कि कोण नाम लग्न पंचम नवम स्थान हैं इन सबमें पाप ग्रहोंका योग होवे तबभी कक्ष्याह्रास होता है ॥ २३॥

---

१ अन्य जातकशास्त्रमें लग्नकी और इस ग्रन्थमें आत्मकारककी प्रधानता होनेसे अष्टमेशके योगकर आयुका ह्रासही होता है ऐसा जानना ॥

स्वस्मिन्नप्येवम् ॥ २४ ॥

आत्मकारकभी लग्नकुण्डलीवत् होता है। तात्पर्य यह कि आत्मकारकके राशि और आत्मकारकके सप्तमराशिको पापग्रहके मध्यवर्ती होनेमें भी कक्ष्याह्रास होता है अथवा आत्मकारकसे त्रिकोण नाम लग्न पंचम सप्तम स्थानोंपर सब जगह पापग्रहोंका योग होवे तबभी कक्ष्याह्रास होता है ॥ २४ ॥

तस्मिन्पापे नीचेऽतुंगेऽशुभसंयुक्ते च ॥२५॥

यदि वह आत्मकारक पापग्रह होकर नीच राशिपर स्थित हो तबभी कक्ष्याह्रास होता है अथवा पापग्रह होकर आत्मकारक अपने उच्च राशिमें स्थित न हो किन्तु अशुभ ग्रहोंसे संयुक्त होवे तो भी कक्ष्याह्रास होता है ॥ २५ ॥

इसके अनन्तर कक्ष्याह्रासयोगमें निषेध कहते हैं।

अन्यदन्यथा ॥ २६ ॥

लग्न सप्तम अथवा आत्मकारक सप्तम यह अन्यथा नाम शुभ ग्रहोंके मध्यवर्ती होवे अथवा लग्न और सप्तमसे अथवा आत्मकारकसे प्रथम पंचम नवम इनमें सब जगह शुभ ग्रहोंका योग होवे अथवा आत्मकारक शुभ ग्रह होकर नीचका न होवे अथवा आत्मकारक शुभ ग्रह होकर उच्च राशि और शुभ ग्रह संयुक्त होवे तो अन्यत् अर्थात् कक्ष्यावृद्धि होवे है याने अल्पायुर्योग होवे तो मध्यायु होता है और मध्यायुयोग होवे तो दीर्घायु होवे है और दीर्घायुर्योग होवे छ्यानवे वर्षसेभी अधिक आयु होवे है इस कथनसे यह जानना चाहिये समस्तयोग पापात्मक होवें तो कक्ष्याह्रास होता है और समस्त योग शुभात्मक होवें तो कक्ष्यावृद्धि होवे है औ समस्त योग शुभ पाप दोनोंसे वर्जित होवें तो न कक्ष्यावृद्धि और न कक्ष्याह्रास होता है ॥ २६ ॥

इसके अनन्तर ह्रासवृद्धिप्रकार बृहस्पतिके विषेभी दिखाते हैं।

॥ गुरौ च ॥ २७ ॥

बृहस्पतिभी लग्नकुण्डलीवत् होता है भाव यह है कि बृहस्पतिसे द्वितीय द्वादश षष्ठ अष्टम त्रिकोण इन स्थानोंके विषे पूर्व कथनानुसार पाप ग्रहोंका योग होवे तो कक्ष्याह्रास होता है अथवा बृहस्पति नीच हो या उच्चसे वर्जित होकर पाप ग्रहोंसे युक्त होवे तोभी कक्ष्याह्रास होता है और जो अन्यथा होवे तो अन्यथाही फल होता है अर्थात् बृहस्पतिसे द्वितीय द्वादश षष्ठ अष्टम त्रिकोण इन स्थानोंपर पूर्वकथनानुसार शुभ ग्रहोंका योग होवे तो कक्ष्यावृद्धि होवे है अथवा बृहस्पति उच्चका होकर शुभ ग्रहोंसे युक्त होवे तोभी कक्ष्यावृद्धि होवे है ॥ २७ ॥

पूर्णेन्दुशुक्रयोरेकराशिवृद्धिः ॥ २८ ॥

शुभग्रहयोगप्रकरणमें लग्न आत्मकारक बृहस्पतिसे जो कि स्थान कहे हैं उनमें यदि पूर्णचंद्र और शुक्रका योग होवे तौ निर्णीत हुए आयुमें कक्ष्यावृद्धि नहीं होती किन्तु एक राशिवृद्धि होवे अर्थात् लग्न आत्मकारक बृहस्पत्यादिकोंमेंसे जिससे कक्ष्यावृद्धि होती है उस राशिके दशावर्षोंकी वृद्धि होवे है ॥ २८ ॥

पापयोगसे जो कि कक्ष्याह्रास कहा उसमें अपवाद दिखाते हैं ।

शनौ विपरीतम् ॥ २९ ॥

पापयोगप्रकरणमें लग्न आत्मकारक बृहस्पतिसे जो कि स्थान कहे हैं उनमें यदि शनैश्चर होवे तौ कक्ष्याह्रास नहीं होता है किन्तु एकराशि ह्रास होवे है अर्थात् लग्न आत्मकारक बृहस्पत्यादिकोंमेंसे जिससे कक्ष्याह्रास होता है उस राशिके दशावर्षोंका ह्रास होता है इन दोनों सूत्रोंके कथनका यह अभिप्राय है चंद्र शुक्र शनैश्चर इनको प्रधानतासे योगकारक होनेकर अन्य ग्रहोंको योगकारक हुए संतेभी एक राशिकी वृद्धि वा ह्रासही होता है न कि कक्ष्याकी ॥ २९ ॥

इसके अनन्तर स्थिरदशाके आश्रयसे मरणयोग कहते हैं ।

स्थिरदशायां यथाखंडं निधनम् ॥ ३० ॥

स्थिर दशामें आयुखण्डके अनुसार मरण होता है। भाव यह है कि परमायुके दीर्घ मध्य अल्पायु नामसे तीन विभाग करे पूर्वोक्त रीतिसे आयुका जो खण्ड आया होवे उसमें यदि मरण लक्षणयुक्त राशिकी स्थिर दशा आ जावे तौ मरणलक्षणयुक्त राशिकी स्थिर दशामेंही मरण होता है और मरणकारक खण्डसे पूर्व खण्डमें मरणलक्षणयुक्त राशिकी स्थिर दशा आ जावे तौ उसमें मरण नहीं होता है किन्तु क्लेश अधिक होता है ॥ ३० ॥

यदि कहो कि दीर्घ मध्य अल्पायुभेदसे मरणखण्ड तौ निर्णीत हो गया पर विशेषकर मरणकालज्ञान तौ इससे नहीं हुआ तहां कहते हैं।

तत्रर्क्षविशेषः ॥ ३१ ॥

तिस मरणमें राशिविशेष है। भाव यह है कि मरणकारक कोई राशिविशेष होता है ॥ ३१ ॥

यदि कहो कि कौन मरणकारक राशिविशेष होता है तहां कहते हैं।

पापमध्ये पापकोणे रिपुरोगयोः पापे वा ॥ ३२ ॥

दो पाप ग्रहोंके मध्यमें जो कि राशि होवे उस राशिकी दशामें अथवा प्रथम दशाप्रद राशिसे त्रिकोणमें और द्वादश अष्टम स्थानमें पाप ग्रहोंका योग होवे तौ उस राशिकी दशामें मरण होता है[२] ॥ ३२ ॥

तदीशयोः केवलक्षीणेन्दुशुक्रदृष्टौ वा ॥ ३३ ॥

---

१ "शशिनन्दपावकाः क्रमादब्दाः स्थिरदशायाम्" स्थिर दशाके वर्षोंके लानेकी रीति इस द्वितीयाध्यायके तृतीयपादसंबन्धि तृतीयसूत्रमें कही है ॥

२ यह वृद्धोंनेभी कहा है। "शुभमध्ये मृतिनैव पापमध्ये मृतिर्भवेत्"। कोई आचार्य "पापकोणे०" इत्यादि पदोंका यह अर्थ करते हैं लग्नसे वा आत्मकारकसे पापयुक्त त्रिकोण राशिकी दशामें अथवा पापयुक्त द्वादशाष्टमराशिकी दशामें मरण होता है ॥

द्वादश स्थानका स्वामी और अष्टम स्थानका स्वामी इनपर अन्य ग्रहोंकी दृष्टि तौ होवे नहीं किन्तु केवल क्षीणचन्द्र और शुक्र इनकी दृष्टि होवे तौ द्वादश और अष्टम राशिकी दशामें मरण होता है ॥ ३३ ॥

यदि कहो कि बहुवर्षव्यापिनी दशा होवे तौ कब मरण होगा इस शंकामें कहते हैं ।

तत्राप्यद्यक्षारिनाथदृश्यनवभागाद्वा ॥ ३४ ॥

जो कि मरणकारक राशिदशा कही हैं उनमेंभी जो कि प्रथम दशाप्रद राशि है उसका स्वामी और उससे छठे स्थानका स्वामी इन दोनोंकर नवांशकुण्डलीमें जो कि राशि देखा गया हो उस राशिके अन्तर्दशामें मरण होता है ॥ ३४ ॥

इसके अनन्तर निर्याणदशाविशेषको अन्य प्रकारसे दिखानेके वास्ते रुद्रग्रहको कहते हैं ।

पितृलाभभावेशप्राणी रुद्रः ॥ ३५ ॥

लग्न और सप्तम स्थानसे जो कि अष्टम स्थानके स्वामी हैं उन दोनोंमें जो कि बली होवे वह रुद्रसंज्ञक ग्रह होता है ॥ ३५ ॥

इसके अनन्तर द्वितीय रुद्रग्रहको कहते हैं ।

अप्राण्यपि पापदृष्टः ॥ ३६ ॥

लग्न सप्तम स्थानसे अष्टम स्थानके स्वामियोंमें जो कि दुर्बलग्रह होवे वह यदि पापग्रहने देखा हो तौ रुद्रसंज्ञक होता है । दो रुद्र होते हैं एक बली और दूसरा निर्बली ॥ ३६ ॥

---

१ कोई आचार्योंने आद्यशब्दसे दशम राशि और अरिशब्दसे षष्ठ राशि ग्रहण किया है सो उन आचार्योंकी इस प्रकार व्याख्या योग्य नहीं क्योंकि जब कि आद्यशब्दसे दशम राशि लिया तौ अरिशब्दसे अष्टम राशि लेना चाहिये था और यदि ऐसा तात्पर्य ग्रंथकर्ताका होता तौ " रिःफतन्तुनाथदृश्यनवभागाद्वा " ऐसा सूत्र होना चाहिये था ॥

इसके अनन्तर बली रुद्रका फल कहते हैं।

प्राणिनि शुभदृष्टे रुद्रशूलान्तमायुः ॥ ३७ ॥

जो कि बलवान् रुद्रसंज्ञक ग्रह है वह यदि शुभ ग्रहोंकर देखा गया हो तौ रुद्रग्रहसे शूल नाम प्रथम पंचम नवम राशिके दशापर्यन्त आयु होवे है अथवा बलवान् रुद्रसंज्ञक ग्रह शुभ ग्रहोंने देखा होवे तहां यदि अल्पायुर्योग होवे तौ रुद्रग्रहसे प्रथमराशिदशापर्यन्तही आयु होवे है और मध्यायुर्योग होवे तौ रुद्रग्रहसे पञ्चमराशिदशापर्यन्त आयु होवे है और दीर्घायुर्योग होवे तौ रुद्रग्रहसे नवमराशि दशापर्यन्त आयु होवे है ॥ ३७ ॥

तत्रापि शुभयोगे ॥३८॥

यदि द्वितीय निर्बली रुद्रके विषेभी शुभ ग्रहोंका योग होवे तौभी रुद्रग्रहसे प्रथम पंचम नवम राशिदशापर्यन्त आयु होवे है ॥ ३८ ॥

व्यर्कपापयोगेन ॥३९॥

सूर्यको त्यागकर अन्य पाप ग्रहोंका योग यदि रुद्रसंज्ञक ग्रहके विषे होवे तौ यह फल नहीं होता है अर्थात् रुद्रग्रहसे प्रथम पंचम नवम राशिदशापर्यन्त आयु होनेका फल नहीं होता है किन्तु सूर्यके योगमें रुद्रग्रहसे प्रथम पंचम नवम राशिदशापर्यन्त आयु होनेका फल होता है ॥ ३९ ॥

इसके अनन्तर दोनों रुद्रोंका गुणविशेषकर फल दिखाते हैं।

मंदारेंदुदृष्टे शुभयोगाभावे पापयोगेपि वा शुभदृष्टौ वा परतः ॥४०॥

बली अथवा निर्बली रुद्र, शनैश्चर, मंगल, चन्द्र इनकर देखा गया हो और उस रुद्रपर शुभ ग्रहका योग होवे नहीं एक योग यह है और बली अथवा निर्बली रुद्र शनैश्चर, मंगल, चन्द्र इनकर देखा गया हो और उस रुद्रपर पापग्रहका योग होवे द्वितीय योग यह है और बली अथवा निर्बली रुद्र शनैश्चर, मंगल, चन्द्र इनकर

देखा गया हो और उसपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि होवे तृतीययोग यह है । इन तीनों योगोंमेंसे कोई योग संपूर्ण होवे तौ रुद्रग्रहसे प्रथम पंचम नवम राशिदशापर्यन्तसेभी अगाडीतक आयु होवे है[1] ॥४०॥

कदाचित् रुद्राश्रितराशिमेंभी मरण होता है इसी योगको कहते हैं ।

रुद्राश्रयेऽपि प्रायेण ॥ ४१ ॥

रुद्राश्रित राशिमें भी आयुकी समाप्ति होवे है । भाव यह है कि जिस राशिमें रुद्र ग्रह स्थित होवे है उस राशिकी दशामेंभी कदाचित् मरण होता है । सूत्रमें प्रायःशब्दका प्रयोग होनेसे रुद्राश्रित राशिसे पहिले वा पीछेभी आयुकी समाप्ति होवे है ऐसा ध्वनित होता है ॥ ४१ ॥

---

१ इस सूत्रमें जो कि दो वाकार है "वाकारद्वयमनास्थायाम्" इस प्रकार कहकर वे दोनों वाकार पंथोंने दो योगके जतानेहीवाले कहे हैं सो यह पंथवचन युक्त नहीं क्यों कि दोनों वाकारोंकी अनास्थाकल्पनामें कोई प्रमाण नहीं इससे दोनों वाकारोंसे तीन योगही प्रकट होते हैं । इस प्रकरणमें शुभ पापग्रहोंका लक्षण वृद्धोंने कहा है । "अर्कारमन्दफणिनः क्रमात् क्रूरा यथाश्रयम् । चंद्रोपि क्रूर एवात्र क्वचिदंगारकाश्रये । गुरुध्वजकविज्ञाः स्युर्यथापूर्वं शुभग्रहाः ।" अर्थ–सूर्य मंगल, शनैश्चर, राहु ये क्रमसे यथाश्रय नाम क्रूर राशिपर स्थित होवे तौ क्रूर होते हैं और शुभ राशिपर स्थित होवें तौ क्रूर नहीं होते किन्तु शुभही होते हैं और बृहस्पति, केतु, शुक्र, बुध ये यथापूर्व शुभग्रह होते हैं । बुधसे शुक्र, शुक्रसे केतु, केतुसे बृहस्पति ये उत्तरोत्तर शुभग्रह हैं । जिस प्रकार कि क्रूर ग्रहोंकी क्रूरराशिमें स्थित होनेसे क्रूरता होवे है और शुभ राशिमें स्थित होनेसे शुभता होवे है तिसी प्रकार बृहस्पति आदिकोंकी शुभ राशिमें स्थित होनेसे शुभता होवे है और पापराशिमें स्थित होनेसे शुभता नहीं होती है । ऐसा वृद्धोंनेभी कहा है । "प्रत्येकं शुभराशिस्थ उच्चस्थो वा बुधः शुभः । गुरुशुक्रौ च सौम्यस्थौ ततोऽन्यत्राऽशुभाः स्मृताः ॥" यदि रुद्रशूलमें मरण कहा तौ किस शूलमें मरण होना चाहिये इस विषयमें वृद्धोंने विशेष कहा है । "पापमात्रस्य शूलत्वे प्रथमर्क्षे मृतिर्भवेत् । मिश्रे मध्यमशूर्क्षे शुभमात्रेऽन्त्यभे मृतिः ॥ अर्थ–यदि दोनों रुद्र पाप ग्रह होवें तो रुद्रग्रहसे प्रथम राशिकी दशामें मरण होता है और यदि एक रुद्र पाप ग्रह होवे और द्वितीय शुभ ग्रह होवे तौ रुद्रग्रहसे पंचम राशिकी दशामें मरण होता है और यदि दोनों रुद्र शुभ ग्रह होवें तो रुद्रग्रहसे नवम राशिकी दशामें मरण होताहै ॥

क्रये पितरि विशेषेण ॥ ४२ ॥

जब मेष जन्मलग्न होवे तौ विशेषकर रुद्राश्रित राशिमेंही आयुकी समाप्ति होवे है । भाव यह है कि जन्मलग्नमें मेषराशि होवे तौ जिस राशिमें रुद्रग्रह स्थित होवे उस राशिकी दशामेंही आयुकी समाप्ति होवे है ॥ ४२ ॥

इसके अनन्तर योगभेदसे मरणस्थान दिखाते हैं ।

प्रथममध्यमोत्तमेषु वा तत्तदायुषाम् ॥ ४३ ॥

अल्प मध्य दीर्घायुर्योगवालोंकी प्रथम मध्यम उत्तम नाम प्रथम द्वितीय तृतीय रुद्रशूलोंके विषे क्रमसे आयुः समाप्ति होवे है । भाव यह है कि अल्पायुर्योग होवे तौ प्रथम रुद्रशूलमें आयुकी समाप्ति होवे है और मध्यायुर्योग होवे द्वितीय रुद्रशूलमें आयुकी समाप्ति होवे है और दीर्घायुर्योग होवे तौ तृतीय रुद्रशूलमें आयुकी समाप्ति होवे है । इस प्रकार रुद्रशूलराशिकी महादशामें मरणयोगसिद्ध हो चुका उसीकी किसी अन्तर्दशामें मरण हो जाता है[१] ॥ ४३ ॥

इसके अनन्तर फलविशेषके कहनेके लिये महेश्वरग्रहको दिखाते हैं ।

स्वभावेशो महेश्वरः ॥ ४४ ॥

आत्मकारकग्रहसे जो कि अष्टमराशिका स्वामी है वह महेश्वर संज्ञक ग्रह होता है ॥ ४४ ॥

स्वोच्चे स्वगृहे रिपुभावेशः प्राणी ॥ ४५ ॥

यदि आत्मकारकसे अष्टम राशिका स्वामी उच्च व अपने गृहमें स्थित होवे तौ आत्मकारकसे द्वादश अष्टम राशियोंके स्वामियोंमें जो बलवान् होता है वह महेश्वरसंज्ञक होता है और यपि आ-

१ सूत्रमें वाशब्दके प्रयोगसे यह ध्वनित होता है कि रुद्रशूलसे मरण योग हुए संतेभी अन्य बलवान् योगवशसे रुद्रशूलद्वारा मरणका बाधभी हो जाता है ॥

त्मकारकसे द्वादश अष्टम राशियोंके स्वामी दोनों बलवान् होवें तौ दोनों महेश्वरसंज्ञक होते हैं[1] ॥ ४५ ॥

इसके अनन्तर द्वितीय प्रकारसे महेश्वर ग्रहको कहते हैं।

पाताभ्यां योगे स्वस्य तयोर्वा रोगे ततः ॥ ४६ ॥

आत्मकारकका पात नाम राहुकेतुमेंसे किसीके साथ योग होवे अथवा आत्मकारकसे अष्टम स्थानपर राहुकेतुमेंसे किसीका योग होवे तौ आत्मकारकसे सूर्यादिगणनाके क्रमसे जो छठा ग्रह होवे वह महेश्वर होता है। दो तीन महेश्वर होनेके योगमें जो बली होत हैं वह महेश्वर होता है ॥ ४६ ॥

इसके अनन्तर ब्रह्मग्रह कहते हैं।

प्रभुभाववैरीशप्राणी पितृलाभप्राण्यनुचरो विषमस्थो ब्रह्मा ॥ ४७ ॥

लग्न सप्तम इन दोनों राशियोंमें जो कि बलवान् होवे उससे जो कि षष्ठ अष्टम द्वादश इन स्थानोंके स्वामी हैं उनमें जो कि बलवान् हो वह यदि लग्न सप्तममेंसे बलवान् राशिसे पृष्ट राशिस्थ होकर मेष मिथुनादि विषमराशिपर स्थित होवे तौ वही ग्रह ब्रह्मा होता है। लग्नके पृष्ठ राशि सप्तमसे लेकर द्वादशपर्यंत होते हैं और सप्तमके पृष्ठराशि लग्नसे लेकर षष्ठपर्यंत होते हैं[2] ॥ ४७ ॥

इसके अनन्तर अन्य प्रकारसे ब्रह्मग्रह कहते हैं।

ब्रह्मणि शनौ पातयोर्वा ततः ॥ ४८ ॥

यदि शनैश्चर ब्रह्मलक्षण युक्त होवें अथवा राहु केतु ब्रह्मलक्षण युक्त होवे तौ शनैश्चर वा राहु केतुसे जो कि छठा ग्रह है वह ब्रह्मा-

---

१ " स्वोच्चे सग्रहे रिपुभावेशः प्राणी " ऐसा सूत्र होनेपर यह अर्थ निकलता है कि आत्मकारकका उच्च राशि यदि ग्रहयुक्त होवे तौ आत्मकारकसे अष्टम द्वादश राशियोंके स्वामियोंसे बली ग्रह महेश्वर होता है ॥

२ लग्नसे द्वादश एकादश दशम नवम अष्टम सप्तम ये राशि पृष्ठ हैं और सप्तमसे षष्ठ पंचम चतुर्थ तृतीय द्वितीय लग्न ये राशि पृष्ठ हैं ॥

होता है न कि शनैश्चरादिक । भाव यह है कि यदि शनैश्चर वा राहु केतु इनमें कोई ब्रह्मयोगकारक होवे तो ये ब्रह्मा नहीं होते किन्तु इनसे छठा ग्रह ब्रह्मा होता है ॥ ४८ ॥

यदि कहो कि बहुत ग्रह ब्रह्मयोगकारक होवें तो कौन ब्रह्मा होता है इस शंकामें कहते हैं ।

बहूनां योगे स्वजातीयः ॥ ४९ ॥

यदि बहुत ग्रह ब्रह्मयोगकारक होवें तो उनमें जो कि आत्मकारकजातीय अर्थात् अधिक अंशवाला ग्रह है वह ब्रह्मा होता है॥४९॥

इस योगमें कुछ विशेष कहते हैं ।

राहुयोगे विपरीतम् ॥ ५० ॥

ब्रह्मसंज्ञक ग्रहके साथ यदि राहुका संयोग होवे तो विपरीत होता है । भाव यह है कि ब्रह्मसंज्ञक ग्रह राहुके साथमें होवे तो बहुतसे ब्रह्मयोगकारक ग्रहोंमें कम अंशवाला ग्रह ब्रह्मा होता है । इस कथनसे यह जनाया गया कि शनैश्चर राहु केतु इनमेंसे ब्रह्मयोग होनेपरभी ब्रह्मा नहीं हो सकता परन्तु राहुका ब्रह्मयोग होनेपर यदि बहुतसे ब्रह्मयोगकारक ग्रहोंके मध्यमें राहु न्यूनांश होवे तौ ब्रह्मा हो सकता है ॥ ५० ॥

इसके अनन्तर अन्य प्रकारसे ब्रह्मग्रह कहते हैं ।

ब्रह्मा स्वभावेशो भावस्थः ॥ ५१ ॥

आत्मकारकसे अष्टमस्थानका स्वामी और आत्मकारकसे अष्टम स्थानपर स्थित हुआ ग्रह ब्रह्मा होता है[1] ॥ ५१ ॥

---

१ इस सूत्रकी कोई आचार्य यह व्याख्या करते हैं कि आत्मकारकसे अष्टम राशिका स्वामी आत्मकारकसे अष्टममें स्थित होवे तौ वह आत्मकारकसे अष्टम स्थानका स्वामी ब्रह्मा होता है । यह व्याख्या उचित नहीं क्योंकि इस सूत्रकी ऐसी व्याख्या होनेपर "विवादे बली" यह सूत्र इसमें न घटनेसे यह सूत्र अयोग्य हो जावेगा क्योंकि अन्तरको प्राप्त होनेसे पूर्वान्वितभी यह सूत्र नहीं है । दूसरे "बहूनां योगे" इस सूत्रसेही पूर्व शंका दूर होही चुकी है इससे अष्टमेश और अष्टमस्थ इन दोनोंमें एकको निर्विवाद ब्रह्मत्व होता है ॥

यदि अष्टमेश अष्टमस्थ इन दोनोंमें भेद होवे तो कौन ब्रह्मा होता है इस शंकामें कहते हैं ।

विवादे बली ॥ ५२ ॥

यदि ब्रह्मलक्षणयुक्त दोनों ग्रहोंको ब्रह्मत्व होवे तो उनमें जो कि बली है वह ब्रह्मा होता है अथवा समस्त ब्रह्मसंज्ञक तुल्यांश होवे तो विना ग्रहवाले राशिसे ग्रहवाला राशि और एक ग्रहवाले राशिसे दो ग्रहवाला राशि और दो ग्रहवाले राशिसे तीन ग्रहवाला राशि बली होता है इस रीतिसे जो ग्रह बली होवे वह ब्रह्मा होता है ॥ ५२ ॥

इसके अनन्तर ब्रह्म महेश्वर दोनोंका बल कहते हैं ।

ब्रह्मणो यावन्महेश्वरर्क्षदशांतमायुः ॥५३॥

स्थिर दशामें ब्रह्माग्रहाश्रित राशिसे लेकर महेश्वराश्रित राशिकी दशापर्यन्त आयु होवे है । भाव यह है कि जिस राशिका ब्रह्मग्रह होवे उस राशिसे और आरम्भकरके जिस राशिका कि महेश्वर ग्रह है उस राशिकी स्थिरदशापर्यन्त आयु होवे है ॥ ५३ ॥

इसके अनन्तर महादशामेंभी मरणकारक जो कि अन्तर्दशा है उसको कहते हैं ।

तत्रापि महेश्वरभावेशत्रिकोणाब्दे ॥ ५४ ॥

जिस राशिका महेश्वर हो उस राशिकी स्थिर दशामेंभी जब कि महेश्वराधिष्ठित राशिसे अष्टम राशिके स्वामीका जो कि त्रिकोण नाम प्रथम पंचम नवमरूप राशि है उसका जब कि एक दो वर्षरूप अन्तर्दशाकाल होवे उसमें मरण होता है[1] ॥ ५४ ॥

इसके अनन्तर दो सूत्रोंसे मारकग्रहको दिखाते हैं ।

स्वकर्मचितारिपुरोगनाथप्राणिमारकः ॥ ५५ ॥

---

१ सूत्रमें अब्दशब्दका प्रयोग राशिदशाके बारह वर्षके अभिप्रायसे किया गया है । यदि न्यूनसंख्याकर दशा होवे तौ वर्षसे न्यूनही अन्तर्दशाओंकेभी विषे लाना चाहिये ॥

आत्मकारकसे तृतीय षष्ठ द्वादश अष्टम इन स्थानोंके स्वामियोंके मध्यमें जो कि बलवान् होवे वही मारक ग्रह होता है और यदि सब ग्रह समान बली होवें तौ सबही ग्रह मारक होते हैं। यदि कहों कि बहुतसे ग्रह मारक होवें तो किसकी दशामें मरण होता है तहां यह जानना कि अल्प मध्य दीर्घायुओंमें जिसका जहां जहां संभव होवे उसी राशिदशामें मरण होता है ॥ ५५ ॥

इसके अनन्तर मारकका फल कहते हैं।

तदृक्षदशायां निधनम् ॥ ५६ ॥

जिस राशिका मारक ग्रह होवे अथवा जिस राशिका मारक ग्रह स्वामी होवे उसकी चरस्थिरादिरूप महादशामें मरण होता है॥५६॥

इसके अनन्तर मारकमहादशामें जो कि मरणकारक अन्तर्दशा है उसको कहते हैं।

तत्रापि कालाद्रिपुरोगचित्तनाथापहारे ॥ ५७ ॥

मारकग्रहकी दशामेंभी आत्मकारकके सप्तमसे द्वादश अष्टम षष्ठ

---

१ बहुधा मुख्यताकर आत्मकारकसे षष्ठेशही मारक होता है। यहां वृद्धोंनेभी कहा है। "षष्ठाष्टमेशौ भवतो मारकावष्टमेश्वरः। प्रायेण मारको राशिदशास्वत्राविशेषतः॥ षष्ठभे पापभूयिष्ठे षष्ठेशो मुख्यमारकः। षष्ठात्त्रिकोणतो वापि मुख्यमारक इष्यते॥ मध्यायुषि मृतिः षष्ठदशायामष्टमस्य वा। षष्ठत्रिकोणस्य पुनर्दीर्घाल्पविषये भवेत्॥ षष्ठे बलयुते तस्य त्रिकोणे मृतिमादिशेत्। षष्ठेशश्चेद्बलाढ्यः स्यात्तत्त्रिकोणे मृतिं वदेत्॥ व्यवस्थेयं समस्तापि कारकादिदशास्वपि। बलिनः शुक्रशशिनोर्ग्राह्यं षष्ठाष्टमादिकम्॥" अर्थ-यदि षष्ठेश अष्टमेष दोनों मारक होवें तौ बहुधाकर अष्टमेशही मारक होता है। यदि षष्ठराशि अधिक पाप ग्रहोंसे युक्त होवे तौ मुख्यतासे षष्ठेश मारक होता है अथवा षष्ठसे त्रिकोणस्थान पर स्थित हुआ ग्रहभी मारक होता है। यदि मध्यायु होवे तौ षष्ठ अथवा अष्टमराशिकी दशामें मरण होता है और दीर्घायु वा अल्पायु होवे तौ षष्ठ राशिसे त्रिकोण नाम प्रथम पंचम नवम राशिकी दशामें मरण होता है। यदि षष्ठराशि बलयुक्त होवे तौ उसके त्रिकोणराशिमें मरण कहे और यदि षष्ठेश बलवान् होवे तौ षष्ठेशसे त्रिकोणराशिमें मरण कहे। लग्नसप्तममें जो बली होवे उससे षष्ठ अष्टमादिक ग्रहण करने चाहिये यही समस्त व्यवस्था कारकादिदशाओंमेंभी होवे है॥

स्थान इनके स्वामियोंके मध्यमें जो बलवान् होवे उसका जब अन्तर्दशाकाल आवे उसमें मरण होता है[1] ॥ ५७ ॥

इति श्रीजैमिनीयसूत्रद्वितीयाध्याये श्रीनीलकंठीयतिलकानुसृतभाषाटीकायां श्रीपाठकमंगसेनात्मजकाशिरामकृतायां प्रथमः पादः समाप्तः १

अथ द्वितीयपादः ।



इसके अनंतर पित्रादिकोंका मरणकाल जतानेके लिये पित्रादिकारकको कहते हैं ।

रविशुक्रयोः प्राणी जनकः ॥ १ ॥

सूर्य और शुक्र इन दोनोंके मध्यमें जो बलवान् होवे वह पितृकारक होता है ॥ १ ॥

चंद्रारयोर्जननी ॥ २ ॥

चन्द्रमा मंगल इन दोनोंमें जो कि बली होवे वह मातृकारक होता है ॥ २ ॥

अप्राण्यपि पापदृष्टः ॥ ३ ॥

सूर्य शुक्र और चंद्र मंगल इनके मध्यमें जो निर्वली हो वह यदि पापग्रहने देखा होवे तो यथाक्रम पितृमातृकारकताको प्राप्त

१ यहांपर वृद्धोंने विशेष कहा है । "चरे चरस्थिरद्वन्द्वा इति यो राशिरागतः । स एव मारको राशिर्भवतीति विनिर्णयः ॥ बहुराशिसमावेशे बलवान् मारकः स्मृतः ॥" अर्थ–लग्नेश अष्टमेश तथा लग्नचंद्र तथा लग्नहोरा यह दो दो आयुर्दायकारक जिस राशिपर स्थित होवे वह राशि मारक होता है और यदि वह राशि बहुतसी होवें सो विना ग्रहके राशिसे ग्रहयुक्त राशि और एक ग्रहयुक्त राशिसे दो ग्रहयुक्त राशि बली होता है इस रीतिसे जो राशि बली होवे वह मारक होता है । उस मारकराशिका स्वामी जिस राशिपर स्थित होवे उस राशिकी दशामें मरण होता है और अन्य ऐसा कहते हैं । "चर इत्यादिनायुर्यत्तत्समाप्त्युचितो भवेत् । योराशिः स तु विज्ञेयो मारकः सूत्रसंमतः ॥" अर्थ–"चरे चरस्थिरद्वंद्वाः" इस श्लोकसे जो कि आयु आया है वह दीर्घमध्याल्परूप आयु जिस राशिमें समाप्त होवे वही राशि मारक होता है ॥

होता है । भाव यह है कि सूर्य शुक्र इन दोनोंमें जो कि निर्बली होवे वह यदि पापग्रहने देखा हो तो पितृकारक होता है और चंद्रमा मंगल इन दोनोंमें जो कि निर्बली होवे वह यदि पापग्रहने देखा होवे तो मातृकारक होता है ॥ ३ ॥

इसके अनंतर बली पितृमातृकारकका फल कहते हैं ।

प्राणिनि शुभदृष्टे तच्छूले निधनं मातापित्रोः ॥ ४ ॥

बली पितृकारक अथवा बली मातृकारकशुभ ग्रहने देखा होवे तो जिस राशिपर पितृकारक मातृकारक स्थित होवे उस राशिसे त्रिकोणराशिकी दशामें पिता और माताका मरण जानना ॥ ४ ॥

तद्भावेशे स्पष्टबले ॥ ५ ॥ तच्छूल इत्यन्ये ॥ ६ ॥

बली हो अथवा निर्बली हो ऐसे दोनों प्रकारके पितृमातृकारकसे अष्टम स्थानका स्वामी पितृमातृकारकसे अधिक बली अर्थात् अधिकांश होवे तो जिस राशिका अष्टमेश होवे उस राशिसे त्रिकोण नाम प्रथम पंचम नवम राशिकी दशामें पितृमातृका मरण जानना ऐसा अन्य आचार्य कहते हैं । पितृकारकसे ऐसा योग होवे तो पिताका मरण और मातृकारकसे ऐसा योग होवे तो माताका मरण जाने ॥ ५ ॥ ६ ॥

आयुषि चान्यत् ॥ ७ ॥

पितृआदिकोंके आयुके विचार किये जानेपर पितृआदिकोंका कारक और अन्य प्रकारसे कहे हुए निर्णयशूलदशादिककाभी विचार करना चाहिये ॥ ७ ॥

इसके अनन्तर पितृमरणमें विशेष कहते हैं ।

अर्कज्ञयोगे तदालग्नयेमेषदशायां पितुरित्येके ॥८॥

लग्नसे क्रिय नाम द्वादशराशि वह होवे है जो कि सूर्यबुधाश्रय

---

१ "तद्भावेशे स्पष्टबले" इस सूत्रमें जो कि "अधिबले" पदके जगह "स्पष्टबले" ऐसा पद कहा है उससे अंशाधिक बल ग्रहण करना चाहिये ॥

अर्थात् सिंह मिथुन कन्या है और उसमें सूर्य और बुधका योग होवे तो लग्नसे पंचम राशिकी दशामें पिताका मरण होता है ऐसा कोई आचार्य कहते हैं। भाव यह है कि लग्नसे द्वादश सिंह मिथुन कन्यामेंसे कोई होवे और उसमें सूर्य बुध इन दोनोंका योग होवे तो लग्नसे पंचम राशिकी दशामें पिताका मरण होता है[1] ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर बाल्यावस्थामें ही मातापितृके मरणयोगको कहते हैं

व्यर्कपापमात्रदृष्टयोः पित्रोः प्राग्द्वादशाब्दात् ॥ ९ ॥

बली हो अथवा निर्बली हो ऐसे दोनों प्रकारके पितृमातृकारक यदि सूर्यवर्जित अन्य पापग्रहमात्रने देखे होवें तो बारह वर्षसे पूर्वही पितृमातृका यथाक्रम मरण होता है। भाव यह है कि बली वा निर्बली पितृकारक सूर्यवर्जित पापग्रहमात्रने देखा हो तो पिताका मरण होता है और बली वा निर्बली मातृकारक सूर्यवर्जित पाप-ग्रह मात्रने देखा हो तो माताका मरण होता है और सूर्य वा शुभ ग्रहकी दृष्टि होवे तो यह योग नहीं होता है ॥ ९ ॥

इसके अनन्तर स्त्रीमरणकाल कहते हैं।

गुरुशूले कलत्रस्य ॥ १० ॥

जिस राशिपर बृहस्पति स्थित होवे उस राशिसे त्रिकोणराशिकी दशामें स्त्रीका मरण होता है ॥ १० ॥

इसके अनन्तर पुत्रमातुलादिकोंकाभी मरणकाल कहते हैं।

तत्तच्छूले तेषाम् ॥ ११ ॥

पुत्रमातुलादिकारक जिस २ राशिपर स्थित होवें उसी २ राशिसे त्रिकोणराशिकी दशामें पुत्रमातुलादिकोंका मरण होता है ॥ ११ ॥

इसके अनन्तर मरणमें शुभाशुभ भेद दिखाते हैं।

कर्मणि पापयुतदृष्टे दुष्टं मरणम् ॥ १२ ॥

---

१ "अर्कज्ञयोगे तदाश्रये क्रिये लग्ने मेषदशायां पितुरित्येके" यदि ऐसा पाठ होवे तौ यह अर्थ हुआ यदि क्रियनाम मेषराशि सूर्य बुध इन दोनोंके योगसे युक्त होकर लग्नमें होवे तौ मेषराशिकी दशामें पिताका मरण होता है ॥

लग्नसे अथवा कारकसे तृतीय स्थान पापग्रहकर युक्त होवे अथवा पापग्रहने देखा हो तो दुष्ट मरण होता है ॥ १२ ॥

शुभं शुभदृष्टियुते ॥ १३ ॥

लग्नसे अथवा कारकसे तृतीय स्थान शुभ ग्रहसे युक्त होवे अथवा शुभ ग्रहने देखा होवे तो शुभ मरण होता है। अग्निसे जलसे गिरनेसे बन्धनादिसे जो मरण होता है वह दुष्ट कहाता है और ज्वरादिरोगसे जो मरण होता है वह शुभ कहाता है ॥ १३ ॥

मिश्रे मिश्रम् ॥ १४ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थानपर शुभ अशुभ दोनोंकी दृष्टि अथवा योग होवे तो शुभाशुभरूप मरण होता है ॥ १४ ॥

आदित्येन राजमूलात् ॥ १५ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थानपर सूर्यका योग वा दृष्टि होवे तो राजाके निमित्तसे मरण होता है ॥ १५ ॥

चन्द्रेण यक्ष्मणः ॥ १६ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थान चन्द्रमासे युक्त वा देखा गया हो तो क्षयरोगसे मृत्यु होता है ॥ १६ ॥

कुजेन व्रणशस्त्राग्निदाहाद्यैः ॥ १७ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थान मंगलसे युक्त वा देखा गया तो व्रण शस्त्र अग्निदाहादिसे मरण होता है ॥ १७ ॥

शनिना वातरोगात् ॥ १८ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थान शनिसे युक्त वा देखा गया हो तो वातरोगसे मरण होता है ॥ १८ ॥

मंदमांदिभ्यां विषसर्पजलोद्बंधनादिभिः ॥ १९ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थान शनैश्चर और गुलिकसे

युक्त वा देखा गया हो तो विष सर्प जल बन्धनादिकसे मरण होता है ॥ १९ ॥

केतुना विषूचीजलरोगाद्यैः ॥ २० ॥

लग्न वा कारकसे तृतीय स्थान केतुसे युक्त वा देखा गया हो तो विषूचिका जलरोगादिकोंसे मरण होता है ॥ २० ॥

चंद्रमादिभ्यां पूगमदान्नकवलादिभिः क्षणिकम् ॥२१॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थान चन्द्र और गुलिकसे[1] युक्त वा दृष्ट हो तो सुपारी मद तथा अन्नग्रासादिसे शीघ्रही मरण हो जाता है ॥ २१ ॥

गुरुणा शोफाऽरुचिवमनाद्यैः ॥ २२ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थान बृहस्पतिसे युक्त वा दृष्ट होवे तो शोफ नाम सूजन और अरुचि और वमन इत्यादिकसे मरण होता है ॥ २२ ॥

शुक्रेण मेहात् ॥ २३ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थान शुक्र वा दृष्ट होवे तो प्रमेहरोगसे मृत्यु होता है ॥ २३ ॥

मिश्रे मिश्रात् ॥ २४ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थानपर अनेक ग्रहोंका योग वा दृष्टि होवे तो अनेक रोगोंसे मरण होता है ॥ २४ ॥

चंद्रदृग्योगान्निश्चयेन ॥ २५ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थानपर जिस ग्रहका योग अथवा दृष्टि होवे और तहां चन्द्रमाकाभी योग वा दृष्टि होवे तो अवश्यही उसी ग्रहके रोगसे मरण कहना चाहिये । इस कथनसे यह सिद्ध हुआ कि तृतीय स्थानपर चन्द्रमाका योग वा दृष्टि न होवे

---

१ गुलिकके स्पष्ट करनेका विधान प्रथमाध्यायके द्वितीयपादसंबन्धि वन्तीसवें सूत्रकी टिप्पणीमें लिख आये हैं ॥

तो जिस ग्रहसे कि तृतीय स्थान युक्त वा दृष्ट है उस ग्रहके रोगसे मरणमें संदेह रहता है ॥ २५ ॥

इसके अनन्तर मरणमें देशभेदको दिखाते हैं।

शुभैः शुभे देशे ॥ २६ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थानपर शुभ ग्रहोंका योग और दृष्टि होवे तौ काश्यादि पुण्यभूमिमें मरण होता है ॥ २६ ॥

पापै कीकटे ॥ २७ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थानपर पापग्रहोंका योग दृष्टि होवे तौ मगधादि पाप देशमें मरण होता है और यदि शुभ पाप ग्रह दोनोंका योग और दृष्टि होवे तो न काश्यादि शुभ देशमें और न मगधादि पाप देशमें किन्तु सामान्य देशमें मरण होता है ॥२७॥

गुरुशुक्राभ्यां ज्ञानपूर्वम् ॥ २८ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थान बृहस्पति शुक्र इन दोनोंमें युक्त वा देखा गया हो तौ ज्ञानपूर्वक मरण होता है अर्थात् मरण समय बुद्धि यथावत् रहती है ॥ २८ ॥

अन्यैरन्यथा ॥ २९ ॥

यदि लग्न वा कारकसे तृतीय स्थान बृहस्पति शुक्रको त्याग अन्य किसी ग्रहसे युक्त वा दृष्ट होवे तौ अज्ञानपूर्वक मरण होता है अर्थात् मरणसमय बुद्धि नहीं रहती है ॥ २९ ॥

लेपजनयोर्मध्ये शनिराहुकेतुभिः पित्रोर्न संस्कर्ता ३०

लग्न और द्वादश स्थान इन दोनोंके मध्यमें शनैश्चर राहु अथवा शनैश्चर केतु ये दोनों ग्रह होवें तौ मातापिताका दाहादिरूप संस्कार करनेवाला नहीं होता है ॥ ३० ॥

लेपादि पूर्वार्द्धे जनकाद्यपरार्द्धे ॥ ३१ ॥

लग्नसे आदि लेकर प्रथमके छः भावोंमें और द्वादश स्थानसे आदि लेकर पिछले छः भावोंमें राहु शनैश्चर अथवा केतु शनैश्चर

ये दोनों विद्यमान होवें तौ क्रमसे माता पिताके दाहादिरूप संस्कार करनेवाला नहीं होता है । भाव यह है कि लग्नसे आदि लेकर छः भावोंमें शनैश्चर केतु ये दोनों विद्यमान होवें तौ माताके दाहादिरूप संस्कार करनेवाला नहीं होता है और सप्तमसे आदि लेकर छः भावोंमें शनि केतु विद्यमान होवें तौ पिताके दाहादिरूप संस्कार करनेवाला नहीं होता है[1] ॥ ३१ ॥

शुभदृग्योगान्न ॥ ३२ ॥

यदि लग्नसे लेकर छः भावों और द्वादश स्थानसे लेकर पिछले छः भावोंमें शुभ ग्रहोंकी दृष्टि और योग होवे तौ यह कहा हुआ योग नहीं होता है किन्तु मातापिताके दाहादिरूप संस्कार करनेवाला होता है ॥ ३२ ॥

इति श्रीजैमिनीयसूत्रद्वितीयाध्याये श्रीनीलकंठीयतिलकानुसृतभाषा-
टीकायां श्रीपाठकमंगलसेनात्मजकाशिरामकृतायां
द्वितीयपादः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ तृतीयपादः ।



इसके अनन्तर दशाभेद बलभेद कहते हैं तिसमेंभी प्रथम
नवांशदशाको कहते हैं ।

विषमे तदादिर्नवांशः ॥१॥ अन्यथाऽऽदर्शादिः ॥२॥

यदि विषम लग्न होवे तौ लग्नसे आदि लेकर नवांशदशा होवे है और अन्यथा अर्थात् समराशि लग्नमें होवे तौ आदर्शादि नाम सप्तम राशिसे आदि लेकर नवांशदशा होवे है इस नवांशदशामें

---

१ शंका–शनैश्चर राहु केतु इन तीनोंका एक जगह होना क्यों नहीं कहा ? क्योंकि सूत्रमें तौ "शनिराहुकेतुभिः" ऐसा पद कहा है । समाधान–राहु केतुकी स्थिति एक जगह नहीं हो सकती इससे तीनोंका एक जगह होना नहीं कहा॥

प्रत्येक राशिके नौ नौ वर्ष होते हैं इसीसे इसका नाम नवांशदशा जाननी ॥ १ ॥ २ ॥

शशिनंदपावकाः क्रमादब्दाः स्थिरदशायाम् ॥३॥

स्थिर दशामें चर स्थिर द्विस्वभाव राशियोंके क्रमसे सात व आठ व नौ वर्ष होते हैं अर्थात् मेष कर्क तुला मकर इनके सात २ वर्ष होते हैं, वृश्चिक कुम्भ इनके आठ आठ वर्ष होते हैं, मिथुन कन्या धनु मीन इनके नौ नौ वर्ष होते हैं ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर स्थिरदशाका आरम्भस्थान कहते हैं।

ब्रह्मादिरेषा ॥ ४ ॥

जिस राशिपर ब्रह्मग्रह स्थित होवे उस राशिसे आरम्भ करके यह स्थिरदशा प्रवृत्त होती है ॥ ४ ॥

अथ प्राणः ॥ ५ ॥

इसके अनन्तर बलाधिकारमें राशियोंका बल कहा जाता है॥५॥

कारकयोगः प्रथमो भानाम् ॥ ६ ॥

राशियोंका प्रथम बलकारक योग होता है अर्थात् विना ग्रह-वाले राशिसे ग्रहवाला राशि बली होवे है ॥ ६ ॥

साम्ये भूयसा ॥ ७ ॥

यदि दोनों जगह ग्रहयोगकी समानता होवे तौ बहुतसे ग्रह-योगकरके राशियोंका बल होता है अर्थात् थोडे ग्रहवाले राशिसे बहुत ग्रहवाला राशि बली होता है ॥ ७ ॥

ततस्तुंगादिः ॥ ८ ॥

यदि ग्रहोंकी बाहुल्यताभी बराबर होवे तौ उच्चादियोग राशि-

---

१ यहां आदिशब्दका अर्थ संमुख है लग्नसे सप्तमराशिही होता है। "स्थिर राशेः षष्ठराशिश्चरस्याष्टम एव सः। द्विस्वभावस्य राशिस्तु सप्तमःसम्मुखो मतः॥" अर्थ-स्थिरराशिका चर राशि और चरराशिका अष्टमराशि और द्विस्वभाव राशिका सप्तम राशि सम्मुख होता है ऐसा जो कि पंथोंने कहा है सो यहां नहीं हो सकता क्योंकि यह पंथवचन दृष्टिविषयमेंही है न कि अन्य विषयमें ॥

योंका बल होता है अर्थात् दोनों जगह ग्रह बराबर स्थित हों तौ जिस राशिपर उच्चका अथवा स्वराशिका वा मित्रगृहका ग्रह स्थित होवे वह राशि बली होता है ॥ ८ ॥

इसके अनन्तर राशियोंका निसर्ग बल कहते हैं ।

निसर्गस्ततः ॥ ९ ॥

उच्चादि बलके अनन्तर निसर्गबल ग्रहण करना चाहिये । भाव यह है कि यदि दोनों जगह उच्चस्थ वा स्वगृहस्थ वा मित्रगृहस्थ ग्रह विद्यमान होवे तो चरसे स्थिर और स्थिरसे द्विस्वभाव इस रीतिसे जो कि राशि बली हो वह ग्रहण करना चाहिये' ॥ ९ ॥

तदभावे स्वामिन इत्थंभावः ॥ १० ॥

जिस राशिका यह कहा हुआ कारकयोगादिबल न होवे तो उस राशिके स्वामीकाही यह कारकयोगादिबल ग्रहण करना चाहिये अर्थात् जिस राशिका स्वामी बली होता है वह राशिभी बली होता है ॥ १० ॥

आग्रायतोऽत्र विशेषात् ॥ ११ ॥

यदि एक राशिपर बहुतसे ग्रह विद्यमान हों और उन ग्रहोंका राश्यादिकबलभी समान होवे तौ उन ग्रहोंमें जो कि आग्रायत नाम अग्रगामी अर्थात् अधिक अंशवाला हो वह विशेषकर इस ग्रंथमें बली होता है ॥ ११ ॥

प्रातिवेशिकः पुरुषे ॥ १२ ॥

विषमराशिमें पार्श्ववर्त्ती ग्रह अपने बलके करनेवाला होता है । भाव यह है कि विषमराशिसे द्वितीय और द्वादश स्थानपर जो कि ग्रह स्थित हो वह अपने बलको उसी विषमराशिमें देता है ॥ १२ ॥

यहां वृद्धवचनभी है । "अग्रहात्सग्रहो ज्यायान् सग्रहेष्वधिकग्रहः । साम्ये चरस्थिरद्वन्द्वाः क्रमात्स्युर्बलशालिनः ॥ " अर्थ–विना ग्रहवालेसे ग्रहवाला और ग्रहवालेसे अधिक ग्रहवाला राशि बली होता है और यदि इस प्रकारभी समानता होतो चरसे स्थिर और स्थिरसे द्विस्वभाव बली होता है ॥

इति प्रथम ॥ १३ ॥

इस प्रकारसे राशियोंका प्रथम बल कहा है ॥ १३ ॥

स्वामिगुरुज्ञदृग्योगो द्वितीयः ॥ १४ ॥

स्वामीका योग और बृहस्पतिका योग और बुधका योग यह एक २ बारह राशियोंका बल होता है और स्वामीकी दृष्टि और बृहस्पतिकी दृष्टि और बुधकी दृष्टि यह एक २ बारह राशियोंका बल होता है । इस प्रकार जो कि छः बल हैं वह राशियोंका द्वितीय बल कहाता है । भाव यह है कि जिस राशिपर स्वामी बृहस्पति बुध इनका योग या दृष्टि होवे तो वह राशि बली होता है[1] ॥ १४ ॥

स्वामिनस्तृतीयः ॥ १५ ॥

जो कि राशिके स्वामीका बल है वह राशिका तृतीय बल कहा है ॥ १५ ॥

इसके अनन्तर स्वामीका बलाबल दिखाते हैं ।

स्वात्स्वामिनः कंटकादिष्वपारदौर्बल्यम् ॥ १६ ॥

आत्मकारकसे केंद्र पणफर आपोक्लिम इन स्थानोंके विषे स्वामीकी क्रमसे अपारनाम शून्य एक द्विगुण दुर्बलता होवे है । भाव यह है कि आत्मकारकसे प्रथम चतुर्थ सप्तम दशम इन स्थानोंमें जिस राशिका स्वामी स्थित हो वह राशि और स्वामी पूर्ण बली होते हैं और आत्मकारकसे द्वितीय पंचम सप्तम एकादश इन स्थानों· पर जिस राशिका स्वामी स्थित होवे वह राशि और स्वामी अर्द्ध-बली होते हैं और आत्मकरकसे तृतीय षष्ठ नवम द्वादश इन स्थानोंपर जिस राशिका स्वामी स्थित होवे वह राशि और स्वामी दुर्बल होता है[2] ॥ १६ ॥

---

१ "द्वितीये भावबलं चरनवांशे" इस अगले सूत्रमें जो कि भावबल ग्राह्य है वह यहां स्पष्ट किया है ॥

२ "अपार" इस शब्दका अर्थ कटपयादि संख्याके अनुसार है । कटपयादि संख्यामें स्वर शून्य मानाजाता है इससे पकारका शून्य अर्थलेनेसे दुर्बलताकी शू-

चतुर्थतः पुरुषे ॥ १७ ॥

चतुर्थ बलसेभी विषम राशिमें बल होता है । भाव यह है कि "पापदृग्योगस्तुंगादिग्रहयोगः" इस सूत्रमें जो कि चतुर्थ बल कहा है उस बलसे विषमराशिही बली होता है[1] ॥ १७ ॥

इसके अनन्तर निर्याणशूलदशा कहते हैं ।

पितृलाभप्रथमप्राण्यादिशूलदशानिर्याणे ॥ १८ ॥

लग्न और सप्तम इन दोनोंमें जो कि प्रथम बली होवे उससे आरम्भ करके जब कि लग्न सप्तमसंबन्धी उसी बली राशिसे प्रथम पंचम नवम राशिकी दशा आवे तब मृत्यु होता है । इस निर्याण-शूलदशामें प्रत्येक राशिके नौ २ वर्ष ग्रहण करने चाहियें ॥ १८ ॥

इसके अनन्तर पिताकी निर्याणशूलदशा कहते हैं ।

पितृलाभपुत्रः प्राण्यादिः पितुः ॥ १९ ॥

लग्नसे और सप्तमसे जो कि नवम राशि है उन दोनों नवम राशियोंमें जो कि बलवान् होवे उससे आरम्भ करके जब कि लग्न-सप्तमके बली नवम राशिसे प्रथम पंचम नवम राशिकी दशा आवे तब पिताका मृत्यु होता है ॥ १९ ॥

इसके अनन्तर माताकी निर्याणशूलदशा कहते हैं ।

आदर्शादिर्मातुः ॥ २० ॥

लग्नसे और सप्तमसे जो कि चतुर्थ राशि है उन दोनोंमें जो कि

न्यता प्राप्त हुई अर्थात् पूर्ण बल रहा और आकारकी संख्या एक है इससे पाका-रका एक अर्थ लेनेसे दुर्बलता एकगुणी रही अर्थात् अर्द्ध बल रहा और रकारकी संख्या दो है इससे रकारकी दो संख्या लेनेसे दुर्बलता दोगुणी रही अर्थात् बलकी शून्यता रही ॥

१ कोई आचार्य इस सूत्रका यह अर्थ करते हैं कि विषमराशिमें चतुर्थ बल है सो यह अर्थ योग्य नहीं क्योंकि ग्रंथकारका ऐसा अभिप्राय होता तौ "चतुर्थः पुरुषे" ऐसा सूत्र होता तस्प्रत्यय न होता । यदि कहो कि चतुर्थ बल कौनसा है इस शंकाके दूर करनेको "इति चत्वारः" ऐसा आगे कहेंगे । यदि कहो कि फिर वह बल यह ही क्यों नहीं कहा ? तहां जानना कि चतुर्थ बलका इस समय उप-योग नहीं इससे उपयोगी बल कहकर कुछ दशाओंको दिखाय आगे कहेंगे ॥

बली होवे उससे आरम्भ करके जब कि लग्न सप्तमके बली चतुर्थ राशिसे प्रथम पंचम नवम राशिकी दशा आवे तब माताका मृत्यु होता है ॥ २० ॥

इसके अनन्तर भ्राताकी निर्याणशूलदशा कहते हैं।

कर्मादिर्भ्रातुः ॥ २१ ॥

लग्नसे और सप्तमसे जो कि तृतीय राशि है उन दोनों तृतीय राशियोंमें जो कि बली होवे उससे आरम्भ करके जब कि लग्न सप्तमसे बली तृतीय राशिसे प्रथम पंचम नवम राशिकी दशा आवे तब भ्राताका मृत्यु होता है ॥ २१ ॥

इसके अनन्तर भगिनी पुत्र इन दोनोंकी निर्याणशूलदशा कहते हैं।

मात्रादिर्भगिनिपुत्रयोः ॥ २२ ॥

लग्नसे और सप्तमसे जो कि पंचम राशि है उन दोनों पंचम राशियोंमें जो कि बली होवे उससे आरम्भ करके जब कि लग्न सप्तमके बली पंचम राशिसे प्रथम पंचम नवम राशिकी दशा आवे तब बहिनी और पुत्र इन दोनोंका मरण होता है ॥ २२ ॥

इसके अनन्तर ज्येष्ठ भ्राताकी निर्याणशूलदशा कहते हैं।

व्यायादिर्ज्यैष्ठस्य ॥ २३ ॥

लग्नसे और सप्तमसे जो कि एकादश राशि है उन दोनों एकादश राशियोंमें जो कि बली होवे उससे आरम्भ करके जब कि लग्न सप्तमके बली एकादश राशिसे प्रथम पंचम नवम राशिकी दशा आवे तब बडे भ्राताका मरण होता है ॥ २३ ॥

इसके अनन्तर पितृवर्गकी निर्याणशूलदशा कहते हैं।

पितृवत्पितृवर्गः ॥ २४ ॥

लग्नसे और सप्तमसे जो कि नवम राशि है उन दोनों नवम राशियोंमें जो कि बली है उससे आरम्भ करके जब कि लग्न सप्तमके बली नवमराशिसे १।५। राशिकी दशा आवे तब पितृ-

वर्ग नाम पितृव्यादिकोंका मरण होता है। इस निर्याणशूलदशामें सब जगह प्रत्येक राशिके नौ २ ही वर्ष होते हैं ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर ब्रह्मदशा कहते हैं।

ब्रह्मादिपुरुषे समा दासांताः ॥ २५ ॥

जन्मलग्न विषम होवे तो जिस राशिमें ब्रह्मग्रह स्थित होवे उससे आरम्भ करके ब्रह्मदशा प्रवृत्त होवे है। ब्रह्मदशामें प्रत्येक राशिके वर्ष वे होते हैं जो कि राशिसे अपने छठे स्थानके स्वामी-तक संख्या है। भाव यह है कि अपनेसे जितनी संख्यापर अपने छठे स्थानका स्वामी स्थित हो उतने वर्ष राशिके ब्रह्मदशामें होते हैं[1] ॥ २५ ॥

स्थानव्यतिकरः ॥ २६ ॥

यदि जन्मलग्न विषम होवे तो जिस राशिपर ब्रह्मग्रह स्थित होवे उससे आरम्भ करके क्रमसे अन्य राशियोंकी दशा होवे है और यदि जन्मलग्न सम होवे तो जिस राशिपर ब्रह्मग्रह स्थित होवे उससे जो कि सप्तम राशि है उसकी प्रथम दशा तत्पश्चात् उलटे क्रमसे अन्य राशियोंकी दशा होवे है। भाव यह है कि लग्न विषम होवे तो ब्रह्माश्रित राशिसे क्रमानुसार और सम लग्न होवे तो ब्राह्मसप्तमराशिसे व्युत्क्रमानुसार दशा लाई जावे ॥ २६ ॥

इसके अनन्तर चतुर्थ बल कहते हैं।

पापदृग्योगस्तुंगादिग्रहयोगः ॥ २७ ॥

पापग्रहोंकी दृष्टि और योग राशिका बल होता है और अपने उच्च तथा मूल त्रिकोण तथा स्वराशि तथा अतिमित्रराशि तथा

---

१ शंका–दासशब्दकरके षष्ठराशिके स्वामीका कैसे ग्रहण किया है? क्योंकि कटपयादि संख्याद्वारा दासशब्द षष्ठकाही वाचक है। समाधान--षष्ठराशि-पर्यन्तही सब राशियोंके वर्ष लानेमें बहत्तरि वर्षसे ऊपर वर्ष नहीं आसकते इससे दासान्तशब्दका षष्ठस्वामिपर्यन्त ऐसा अर्थ योग्य है। शंका–यदि कहो कि समस्त राशियोंके वर्ष लानेमें ब्रह्माश्रित राशिसेही गणना होवे है ऐसा अर्थ इस सूत्रका होना चाहिये। समाधान--यदि ऐसा सूत्रार्थ होता तो "पुरुषे ब्रह्मादिसमा दासान्ताः" इस प्रकार सूत्र होता ॥

मित्रराशि इनपर स्थित हुए शुभग्रहका योगभी राशिका बल होता है[1] ॥ २७ ॥

इसके अनन्तर प्रथमाध्यायमें वर्ष लानेमात्र कही हुई चरदशामें क्रमव्युत्क्रम भेद कहते हैं ।

पंचमे पदक्रमात्प्राक्प्रत्यक्त्वम् ॥ २८ ॥

मेषराशिसे तीन २ राशियोंका एक २ पद होता है इस प्रकार बारह राशियोंके चार पद होते हैं । प्रथम मेषादि विषम पद, द्वितीय कर्कादि सम पद, तृतीय तुलादि विषम पद, चतुर्थ मकरादि सम पद है । यदि लग्नसे नवम स्थानमें विषपदसम्बधी राशि होवे तो क्रमसे दशा रक्खे और यदि लग्नसे नवम स्थानमें सम पद सम्बन्धी राशि होवे तौ उलटे क्रमसे दशा रक्खे; चरदशामें दशाके आरम्भका अवधि लग्नही है चरदशा वर्ष तो "नाथान्ताः समाः प्रायेण" इस सूत्रद्वारा पहिले कह आये हैं । क्रमव्युत्क्रमभेद नहीं कहा था सो अब कह दिया ॥ २८ ॥

चरदशायामत्र शुभः केतुः ॥ २९ ॥

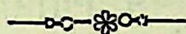
इस चरदशामें केतु शुभग्रह माना जाता है अर्थात् केतु शुभ फलदायक होता है ॥ २९ ॥

इति श्रीजैमिनीयसूत्रद्वितीयाध्याये नीलकंठीयतिलकानुसृतभाषाटीकायां श्रीपाठकमंगलसेनात्मजकाशिरामकृतायां तृतीयपादः समाप्तः ॥३॥

---

१ शंका–तुङ्गादि और ग्रहयोग इन दोनोंका विभाग करके जो कि पंथोने तुङ्गादि बल और ग्रहयोगबल पृथक् ग्रहण किया है सो यह पंथवचन योग्य नहीं क्योंकि 'पापदृग्योग०" इस सूत्रद्वारा जो कि पापयोगबल कहा सो 'ग्रहयोगः" इसी पदसेही उस अर्थका तौ लाभ होनेसे पापदृक् इस शब्दके अगार योगशब्दका प्रयोग करना व्यर्थ हो जायगा । तिससे यह भाव हुआ कि पापग्रह कहीं भी स्थित हो उनके योगमें राशिका बल होता है और शुभग्रह जब कि उच्चादिमें स्थित होगे तब उनके योगमें राशिका बल होवेगा इस प्रकार चार कारकयोग हैं तीन तौ पहिले कह दिये यह एक चतुर्थ है ॥

अथ चतुर्थपादः ।



द्वितीयं भावबलं चरनवांशे ॥ १ ॥

चरराशिकी नवांशदशामें द्वितीयभावबल फलादेशके लिये ग्रहण करना चाहिये । भाव यह है कि " स्वामिगुरुज्ञदृग्योगो द्वितीयः " इस सूत्रमें जो कि द्वितीयराशिबल कहा है वह चरराशिकी नवांशदशामें फल कहनेके लिये ग्रहण करने योग्य है ॥ १ ॥

इसके अनन्तर द्वारराशि और बाह्यराशि इन दोनोंको दिखाते हैं ।

दशाश्रयो द्वारम् ॥ २ ॥

जिस कालमें जिस राशिकी चरस्थिरनामसे दशा होवे वह दशाश्रय राशिद्वार कहाता है और उसीको पाकराशिभी कहते हैं ॥ २ ॥

ततस्तावतिथं बाह्यम् ॥ ३ ॥

लग्नसे जितनी संख्यापर द्वारराशि होवे उस द्वारराशिसे उतनीही संख्यापर बाह्यराशि होता है उस बाह्यराशिको भोगराशिभी कहते हैं ॥ ३ ॥

---

१ जन्मकालमें जिस राशिसे प्रथमकी दशाका प्रारंभ होता है, वह राशिही लग्नशब्दसे यहां ग्रहण करना चाहिये या तो जन्मलग्नही हो वा सप्तमराशि हो अथवा ब्रह्मग्रहाश्रित राशि हो इनमेंसे जहां जिसका योग होवे वही दशा आरंभकी राशि पापराशिका अवधि होता है न कि केवल प्रसिद्ध लग्नही और यदि जन्मलग्न ही पाकराशिका अवधि माना जायेगा तो "स एव भोगराशिश्च पर्याये प्रथमे स्मृतः । " यह वाक्य नहीं लगेगा क्योंकि जहां सप्तमसे वा ब्रह्माश्रित राशिसे दशाकी प्रवृत्ति है तहां पाकभोगराशि नहीं हो सकेंगे और वृद्धोंने पाकभोगराशि समस्त दशाओंमें कहे हैं । " चरस्थिरद्विस्वभावेष्वोजेषु प्राक् क्रमो मतः । तेष्वेव त्रिषु युग्मेषु प्राहं व्युत्क्रमतोऽखिलम् ॥ एवमुल्लिखितो राशिः पाकराशिरिति स्मृतः । स एव भोगराशिश्च पर्याये प्रथमे स्मृतः ॥ लग्नाद्यावतिथः पाकः पर्याये यत्र दृश्यते । तस्मात्तावतिथो भोगः पर्याये तत्र गृह्यताम् ॥ तदिदं चरपर्यायस्थिरपर्याययोर्द्वयोः । त्रिकोणाख्यदशायां च पाकभोगप्रकल्पनम् ॥ " अर्थ—केंद्रदशामें यदि चर स्थिर द्विस्वभाव राशि विषमपदमें होवें तो क्रमसे

इसके अनन्तर द्वारबाह्यराशियोंका फल कहते हैं ।

तयोः पापे बंधयोगादिः ॥ ४ ॥

यदि उन द्वारबाह्यराशियोंपर पाप ग्रह विद्यमान होवें तौ द्वारबाह्यराशियोंकी दशामें बन्धनादि क्लेश होता है ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर उस उक्त दोषका अपवाद कहते हैं ।

स्वर्क्षेऽस्य तस्मिन्नोपजीवस्य ॥ ५ ॥

उस पापग्रहयुक्त द्वारराशि अथवा बाह्यराशिमें अपने राशिपर उस पापग्रहकी बृहस्पतिके समीप स्थिति होवे तौ बन्धनादि क्लेश नहीं होता है । भाव यह है कि द्वारराशि अथवा बाह्यराशिमें स्थित हुआ पाप ग्रह अपने राशिमें बृहस्पतिके साथ संयुक्त होवे तो उक्त दोष नहीं होता है ॥ ५ ॥

भग्रहयोगोक्तं सर्वमस्मिन् ॥ ६ ॥

इस कहे हुए द्वारराशिमें अथवा बाह्यराशिमें राशि ग्रह दोनोंसे प्राप्त हुए योगोंका समस्त शुभ अशुभ फल जानने योग्य है । भाव यह है कि राशि और ग्रह इन दोनोंसे उत्पन्न हुए जो योग हैं उनमें जो कि शुभ अशुभ फल कहा है वही फल द्वारराशि और बाह्यराशिमें जानना चाहिये ॥ ६ ॥

इसके अनन्तर केंद्रदशाके आरम्भस्थानको दिखाते हैं ।

पितृलाभप्राणितोऽयम् ॥ ७ ॥

लग्न और सप्तम राशिमें जो कि राशि बली होवे उस राशिको आरम्भ करके केन्द्रदशा प्रवृत्त होवे है[२] ॥ ७ ॥

लिखे हुए राशि और चर स्थिर द्विस्वभाव राशि समपदमें होवें तौ उलटे रीतिसे लिखे हुए राशिपाक और भोग नामसे होते हैं । लग्नसे जितनी संख्यापर पाकराशि होवे उतनी संख्यापर पाकराशिसे भोगराशि होता है । पाकराशि और भोगराशि चर दशा और स्थिरदशा दोनोंमें होते हैं तथा त्रिकोण नाम दशामेंभी पाकभोग कल्पना होती है ॥

१ इसमें वृद्धवाक्यभी प्रमाण है । "पाके भोगे च पापाढ्ये देहपीडा मनोव्यथा । " ॥

२ इसमें वृद्धवचनभी प्रमाण है । " बलिनः शुक्रशशिनोः केन्द्राख्या तु दशां

इसके अनन्तर केन्द्रदशाके क्रमभेदोंको कहते हैं ।

प्रथमे प्राक्प्रत्यक्त्वम् ॥ ८ ॥

यदि लग्नसप्तमसंबंधी बलवान् राशि चरसंज्ञक होवे तौ अनुज्झित मार्ग कर केंद्रदशाक्रम होता है तिसमेंभी यदि लग्नसप्तमसंबन्धी बलवान् चर राशि विषम पदमें होवे तौ प्रथम द्वितीय तृतीयादिक्रमसे केंद्रदशाका आरम्भ होता है ॥ ८ ॥

द्वितीय रवितः ॥ ९ ॥

यदि लग्नसप्तमसंबंधी बलवान् राशि स्थिरसंज्ञक होवे तो विषम समपद भेदसे छठे २ राशिके क्रमकर केंद्रदशाप्रवृत्ति जाननी । भाव यह है कि लग्नसप्तमसंबन्धी बलवान् स्थिर राशि विषम पदमें होवे तौ सीधे क्रमसे छठा फिर उससे छठा राशि इस क्रमसे केंद्रदशाप्रवृत्ति होवे है और यदि लग्नसप्तमसंबन्धी बलवान् स्थिर राशि समपदमें होवे तौ उलटे मार्गसे छटे २ राशिकी केंद्रदशा होवे है ॥ ९ ॥

पृथक्क्रमेण तृतीये चतुष्टयादि ॥ १० ॥

यदि लग्नसप्तमसंबन्धी बलवान् राशि द्विस्वभावसंज्ञक होवे तौ विषमसमभेदसे चतुर्थादि केंद्रसे पृथक् क्रमकरके अर्थात् लग्न पञ्चम नवमादिसे केंद्रदशा प्रवृत्त होवे है । भाव यह है कि लग्नसप्तमसंबन्धी बलवान् द्विस्वभाव राशि विषमपदमें स्थित होवे तो प्रथम तो उसकी फिर सीधे क्रमसे पंचम पणफरकी, फिर उससे पश्चात् नवम आपोक्लिमकी तदनन्तर चतुर्थ केन्द्रकी तदनन्तर चतुर्थकेंद्रसे पञ्चम फणपरकी पश्चात् नवम पणफरकी तदनन्तर सप्तम केंद्रकी फिर सप्तम केंद्रसे पंचम पणफरकी, फिर नवम आपोक्लिमकी तदनन्तर दशम केंद्रकी पश्चात् दशम केंद्रसे पंचम पणफरकी, फिर

नयेत् । पुरुषश्चेत्ततो नेया स्त्री चेद्दर्पणतो नयेत् ॥ " अर्थ-यदि पुरुष जातकवान् होवे तौ लग्न सप्तममें जो कि बली है उससे केंद्रदशा लावे और यदि स्त्री जातकवती होवे तौ केवल सप्तमसेही केन्द्रदशा लावे ॥

नवम आपोक्लिमकी दशाप्रवृत्ति होवे है और यदि लग्नसप्तमसंबन्धी बलवान् द्विस्वभाव राशि समपदमें होवे तौ प्रथम उसीके फिर उलटी रीतिसे पंचम पणफरकी फिर नवम आपोक्लिमकी इत्यादि रीतिसे केंद्रदशाप्रवृत्ति होवे है। इस केंद्रदशामें प्रत्येक राशिके नौ २ ही वर्ष ग्रहण करने चाहिये[2] ॥ १० ॥

इसके अनन्तर कारककेंद्रादिदशा कहते हैं।

स्वकेंद्रस्थाद्याः स्वामिनो नवांशानाम् ॥ ११ ॥

आत्मकारकसे केंद्र पणफर आपोक्लिम इन स्थानोंमें क्रमसे स्थित हुए राशि नवांशदशाओंके स्वामी होते हैं। भाव यह है कि आत्मकारकके प्रथम केंद्रस्थित फिर पणफरस्थित फिर आपोक्लिमस्थित जो कि राशि हैं वह क्रमसे नवांशदशाके वर्षोंके स्वामी होतेहैं परन्तु तिसमेंभी सबसे अधिक बली राशि प्रथमका फिर उससे कम बलवाला द्वितीयका फिर उससे कम बलवाला तृतीयका इस रीतिसे सर्व दुर्बल पर्यंत जानने चाहिये। जैसे केंद्रमें चार राशि स्थित होवे हैं उनमें जो कि अधिक बली है वह प्रथमका और उससे अल्पबल वाला द्वितीयका इत्यादि रीतिसेही पणफर आपोक्लिमस्थ राशियोंका विभाग करना चाहिये[1]। अथवा आत्मकारकसे केंद्र पणफर आपोक्लिम

---

१ इन तीनों सूत्रोंका फलितार्थ वृद्धोंनेभी स्पष्ट किया है। "चरेऽनु‍ज्झतमार्गः स्यात्पष्ठषष्ठादिकाः स्थिरे। उभये कंटका ज्ञेया लग्नपंचमभाग्यतः ॥ चरस्थिरद्विस्वभावेष्वोजेषु प्राक्क्रमो मतः। तेष्वेव त्रिषु युग्मेषु ग्राह्यं व्युत्क्रमतोऽखिलम् ॥" अर्थ-चरमें आरम्भसे द्वितीयादि वा द्वादशादि क्रमसे स्थिरमें आरम्भसे क्रम व्युत्क्रम भेदकर षष्ठषष्ठादि क्रमसे और द्विस्वभावमें आरम्भसे क्रमव्युत्क्रम भेदकर लग्न पंचम नवम क्रमसे चारों केंद्रोंकी दशा जाननी। चर स्थिर द्विस्वभाव थे विषम पदमें होवें तौ क्रमसे और सम पदमें होवे तौ व्युत्क्रमसे गिने ॥

२ यहां वृद्धवचन विशेष है। "प्रतिभं नव वर्षाणि कारकाश्रयराशितः। जन्म संपद्विपत् क्षेमः प्रत्यरिः साधको वधः ॥ मैत्रं परममैत्रं चेत्येवमंतर्दशां नयेत्।" अर्थ-जिस राशिपर आत्मकारक स्थित होवे उस राशिसे आरम्भ करके प्रत्येक राशिके नौ २ वर्ष होते हैं उन नौ वर्षोंके मध्य प्रत्येक वर्षके जन्म, संपत, विपत, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध इन नामोंसे अन्तर्दशा होवे है ॥

इन स्थानोंमें स्थित हुए ग्रह नवग्रहोंके दिये हुए वर्षोंके स्वामी होते हैं । भाव यह है कि आत्मकारकसे प्रथम केन्द्रस्थित फिर पणफरस्थित फिर आपोक्लिमस्थित इन ग्रहोंकी क्रमसे दशा होवे हैं परन्तु उन ग्रहोंके वर्ष वही होते हैं जो कि " स तल्लाभयोरावर्त्तते " इस सूत्रद्वारा कहे हैं । केंद्रस्थित ग्रहोंमेंभी प्रथम बलीकी फिर उससे कम बलीकी इत्यादि रीतिसे दशा जाननी चाहिये[1] ॥ ११ ॥

इसके अनन्तर अन्य केन्द्रदशा कहते हैं ।

पितृचतुष्टयवैषम्यबलाश्रयः स्थितः ॥ १२ ॥

लग्नादि चारों केंद्रोंमें जो कि सबसे अधिक बलयुक्त राशि है वह प्रथम केंद्रदशाप्रद निश्चित किया है । भाव यह है कि केंद्रस्थित राशियोंमें जो कि अधिक बली है प्रथम उस राशिकी फिर अल्पबलकेन्द्रस्थ राशिकी दशा होवे है इसी प्रकार पणफर आपोक्लिम स्थित राशियोंकी दशा होवे है । इस केन्द्रदशामें प्रत्येक राशिके नव २ वर्ष दशावर्ष होते हैं ॥ १२ ॥

इसके अनन्तर कारकादिदशाके वर्ष बनानेका विधान कहते हैं ।

स तल्लाभयोरावर्तते ॥ १३ ॥

सो आत्मकारक लग्न और सप्तम इनके विषे वर्तता है । भाव यह है कि लग्न और सप्तमसे विषम समपदसे अनुसार क्रम व्युत्क्रमसे आत्मकारकपर्यंत गिने लग्न सप्तम दोनोंके बीच जिससे आत्मकारकपर्यन्त गिननेसे राशिसंख्या अधिक आवे वही संख्या आत्मकारकके कारककेन्द्रादिदशामें वर्ष जाने और अन्य ग्रहोंके मध्य ग्रहसे आत्मकारकपर्यन्त विषमसमपदके अनुसार क्रमव्युत्क्रम रीतिसे गिननेसे जितनी संख्या आवे वही वर्ष उस ग्रहके कारकेन्द्रादिदशामें होते हैं परन्तु जो कि ग्रह आत्मकारकके साथ युक्त

---

१ यह अर्थभी सूत्रकारको संमत है क्योंकि सूत्रका यह अर्थ न किया जावेगा तो " स तल्लाभयोरावर्त्तते " यह सूत्र व्यर्थ हो जावेगा ॥

होवे उसके दशावर्ष आत्मकारकके वर्षोंके बराबर होते हैं ॥ १३ ॥

इसके अनन्तर फल कहते हैं।

स्वामिबलफलानि च प्राग्वत् ॥ १४ ॥

दशाके स्वामी जो कि राशि और ग्रह हैं उनके बल और फल पूर्वोक्त शास्त्रवत् जानना चाहिये ॥ १४ ॥

इसके अनन्तर मंडूकदशा कहते हैं।

स्थूलादर्शवैषम्याश्रयो मंडूकस्त्रिकूटः ॥१५॥

लग्न और सप्तम इन दोनोंमें जो कि राशि बलवान् हो उससे आरम्भ करके मण्डूकदशा प्रवृत्त होवे है। प्रथमदशा केन्द्रस्थ राशियोंकी पश्चात् पणफरस्थ राशियोंकी फिर आपोक्लिमस्थ राशियोंकी होवे है। तिसमेंभी केन्द्रस्थ पणफरस्थ आपोक्लिमस्थोंमें प्रथम दशा अधिक बलीकी फिर उससे न्यून बलीकी इत्यादि क्रमसे दशाप्रवृत्ति होवे है और यदि पुरुष जातकवान् होवे तो लग्न सप्तममें जो अधिक बली हो उससे मडूकदशा प्रवृत्त होवे है और यदि स्त्री जातकवती होवे तो बलयुक्त सप्तम राशिसेही मण्डूकदशा प्रवृत्त होवे है[2] ॥ १५ ॥

---

१ इस ग्रहदशाके बनानेमें वृद्धवाक्य प्रमाण है। "लग्नात्कारकपर्यन्तं सप्तमाद्वा दशां नयेत्। उभयोरधिका संख्या कारकस्य दशासमाः ॥ तद्युक्तानां च तत्तुल्यं प्रत्येकं स्युर्दशाः क्रमात्। ग्रहाः कारकपर्यन्तं संख्यान्यस्य दशा भवेत् ॥ कारकस्तद्युतश्चादौ तत्केन्द्रादिस्थितास्ततः। दशाक्रमेण विज्ञेयाः शुभाशुभफलप्रदाः॥" अर्थ लग्न वा सप्तम दोनोंमेंसे विषमसम पदानुसार जिससे कारकपर्यन्त संख्या अधिक आवे वही वर्ष दशामें कारकके होते हैं। जो कि ग्रहकारके साथ युक्त होवे उस ग्रहके वर्ष कारकपर्यन्त गिननेसे संख्या होवे है। जहां कारक स्थित होवे उसको केन्द्र मानकर प्रथम केन्द्रस्थ बलियोंकी दशा होवे है तत्पश्चात् अल्पबलियोंकी इसी प्रकार पणफरआपोक्लिमस्थोंकी दशा जाने ॥

२ इसमें वृद्धवचनभी है। "बलिनः शुक्रशशिनोर्ज्ञेया मंडूकदा दशा। पुरुषश्चेत्ततो नेया स्त्री चेद्दर्पणतो नयेत् ॥" अर्थ-लग्न सप्तम इनके मध्य जो कि बली होवे उससे यदि पुरुष जातकवान् होवे तौ मंडूकदशा प्रवृत्त होवे है और स्त्री

इसके अनन्तर फल कहनेके लिये शूलदशा कहते हैं।

निर्याणलाभादिशूलदशाफले ॥ १६ ॥

मरणकारक राशिसे जो कि सप्तम राशि है उससे आरम्भ करके शुभाशुभ फल कहनेके निमित्त शूलदशा प्रवृत्त होवे है। यह शूलदशा अनेक प्रकारकी होवे है क्योंकि रुद्रशूल और रुद्राश्रय राशि और महेश्वराश्रय और मारकराशि ये सब मरणकारक स्थानही हैं। यहां शूलदशामें प्रत्येक राशिके नव २ वर्ष ग्रहण करना चाहिये ॥ १६ ॥

इसके अनन्तर जिन दशाओंमें कि कोई विशेष विधान नहीं ऐसी समस्त साधारण दशाओंके आरम्भमें तथा वर्ष लानेमें कुछ विशेष कहते हैं।

पुरुषे समाः सामान्यतः ॥ १७ ॥

जिन दशाओंमें कि विशेष विधान नहीं उन समस्त दशाओंमें यदि आरम्भ राशि विषम होवे तौ विषम सम पदानुसार क्रमव्युत्क्रम रीतिसे उसी आरम्भराशिसे दशाप्रवृत्ति होवे है और सामान्यसे प्रत्येक राशिके नव २ वर्ष होते हैं और यदि आरम्भ राशि सम होवे तो उस आरम्भ राशिसे जो कि सप्तम राशि है उससे आरम्भ करके विषम सम पदानुसार क्रमव्युत्क्रम रीतिसे दशाप्रवृति होवे है[1]। कोई आचार्य इस सूत्रकी यह व्याख्या करते हैं कि यदि पुरुष जातकवान् होवे तो आरम्भराशिसेही दशा प्रवृत्त होवे है और यदि स्त्री जातकवती होय तो आरम्भराशिसेही जो कि सप्तम राशि है उससे दशा प्रवृत्त होवे है[2] ॥ १७ ॥

जातकवती होवे तौ बलवान् सप्तमसेही मंडूकदशा प्रवृत्त होवे है। मण्डूकदशामें प्रत्येक राशिके नव २ वर्ष ग्रहण करने चाहिये। चर स्थिर द्विस्वभावरूप त्रिकूटघटित होनेसे अथवा केन्द्रादि त्रिसमुदायघटित होनेसे इस दशाका त्रिकूट नाम है॥

१ इसमेंभी वृद्धवचन है। ' ओजे लग्नं तदेव स्याद्युग्मे तत्सप्तमं भवेत्। दशाजक्रमतो ज्ञेया युग्मे व्युत्क्रमतो मता॥ '' अर्थ–विषमराशिमें लग्न होवे तौ उसीसे और सम राशिमें लग्न होवे तौ उसमें सप्तम राशिसे क्रमव्युत्क्रमरीतिसे दशा होवे है ॥

२ इसमेंभी वृद्धवचन है। '' पुरुषश्चेत्ततो नेया स्त्री चेद्दर्पणतो नयेत्। '' ॥

इसके अनन्तर नक्षत्रदशा कहते हैं।

सिद्धा उडुदाये ॥ १८ ॥

विंशोत्तरी अष्टोत्तरी आदिक रूप नक्षत्रायुर्दायमें जातकान्तरप्रसिद्ध वर्ष ग्रहण करने चाहिये[1] ॥ १८ ॥

इसके अनन्तर योगार्द्ध दशा कहते हैं।

जगत्तस्थुषोरर्द्धं योगार्द्धं ॥ १९ ॥

प्रत्येक राशिके आये हुए चरदशावर्ष और स्थिरदशावर्षको जोडकर आधा करे जो वर्ष आवें वही वर्ष योगार्द्धदशाके होते हैं। भाव यह है कि चरदशामें जिस राशिके जितने वर्ष होवें और जितने वर्ष स्थिरदशामें होवें उन दोनोंको जोड लेवे फिर आधा करे जो वर्ष होवे वे ही उस राशिके योगार्द्धदशामें होते हैं ॥ १९ ॥

---

१ अथ विंशोत्तरीदशाधन अन्यजातकसे लिखते हैं। "कृत्तिकामवधिं कृत्वा भरण्यवधि गण्यते। नवभिस्तु हरेद्भागं शेषं सूर्यादिका दशा॥ षडादित्ये दश चंद्रे सप्त वर्षाणि भूमिजे। अष्टादश तथा राहौ षोडश च बृहस्पतौ॥ एकोनः विंशतिर्मंदे बुधे सप्तदशैव च। सप्त वर्षाणि केतौ च विंशतिर्भार्गवे तथा॥ विंशोः त्तरीदशा ज्ञेया भोगवर्षाणि निश्चितम्।" अर्थ—कृत्तिकासे लेकर जन्मनक्षत्रतक गिने संख्यामें ९ का भाग देवे एक बचे तौ सूर्य, दो बचे तौ चंद्रमा, तीन बचे तौ मंगल, चार बचे तौ राहु, पांच बचे तो बृहस्पति, छः बचे तौ शनैश्चर, सात बचे तौ बुध, आठ बचे तौ केतु, शून्य बचे तौ शुक्रकी प्रथम विंशोत्तरी दशा होवे है। सूर्यके ६ वर्ष, चंद्रमाके १० वर्ष, मंगलके ७ वर्ष राहुके १८ वर्ष, बृहस्पतिके १६ वर्ष, शनैश्चरके १९ वर्ष, बुधके १७ वर्ष, केतुके ७ वर्ष १ शुक्रके २० वर्ष विंशोत्तरीदशामें होवे हैं। यदि स्पष्ट परमायुः १२० वर्षकी होवे तौ यह कहे हुए वर्षही सूर्यादि ग्रहोंके होते हैं और यदि स्पष्ट परमायुः १२० वर्षसे कम आवे तौ त्रैराशिकरीतिसे प्रत्येक ग्रहके दशावर्षभी स्पष्ट करे। जैसे स्पष्ट परमायुको सूर्यादिकोंको कहे हुए वर्षोंसे गुणे १२० का भाग देवे जो लब्ध मिले वह सूर्यादिकोंके स्पष्ट परमायुमें स्पष्ट वर्षादि होते हैं। परमायुके स्पष्ट करनेकी रीतिभी अन्य जातकसे लिखते हैं। "जन्मर्क्षयातघटिका वेदघ्ना रामभाजिताः। लब्धमब्धार्कतः शोध्यं शेषमायुः स्फुटं भवेत्॥" अर्थ—जन्मनक्षत्रके स्पष्ट घटिका जितने व्यतीत हुए हो उनको ४ से गुणाकर ३ का भाग देवे जो लब्ध आवे उनको १२० मेंसे घटा देवे जो शेष रहें वही स्पष्ट परमायु होवे है। अन्य अष्टोत्तरी आदिकोंका विवरण विस्तारभयसे नहीं लिखा है॥

इसके अनन्तर योगार्द्धदशाके आरम्भराशिको कहते हैं ।

स्थूलादर्शवैषम्याश्रयमेतत् ॥ २० ॥

लग्न और सप्तम दोनोंमेंसे जो कि बली होवे उसके आश्रय यह योगार्द्धदशा होवे है। भाव यह है कि यदि लग्न सप्तमसे जो बली होवे उससे विषम सम पदानुसार क्रमव्युत्क्रमरीतिसे योगार्द्धदशा प्रवृत्त होवे है । यदि स्त्री जातकवती होवे तौ बलवान् सप्तमसेही और पुरुष जातकवान् होवे तौ लग्न सप्तम दोनोंमें बलीसे योगार्द्धदशाका आरम्भ होता है[1] ॥ २० ॥

इसके अनन्तर दृग्दशा कहते हैं ॥ ।

कुजादित्रिकूटपदक्रमेण दृग्दशा ॥ २१ ॥

लग्नसे नवमादि त्रिकूटपद क्रमकरके दृग्दशा होवे है । भाव यह है कि लग्नसे जो कि नवम राशि है प्रथम उसकी फिर वह राशि
है कि लग्नसे जो कि नवम राशि है प्रथम उसकी फिर वह राशि
जिन राशियोंको दृष्टिचक्रमें देखता हो उनकी क्रमानुसार दशा होती
जिन राशियोंको दृष्टिचक्रमें देखताहों उनकी क्रमानुसार होवेहै फिर लग्नसे एकादशराशिकी फिर एकादशराशि दृष्टिचक्रमें जिन राशियोंको देखता है उनकी क्रमानुसार दशा होवे है । लग्नसे नवम दशम एकादश राशियोंकी दृग्दशा होवे है । नवम दृग्दशा, दशम दृग्दशा, एकादश दृग्दशा यह फलितार्थ है[2] ॥ २१ ॥

---

१ ऐसा वृद्धोंनेभी कहा है । "बलिनस्तु दशा नेया राहोर्हि शशिशुक्रयोः । स्त्री चेद्दर्पणतो नेया पुरुषश्चेत्ततो नयेत् ।

२ लग्नसे प्रथम नवम राशिकी दृग्दशाकी फिर दृष्टिचक्रमें नवमका जो कि सप्तम राशि है उसकी फिर नवमसे कहीं क्रमसे और कहीं व्युत्क्रमसे पंचम राशिकी फिर नवमसे कहीं क्रमसे कहीं व्युत्क्रमसे एकादशराशिकी दशा होवे है । फिर लग्नसे दशम एकादश राशियोंकी इसी प्रकार दृग्दशा जाननी । शंका-नवम दशम एकादश इनसे प्रथम संमुख राशि कैसे कही क्योंकि प्रमाण न होनेसे हम प्रथम पंचम राशिका ग्रहण कर सक्ते हैं । समाधान-"अभिपश्यंत्यृक्षाणि पार्श्वभे च" दृष्टिविषयमें प्रथम सब राशि अपने सम्मुख राशियोंको देखते हैं पश्चात् पार्श्वराशियोंको देखते हैं ऐसा इन सूत्रोंका अभिप्राय होनेसे प्रथम पंचम राशि नहीं ग्रहण की है ॥

मातृधर्मयोः सामान्यं विपरीतमोजकूटयोः ॥२२॥

यथा सामान्यं युग्मे ॥ २३ ॥

पंचम एकादश इन दोनोंका क्रम विषम पदमें तौ विपरीत है और सम पदमें यथार्थ है । वृष वृश्चिक विषमपदी हैं इससे विपरीत रीतिसे पंचम एकादश ये दोनों दृष्टियोग्य हैं और सिंह कुम्भ समपदी हैं इससे विपरीत रीतिसे पंचम एकादश ये दोनों दृष्टियोग्य होते हैं । द्विस्वभावराशिमें पंचम एकादश दृष्टियोग्य हैं नहीं तहां यह क्रम है कि लग्नसे नवम, दशम, एकादश इन स्थानोंमें द्विस्वभाव राशि होवे तौ प्रथम उन्हींकी फिर उनसे सप्तमकी फिर यदि द्विस्वभाव राशि विषम होवे तौ क्रमसे चतुर्थ दशमकी और यदि सम होवे तौ उलटे रीतिसे चतुर्थ दशमकी दशा होवे है । भाव यह है कि लग्नसे नवमादि स्थानोंमें चर राशि होवे तौ क्रमसे पंचम नवम इन राशियोंकी दृग्दशा होवे है और लग्नसे नवमादि स्थानोंमें स्थिर राशि होवे तौ उलटे रीतिसे पंचम एकादश इन राशियोंकी दृग्दशा होवे है और तिसी प्रकार पार्श्वराशिदशाक्रम जानना और लग्नसे नवमादि स्थानोंमें द्विस्वभाव राशि होवे तौ प्रथम नवमादिककीही दशा होवे है फिर सप्तमकी फिर यदि द्विस्वभाव विषम होवे तौ क्रमसे चतुर्थकी फिर दशमकी दशा होवे है और यदि द्विस्वभाव सम होवे तौ उलटे क्रमसे चतुर्थकी फिर दशमकी दशा होवे है । इस दृग्दशामेंभी प्रत्येक राशिके नव २ वर्ष ग्रहण कर्त्तव्य[1] ॥ २२ ॥ २३ ॥

इसके अनन्तर त्रिकोणदशा कहते हैं ।

पितृमातृधर्मप्राण्यादिस्त्रिकोणे ॥ २४ ॥

---

१ यदि लग्नसे नवममें चर राशि होवे तौ प्रथम तौ उसी नवमकी फिर नवमसे जो कि अष्टम पंचम नवम राशि हैं उनकी क्रमसे दशा होवे और यदि स्थिर राशि होव तौ प्रथम तौ उसी नवमकी फिर नवमसे उलटे क्रमसे षष्ठ, पंचम, नवम इन राशियोकी दशा होवे है और यदि द्विस्वभाव राशि होवे तौ प्रथम तौ उसी नवमकी फिर द्विस्वभाव राशि विषम होवे तौ क्रमसे सप्तम चतुर्थ दशमकी और सम होवे तौ उलटे क्रमसे सप्तम चतुर्थ दशमकी दशा होवे है । इसी प्रकार लग्नसे दशम एकादश इन स्थानोंकी दशा जाने । यह स्पष्ट भावार्थ है ॥

लग्नपंचम नवम इन राशियोंमें जो कि बली होवे उससे त्रिकोणदशाका आरम्भ होवे है। आरम्भराशिसे लेकर क्रमसे और व्युत्क्रमसे द्वादशराशियोंकी दशा होवे है। भाव यह है कि यदि पुरुष जातकवान् होवे तौ स्त्री आरम्भराशिसे लेकर क्रमसे द्वादश राशियोंकी दशा होवे है और स्त्री जातकवती होवे तौ आरम्भराशिसे लेकर उलटे क्रमसे द्वादश राशियोंकी दशा होवे है। त्रिकोणदशाके वर्ष चरदशाके समान जानने[1] ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर त्रिकोणदशाका फल कहते हैं।

तत्र बाह्याभ्यां तद्वत् ॥ २५ ॥

त्रिकोणदशामें द्वारबाह्यराशियोंकी कल्पना कर पूर्वोक्त दशाओंके समानही फल जाने[2] ॥ २५ ॥

घासगौरिकात्पत्नीकरात्कारकैः फलादेशः ॥ २६ ॥

सप्तम तृतीय प्रथम नवम इन स्थानोंसे तत्तत्कारकोंद्वारा फलादेश कर्त्तव्य है। भाव यह है कि सप्तमसे स्त्रीविचार तृतीयसे छोटे भ्राताका और आत्मकारकसे अपना और नवमसे पिता और धर्मका विचार कर्त्तव्य है ॥ २६ ॥

इसके अनन्तर नक्षत्रदशा कहते हैं।

तारकांशे मंदाद्यो दशेशः ॥ २७ ॥

---

१ इसमें वृद्धवचन प्रमाण है। "लग्नत्रिकोणयो राशिर्बलवानुक्तहेतुभिः। तदारभ्योन्नयेच्छ्रीमच्चरपर्यायवद्दशा ॥ युग्मराशिभुवां पुंसामोजं गृह्णीत सम्मुखम्। ओजराशिभुवां स्त्रीणां युग्मं गृह्णीत संमुखम् ॥ ओजराशिभुवां पुंसां गृह्णीयादोजमेव तु। युग्मराशिभुवां स्त्रीणां युग्ममेव समाश्रयेत् ॥ क्रमोत्क्रमाभ्या गणयेदोजयुग्मेषु राशिषु ॥" अर्थ–लग्न पंचम नवम इन राशियोंमें बली राशिसे त्रिकोणदशाका आरम्भ होता है परन्तु त्रिकोणदशाके वर्ष "राथान्ताः" इस सूत्रकी कही रीतिके अनुसार जाने इसीसे यह दशा चरदशासमान कही है। यदि पुरुष जातकवान् होवे तौ आरम्भदशासे लेकर क्रमसे द्वादश राशियोंकी दशा होवे है और क्रमसेही प्रत्येक राशिके वर्ष राशिसे स्वामी पर्यन्त गिननेसे होते हैं और यदि स्त्री जातकवती होवे तो उलटे क्रमसे द्वादश राशियोंकी दशा होवे है और उलटे क्रमसेही राशिसे स्वामीपर्यन्त गिननेसे वर्ष होते हैं ॥

२ ऐसा वृद्धोंनेभी कहा है। "तदिदं चरपर्यायस्थिरपर्याययोर्द्वयोः॥त्रिकोणदशायां च पाकभोगप्रकल्पनम्॥"इसका अर्थ सुगमहै और पहिले लिखभी आयेहैं॥

जन्मदिन जो कि चन्द्रमाका नक्षत्र है उसके समस्त घटिका जितने होवे उनके बारह विभाग करे प्रथम भागसे लेकर बारहों विभागोंमें क्रमसे लग्नादि द्वादश राशि होवे हैं। जिस विभागमें जन्म होवे उस विभागकी जितनी संख्या होवे उस संख्यातक लग्नसे लेकर गिने जो कि राशि आवे उससे लेकर यदि पुरुष जातकवान् होवे तो क्रमसे और स्त्री जातकवती होवे तौ उलटे क्रमसे द्वादश राशियोंकी नक्षत्रदशा होवे है। नक्षत्रदशामेंभी प्रत्येक राशिके नव ॥ २ ॥ वर्ष होते हैं ॥ २७ ॥

तस्मिन्नुच्चे नोचे वा श्रीमंतः ॥ २८ ॥

नक्षत्रलग्नका स्वामी यदि उच्चमें अथवा नीच राशिमें होवे तौ उत्पन्न हुए नर लक्ष्मीवान् होते हैं। भाव यह है कि जन्मनक्षत्रके समस्त घटिकाओंके बारह खण्ड करनेसे जिस खण्डमें जन्म होवे उसकी संख्याको लग्नसे आरम्भ करके गिने जहां समाप्त होवे उस राशिको नक्षत्रलग्न कहते हैं। यदि नक्षत्र लग्नका स्वामी उच्च अथवा नीच होवे तौ मनुष्य लक्ष्मीवान् होता है ॥ २८ ॥

स्वमित्रभे किंचित् ॥ २९ ॥

यदि नक्षत्रलग्नका स्वामी अपने मित्रगृहमें स्थित होवे तौ कुछ थोडी लक्ष्मीवाला होता है ॥ २९ ॥

दुर्गतोऽपरथा ॥ ३० ॥

यदि[१] नक्षत्रलग्नका स्वामी शत्रुराशिमें स्थित होवे तौ दरिद्र होता है[१] ॥ ३० ॥

---

१ ऐसा वृद्धोंनेभी कहा है। "जन्मतारे द्वादशधा विभक्ते यत्र चन्द्रमाः। लग्नात्तावतिथे राशौ न्यसेदाद्यदशाधिपम् ॥ स यद्युच्चेऽथ वा नीचे तदा स्याद्राजसेवकः। स्वमित्रर्क्षे सुखी शत्रुराशौ निःस्वः समे समः ॥" अर्थ-जन्मनक्षत्रघटिकाओंके बारह विभाग करे जिस विभागमें जन्म होवे उसकी जितनी संख्या हो वह संख्या लग्नसे लेकर जिस राशिपर समाप्त होवे उसकी प्रथम दशा होवे है। यदि उस राशिका स्वामी उच्च वा नीच राशिमें होवे तौ राजसेवक होता है और मित्रराशिपर होवे तौ सुखी होता है और यदि शत्रुराशिमें स्थित होवे तौ निर्धन होता है और यदि सम राशिपर होवे तौ सम होता है॥

स्ववैषम्ये यथा संक्रमव्युत्क्रमौ ॥ ३१ ॥

आत्मकारककी विषमता होवे तौ राशिस्वभावानुसारही क्रम व्युत्क्रम जानने । भाव यह है कि आत्मकारक यदि विषमपद और विषम राशिमेंही स्थित होवे तो अन्तर्दशाका भोग क्रमानुसार होता है और यदि आत्मकारक विषम पदमें सम राशिमें स्थित होवे तो अन्तर्दशाका भोग उलटे क्रमसे होता है ॥ ३१ ॥

साम्ये विपरीतम् ॥ ३२ ॥

आत्मकारककी समता होवे तौ क्रमके स्थानमें व्युत्क्रम और व्युत्क्रमके स्थानमें क्रम होता है । भाव यह है कि आत्मकारक सम पदमें सम राशिपर स्थित होवे तो अन्तर्दशाका भोग क्रमानुसार होता है और आत्मकारक सम पदमें विषम राशिपर स्थित होवे तो अन्तर्दशाका भोग उलटे क्रमसे होता है ॥ ३२ ॥

शनौ चेत्येके ॥ ३३ ॥

जिस प्रकार कि आत्मकारकमें विषम सम पदके भेदसे क्रम व्युत्क्रम और व्युत्क्रम क्रम ये होते हैं तिसी प्रकार शनैश्वरके विषें होते हैं ऐसा कोई आचार्य कहते हैं । भाव यह है कि शनैश्वर विषम पद और विषम राशिमें स्थित होवे तो क्रम और यदि शनैश्वर विषम पदमें सम राशिपर स्थित होवे तौ व्युत्क्रम होता है और यदि शनैश्वर समपदमें सम राशिपर स्थित होवे तो क्रम और समपदमें विषम राशिपर होवे तो व्युत्क्रम होता है ॥ ३३ ॥

अंतर्भुक्त्यंशयोरेतत् ॥ ३४ ॥

आत्मकारककी अन्तर्दशामें और उपदशामेंही यह रीति जाननी नं कि अन्य जगह ॥ ३४ ॥

इसके अनन्तर दशाफलविशेष कहते हैं।

शुभा दशा शुभयुते धाम्न्युच्चे वा ॥ ३५ ॥

जो कि राशि शुभ ग्रहसे युक्त होवे अथवा उच्च ग्रहये युक्त होवे अथवा जिसका स्वामी उच्च राशिमें होवे तो उस राशिकी दशा शुभ होवे है ॥ ३५ ॥

अन्यथान्यथा ॥ ३६ ॥

और जो कि राशि न शुभ ग्रहसे न मित्र ग्रहसे न उच्च ग्रहसे युक्त होवे तौ उस राशिकी दशा सम होवे है और जो कि राशि नीचादि ग्रहोंसे युक्त होवे उसकी दशा अशुभ होवे है ॥ ३६ ॥

सिद्धमन्यत् ॥ ३७ ॥

जो कि विषय इस ग्रन्थमें नहीं कहा है और अन्य शास्त्रमें प्रसिद्ध है वह अन्य शास्त्रसेही लेना चाहिये ॥ ३७ ॥

इति श्रीजैमिनीयसूत्रद्वितीयाध्याये श्रीनीलकंठीयतिलकानुसृतभाषाटीकायां श्रीपाठकमंगलसेनात्मजकाशिरामकृतायां चतुर्थपादः समाप्तः ॥ ४ ॥

श्रीमन्मंगलसेनसूनुप्रवरश्रीकाशिरामो ह्यभू-
द्भाषा जैमिनिसूत्रके विरचिता तेनर्त्तुबाणांकको ॥
संवच्चाश्विनमासि पर्वणि तिथौ चंद्रक्षये विद्दिने
विद्वद्भिः खलु दृश्यतां शुभदशा संशोध्यतां यत्त्रुटिः ॥ १ ॥
दोहा—जिला मुरादाबादके अन्तर्गत ढाढोलि।
वैजोई थाना निकट, काशिराम कुलमौलि ॥ १ ॥
तिन रचि जैमिनिसूत्रपर, नीलकंठ अनुसार।
भाषा गंगाविष्णुके, अर्पण कियो सुधार ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

अथ राजजनिताभ्यां योगे योगे लेयान्मेषाधिपः॥ १॥ उच्चनीचस्वांशवती तादृशदृष्टिश्च शुभमातृदृष्टे यदि महाराजः ॥२॥ लेयलाभयोः परकाले ॥३॥ लाभलेयाभ्यां स्थानगः ॥ ४ ॥ तत्र शुक्रचंद्रयोर्यानवंतः ॥ ५ ॥ तत्र शनिकेतुभ्यां गजतुरगाधीशः ॥ ६ ॥ शुक्रकुजकेतुषु स्वभाग्यदारेषु स्थितेषु राजानः ॥ ७ ॥ पितृलाभधनप्राणयोश्च ॥ ८ ॥ पत्नीलाभयोः समानकालः ॥ ९ ॥ भाग्यदारयोर्ग्रहयुक्तसमानेषु सांप्रतः ॥ १० ॥ तत्र उच्चे करसंख्या राज्ञां च॥ ११ ॥ पितृधर्मयोर्लेयलाभयोर्गुरो चंद्रशुभदृग्योगे मंडलांतः ॥ १२ ॥ तत्र बुधगुरुदृग्योगे युवजो वा ॥ १३ ॥ तस्मिन्नुच्चे नीचे पितृलाभयोश्रीमंतः ॥ १४ ॥ स्वभावनाथाभ्यां शुक्रचन्द्रदृग्योगयोः ॥ १५ ॥ तत्र शुभवर्गेषु श्रीमंतः ॥ १६ ॥ हारशूलयोश्चंद्रगुरौ ॥ १७ ॥ शूले चंद्रे रिःफगुरौ घनेषु शुभेषु राजानः ॥ १८ ॥ पत्नीलाभयोश्च ॥ १९ ॥ एवमंशतो दृक्काणतश्च ॥२०॥ लेयलाभश्चंद्रे गुरौ शुभदृग्योगे महांतः ॥२१॥ लाभचंद्रेऽपि ॥२३॥ पापयोगाभावे शुभदृग्योगिनि च ॥ २३ ॥ अत्र शुभदृग्योगे राजप्रेष्यः ॥ २४ ॥ शुभवर्जेषु त्रिकोणकेंद्रे वा ॥ २५ ॥ स्वांशयोगे राजवंशः ॥ २६ ॥ उच्चांशे तादृशदृष्टिश्च

राजराजा वंश्यो वा ॥ २७॥ अशुभदृग्योगान्न चेन्न चेन्न ॥२८॥ पंचमांशपदेऽपि समेषु शुभेषु राजानो वा ॥२९॥ स्वलेयमेषाभ्यां राजचिह्नानि ॥ ३० ॥ इत्युपदेशसूत्रे तृतीये प्रथमः पादः

यज्ञजनेशाभ्यां स्वकारकाभ्यां निधनम् ॥ १ ॥ निधनं लेयलाभयोः प्राणिनाम् ॥ २ ॥ गुरौ केंद्रे मंदाः राभ्यां दृष्टे शनिभोगहेतौ कक्ष्यापवादः ॥ ३ ॥ रिपुरोगयोश्चंद्रे ॥ ४ ॥ स्वभावगैश्च ॥ ५ ॥ रोगतुंगयोर्वा ॥ ६ ॥ तत्र शनौ प्रथमम् ॥ ७ ॥ राहोर्द्वितीयम् ॥ ८ ॥ केतोस्तृतीयं निधनम् ॥ ९ ॥ तन्नु त्रिकोणेषु ॥ १० ॥ चरे प्रथमम् ॥ ११ ॥ स्थिरे मध्यमम् ॥१२॥ द्वंद्वेऽन्त्यम् ॥१३॥ एवं चरस्थिरद्वंद्वचराभ्याम् ॥१४॥ स्वपितृचन्द्राः ॥१५॥ तत्र शनिकक्ष्याह्रासः ॥१६॥ रिपुषष्ठाष्टमयोश्च ॥ १७॥ प्रथममध्यमयोरंत्यमध्यमयोर्वा ॥ १८ ॥ शुभदृग्योगान्न ॥ १९ ॥ पितृलाभेशयोरस्यैव योगे वा ॥ २० ॥ अप्रसंगवादात्प्रामाण्यं रोगयोः प्राणिसौरदृष्टियोगाभ्याम् ॥ २१ ॥ द्वारबाह्ययोरपवादः ॥२२॥ द्वारे चंद्रदृग्योगान्न ॥२३॥ केवलशुभसंबंधे बाह्ये च ॥ २४ ॥ लेयरोगक्रूराश्रयेऽपि ॥२५॥ रोगर्क्षत्रिकोणदशाब्दे ॥ २६ ॥ रोगनवांशदशाभ्यां निधनम् ॥२७॥ तत्रापि शनियोगे ॥२८॥ मिश्रे शुभयोगान्न ॥ २९ ॥ लग्नेंद्रोर्भावे स्वलाभयोर्भावयोः

क्रूर रुद्राश्रयेऽपि ॥३०॥ नवापपादानि ॥३१॥ इनशुक्राभ्यां रोगयोः प्रामाण्य निधनम् ॥३२॥ महेश्वरब्रह्मयोराद्यन्तयोः ॥ ३३ ॥ चरनवांशदशायां निधनम् ॥ ३४ ॥ चित्तनाथाभ्यां रिपुरोगचित्तकर्मणि ॥ ३५ ॥ क्रूरग्रहेषु सद्योरिष्टम् ॥३७॥ शनिराहुचंद्रयोगे सद्योरिष्टम्॥३७॥ कोणाश्रयेषु सद्योरिष्टम्॥३८॥ सर्वमेवं पापग्रहेषु च ॥३९॥ केवलरिपुरोगचित्तनाथाभ्याम् ॥४०॥ तत्रापि चित्तनाथापहारे ॥ ४१ ॥ इत्युपदेशसूत्रे तृतीये द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

लेयलाभयोः पदम् ॥ १ ॥ पदभावयोश्वरे ॥ २ ॥ क्रांतराशौ कर्मणि दुष्टं मरणं कर्मणि पापे राजाभ्यां यथा सबुधे ॥ ३ ॥ दिने दिने पुण्यम् ॥ ४ ॥ तत्र कर्मादि ॥ ५ ॥ तत्र कर्मादि ॥ ६ ॥ चराचरयोर्विपरीतकाले ॥७॥ ततः कोशे ॥ ८ ॥ पत्नीदृष्टमात्रगुरुयुक्ते ॥९॥ पापदृग्योगे ॥१०॥ पाषाणमरणे ॥ ११ ॥ अत्र केतुयुक्ते ॥ १२ ॥ दोषेण हननम् ॥ १३ ॥ केतौ पापदृष्टौ वा ॥१४॥ अत्र शुभयोगे ॥१५॥ मलिनभावे क्रांतराशौ कर्मणि दुष्टं मरणम् ॥ १६ ॥ क्रूराश्रये सर्वः शूलादि ॥ १७ ॥ राहुदृष्टौ निश्चयेन ॥ १८ ॥ राहुशनिभ्यां दुष्टबलादि ॥ १९ ॥ तत्र प्रतिबंधः ॥ २० ॥ कुजकेतुभ्यां नित्यं च ॥ २१ ॥ वाशीयोग्यफूलदं (?) ॥ २२ ॥ मृत्युरोगाभ्यां राहुचन्द्राभ्यां यथास्वं मृत्युः

॥ २३ ॥ अत्र भावकरादि ॥२४॥ तुरगवृषवर्गे ॥२५॥ अत्र कुजास्फोटकादिकुंडलधरश्च ॥२६॥ रत्नाकरयोग ॥ २७ ॥ कालदंडान्मरणम् ॥ २८ ॥ शेषा भुजंगादि ॥ २९ ॥ कीटवृषवृश्चिकांशे ॥ ३० ॥ रोगमातृदृष्ट्यो- र्भावे मूषकादिमृतिः ॥ ३१ ॥ तत्र मंदे ॥ ३२ ॥ विष- पानादि ॥३३॥ सौम्यदृग्योगाभ्यां मंडूकभेदादि ॥३५॥ स्वांशग्राह्याद्वर्णनामभिः ॥ ३५ ॥ लेयान्मृत्युः ॥ ३६ ॥ चले मृत्युः ॥ ३७ ॥ भाग्ये दंडात् ॥ ३८ ॥ कर्मे वि- षभक्षात् ॥ ३९ ॥ दारे ज्वरभयम् ॥ ४० ॥ माता श- त्रुहतः ॥ ४१ ॥ शनौ रिपुभयम् ॥ ४२ ॥ लाभे कुष्ठ- रोगः ॥ ४३ ॥ विषूचीजलरोगादि देहे ॥ ४४ ॥ धने खड्गादौ ॥४५॥ नित्यदुर्मरणम् ॥ ४६ ॥ तत्र रवियोगे रिपुशस्त्राग्निभयम् ॥४७॥ चंद्रेण कूपे ॥ ४८ ॥ कुजेन व्रणस्फोटादि ॥ ४९ ॥ बुधेन वृक्षेपर्वतादयः ॥ ५० ॥ गुरुणा स्ववैषम्येऽरौ पावकः ॥ ५१ ॥ शुक्रेण शुक्रमेहात् ॥ ५२ ॥ शनिना विषभक्षणादि ॥ ५३ ॥ राहुकेतुभ्यां विषसर्पलोष्टबंधनादिभिः ॥ ५४ ॥ शनिराहुभ्यां राहुणा दडादि ॥ ५५ ॥ तत्र गुरुराहुभ्यामभिचारदि ॥ ५६ ॥ तत्र गुरुशनिभ्यां दृष्टे यथा स्वनाशः ॥ ५७ ॥ स्वत्रिं- शांशे कौलकाफलरोगादि ॥ ५८ ॥ ललाटं प्रथमम् ॥ ५९ ॥ केशं द्वितीयः ॥ ६० ॥ बधिरं तृतीयः ॥ ६१ ॥ चतुर्थो नेत्रे ॥ ६२ ॥ सिंहादौ पंचमे ॥ ६३ ॥ षष्ठं जि-

ह्वाग्रे ॥६४॥ पूर्वषट्के राहुकेतुभ्यां स्वजिह्वादि ॥६५॥ तत्र शनिमांदिभ्यां गलद्वादि ॥ ६६ ॥ तत्र कुजे शोषः ॥ ६७ ॥ लाभांशे मरणम् ॥ ६८ ॥ तत्र रवौ प्रतिबंधः ॥६९॥ कौंतायुधधनौ रोगे ॥७०॥ सायकैर्धनम् ॥७१॥ अशनिहतकाये ॥७२॥ मार्गे मार्गे रिपूणां वैरिवर्गश्च स्ववैषम्ये रिपुः ॥७३॥ *राश्रयबले रिपुहतः ॥७४॥ शन्यारफणिवर्गाद्यैः ॥ ७५ ॥ भावेशाक्रांतराशिस्थः ॥ ७६ ॥ रवियुक्तदृष्टे प्राथमिकः ॥ ७७ ॥ तत्र चंद्रान्निश्चयेनाकुजेन ज्ञातिभ्यः ॥ ७८ ॥ तत्र शनौ मृत्युवादाग्निकरणश्च ॥७९॥ स्वांशेऽपि ॥ ८० ॥ अन्यतरांशश्च ॥ ८१ ॥ नीचाश्रये विपरीतम् ॥ ८२ ॥ तत्र शनौ कूपे ॥ ८३ ॥ विषभक्षणादि ॥ ८४ ॥ तनुतनौ दंडहरम् ॥ ८५ ॥ तत्र भावविशेषः ॥८६॥ (?) अघशवनिधनम् ॥ ८७ ॥ मातापित्रोर्द्वितीयः ॥ ८८ ॥ ज्ञातिवर्गभ्रातादिस्तृतीयः ॥ ८९ ॥ कलत्रं चतुर्थम् ॥ ९० ॥ पुत्र पंचमम् ॥ ९१ ॥ शत्रुवर्गं षष्ठम् ॥ ९२ ॥ तत्र पापानां सन्निकृष्टम् ॥ ९३ ॥ जनने ॥ ९४ ॥ लाभे स्त्रिया विपत्तिः ॥९५॥ भावे स्वकर्मचित्तांशात्स्वांशे निधनम् ॥ ९६ ॥ स्वभूच्चात्पतनम् ॥ ९७ ॥ शूलेमृतिः॥९८॥ धनेन ज्ञानवान्मरणम् ॥ ९९ ॥ नयने ग्रहणीरोगादि ॥१००॥ शूले शत्रुमरणम् ॥ १ ॥ उच्चे ग्रहभातिः ॥ २ ॥ तत्र रविशनिभ्यामोजे कूटराशौ युग्मे निर्णयः

॥ ३ ॥ धनसुखाभ्यां पादरोगः ॥ ४ ॥ तनुविक्रमाभ्या-
मंगुलिरोगः ॥ ५ ॥ तत्र केतुना अंगहीनश्च ॥ ६ ॥ तत्र
पापदृष्टे पादहीनः ॥ ७ ॥ अथ बलानि ॥ ८ ॥ प्राणिनि
शुभयुक्ते ॥ ९ ॥ राशिबलभागे ॥ १० ॥ चरपर्यायेन
॥ ११ ॥ शुभदृष्टे पादहीनः ॥ १२ ॥ शुभदृष्टित्रिशूले
॥ १३ ॥ अंगत्रिशूले वा ॥ १४ ॥ भावकोणाभ्यां नि-
सर्गतः ॥ १५ ॥ आश्रयतो बलिष्ठः ॥ १६ ॥ यादिभ-
राशौ पितृलाभयोः ॥ १७ ॥ स्वकर्मभेदेन ॥ १८ ॥
मूर्तित्वे परिपाताभ्यां जघन्यायुषि तत्र परिपाके ॥ १९ ॥
एवं निधनं मातापित्रोः ॥ २० ॥ भूम्यंशश्च निवृत्ति-
कारकः ॥ २१ ॥ नायांतसंज्ञाः स्युः ॥ २२ ॥ कर्मस्था
चरपर्याये ॥ २३ ॥ भाग्यदारयोः स्थिरोभयोः ॥ २४ ॥
भाग्यकारकाभ्यां मंगलपदम् ॥ २५ ॥ मृत्यु मृत्युषि
॥ २६ ॥ अन्यैरन्यथा ॥ २७ ॥ भूतमन्यत् ॥ २८ ॥
इत्युपदेशे आयुर्दायापवादे तृतीये तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

पुनः पदः पदे ॥ १ ॥ उपग्रहयुक्ते श्रीमंतः ॥ २ ॥
आधानपितुर्लयमेषम् ॥ ३ ॥ सूर्यात् कर्मणि पित्रोः
॥ ४ ॥ पुनः पद उत्तरयोः ॥ ५ ॥ पदाभ्यां भृगुसौम्य
व्यतिरिक्ते ॥ ६ ॥ दिनकरे लाभयोरेनिसंज्ञाः स्युः (?)
॥ ७ ॥ प्रियानुपपत्तिः ॥ ८ ॥ तत्र पाकर्म ॥ ९ ॥ स्व-
कर्मव्याघ्रश्च ॥ १० ॥ दिनकरत्रिकोणे लाभपदे गर्भसं-
प्लवे ॥ ११ ॥ तत्र गर्भपाते ॥ १२ ॥ रविकेत्वंशे शुक्र-

शोणितौ ॥ १३ ॥ गुरुस्त्रिंशांशे ॥ १४ ॥ चंद्रदृग्योगे ॥ १५ ॥ सुकलिषुवयोः ॥ १६ ॥ शुक्ररेतौ ॥ १७ ॥ वर्णपरिपाकम् ॥ १८ ॥ यस्याधानं चंद्रदृग्योगे ॥ १९ ॥ यथा आधानपरिपाके च चंद्रबुधभृगुयोगाभ्यामाधानपरिमिते ॥ २० ॥ सुवर्णारणिसंयोगे ॥ २१ ॥ शनिचंद्राभ्यां नाभेरधः ॥ २२ ॥ गर्भवायुपरिवृन्ते ॥ २३ ॥ तत्र केतुना पुष्करस्रजा रव्यादिके त्वंतम् ॥ २४ ॥ ग्रहान्तिरेतः ॥ २५ ॥ अन्ययोनिगर्भेष्वजः ॥ २६ ॥ राहुचंद्राभ्यां वीरतमः ॥ २७ ॥ अशरीरोपपत्तिः कर्मणि पाके एवं गर्भनिर्णयम् ॥ २८ ॥ स्थानाद्यैः स्वांशगश्च ॥ २९ ॥ यथा धर्मशीले ॥ ३० ॥ स्वांशग्रहैर्नीचउच्चयोः ॥ ३१ ॥ क्रियमेपलग्नेषु ॥ ३२ ॥ अथ रविप्राणाः ॥ ३३ ॥ नैसर्गिकबलेष्वभियोगशूल इह जायते ॥ ३४ ॥ पुं पुमान् ॥ ३५ ॥ बाण इति ॥ ३६ ॥ अत्रोदाहारः ॥ ३७ ॥ केतुशनिभ्यां रक्तप्रदरः ॥ ३८ ॥ शनौ पातयोगे कृष्णवर्णः ॥ ३९ ॥ शनिशुक्राभ्यां श्यामवर्णः ॥ ४० ॥ गुरुशशिभ्यां गौरवर्णः ॥ ४१ ॥ शनिबुधाभ्यां नीलवर्णः ॥ ४२ ॥ शनिकुजाभ्यां रक्तसुवर्णः ॥ ४३ ॥ शनिचंद्राभ्यां श्वेतवर्णः ॥ ४४ ॥ स्वांशवशाद्गौरनीलादीनि ॥ ४५ ॥ तथाप्युदाहरंति ॥ ४६ ॥ रेतः सिंचन्प्रजाः प्रजनयमिति विज्ञायते ॥ ४७ ॥ चरे पापदृग्योगे पुत्रनाशः ॥ ४८ ॥ शुक्रदृग्योगे पुत्रलाभः ॥ ४९ ॥

पापशुभदृग्योगाभ्यां प्रथमवर्णक्रमेण ह्रासावृत्तिः ॥५०॥ यन्नवभागे नवांशाभ्यां संख्यावृद्धिः ॥५१॥ बीजयुगवलयोर्बिंदुपतनकाले यमलभ्यामूर्ध्वंतः शुभपापयोश्चरस्थिरयोरर्द्धं तोतादिकनेत्रविकृतोष्ठनासिकमुखकर्णकेशदंतपटलपादांगहीनकुब्जबधिरमूलांगोपांगसुशिरकेशावर्तचक्रबीजविपर्यासकुनखी वृषोन्नतबृहन्नाभिनेत्रः पार्श्वदृष्टयोरंधकुब्जवामनसत्वस्वरनीचस्वरहीनस्वरेत्यादिष्वपि पितृमात्रोर्बलानि ॥ ५२ ॥ एवमृक्षाणां बलानि ॥ ५३ ॥ स्वपितृभाग्ययोः परिपाककाले ॥ ५४ ॥ इति तृतीयाध्याये गर्भवर्णननिर्णयो नाम चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥ समाप्तश्चाध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।



पितृदिनेशयोः प्राणिदेहः ॥ १ ॥ लाभचंद्रयोः प्राणिहृदयम् ॥ २ ॥ लेयचंद्रयोः प्राणिशिरः ॥ ३ ॥ भाग्यचंद्रयोः प्राणिमुखम् ॥ ४ ॥ कामचंद्रयोः प्राणिकंठः ॥५॥ दारचंद्रयोः प्राणिबाहुः ॥६॥ मातृचंद्रयोः प्राण्युदरम् ॥ ७ ॥ ततश्चंद्रयोः प्राणिजघनम् ॥ ८ ॥ लाभचंद्रयोः प्राणिपृष्ठः ॥९॥ दिनचंद्रयोः प्राणिगुदः ॥१०॥ धनचंद्रयोः प्राणिपादौ ॥ ११॥ रिःफचंद्रयोः प्राणिनेत्रे ॥ १२ ॥ शूलचंद्रयोः कर्णयोः प्राणिकर्णौ

॥ १३ ॥ रौप्यचंद्रयोः प्राणिनासिके ॥ १४ ॥ एवं द्वादशभावानाम् ॥ १५ ॥ प्राणिबलानि ॥ १६ ॥ अप्राण्यपि पापदृष्टः ॥१७॥ प्राणिनी शुभदृष्टे ॥ १८ ॥ तत्तद्भावे जन्म सूचितम् ॥ १९ ॥ आजन्मादिर्वपुःषु ॥ २० ॥ पित्रोः प्राक्काले ॥ २१ ॥ शरमेव मातापितरौ जनयतः ॥ २२ ॥ अशोणितो क्लीबश्च ॥ २३ ॥ एवं भावविचारः ॥ २४ ॥ अंकुशाभ्यां तु ॥ २५ ॥ वर्णभेदाश्रयेण ॥ २६ ॥ जीवेंदुबुधादयः ॥ २७ ॥ ब्राह्मणश्च रविः कुजः क्षत्रः ॥ २८ ॥ शनिः शूद्रश्च ॥ २९ ॥ राहुर्दूरजातिः ॥ ३० ॥ केतुश्चांडालः ॥ ३१ ॥ वर्णभेदेन पुत्रलाभाभ्यां मृगवर्णम् ॥ ३२ ॥ आसुरत्रयं च ॥ ३३ ॥ यदि पापबाहुल्यं तत्र रमणीजालः ॥३४॥ सुखकेशानि ॥३५॥ षडानि ॥ ३६ ॥ शनिराहुकेतुजेषु वैपरीत्यम् ॥ ३७॥ तालुतेफोफस्यशेवलेमित्रावरुणबले (?) ॥ ३८ ॥ मृत्युना कैवल्यम् ॥ ३९ ॥ शृंगारे लाटः ॥ ४० ॥ प्राणपाणौ बले ॥ ४१ ॥ मृत्युविचित्ते ॥ ४२ ॥ माधुरीकन्ये ॥ ४३ ॥ मांजिष्ठे मृगे ॥ ४४ ॥ मानुषि कुरूपः ॥ ४५ ॥ मरणे माने ॥ ४६ ॥ मायामालिंगे ॥ ४७ ॥ शुभेन कर्मणि पितृनियोजयो जयेत् ॥ ४८ ॥ पापे मातरि मिश्रे भ्रातरः ॥ ४९ ॥ शुभपापमिश्रे विरूपः ॥ ५० ॥ मातुनाशोकः ॥ ५१ ॥ चंद्रागुरुदृग्कोगानिश्चयेनास्वमू-

र्तिपुरुषे कालरूपः ॥ ५२॥ तिर्यग्दृष्टौ प्रायो निर्वृत्ति-
कारकः ॥ ५३ ॥ शूलेशयोदरियोशततोघं गुरुदृष्टे च
॥ ५४ ॥ इति उपदेशे चतुर्थे प्रथमः पादः ॥ १ ॥

बलपदयोः प्राणिमारकः ॥ १ ॥ रुद्राश्रयेऽपि ॥२॥
भावेऽपि बलदृष्टांत ॥ ३ ॥ ओजयुग्मयोः प्राणिबलम्
॥ ४ ॥ अभिपश्यति भावानि ॥५॥ शुभान्यतराणि च
॥६॥ प्रत्यक्शूले नित्यविक्रमे बुधशुक्राभ्यां दंतोष्ठपट-
लपार्श्वपाः ॥७॥ करकर्णाभ्यां मृत्युचित्तयोर्विपरीतम्
॥८॥ लग्ने पित्रकभावेऽपि कामनाथयोरैक्ये यमलः॥९॥
कामनाथप्राणिनि शुभम् ॥१०॥ स्वनाथप्राणिनि च्युत-
योः॥११॥ भावयोः प्राणिनि कक्ष्याह्रासः॥१२॥ शुभ-
योगबलाच्चैवम् ॥१३॥मिश्रे समाः प्राणिहीने विपरीतम्
॥१४॥ समे नित्यम् ॥ १५ ॥ भाग्ययोर्बलम् ॥ १६ ॥
गुरुचंद्रयोर्धर्मधनैक्ये कर्मबले ॥ १७ ॥ मेषे विपरीतम्
॥ १८ ॥ ततः प्राणाः स्वपितृयोगः ॥१९॥ शुद्धः स्व-
काले ॥ २० ॥ अनुकूललेये तुंगे नीचे ॥१२॥ भावब-
लाभ्यां तु ॥२२॥ केंद्रत्रिकोणोपचयेषु राहुकुजौ जानुहा-
वीरिकेवलराहौ तत्र निधनम् ॥२३॥ भौमदृग्योगान्निश्च-
येन ॥२४॥ तत्र शनौ गुरुदृग्योगे सेतुयोग्यं स्वत्रिकोण-
राशिषु ॥२५॥ पदे चापदभावे स्वामिन इत्थम् ॥२६॥
ह्रस्वफलादिशुभर्गयुतिशेषास्त्वन्ये ॥ २७॥ मूर्तीरूपं
च ॥ २८ ॥ स्वकारकव्यतिरिक्तेषु ॥ २९ ॥ भावबले

चंद्राश्रयेऽपि ॥ ३० ॥ दारे मित्रस्वपितृभ्याम् ॥३१॥ भावशूलदृष्ट्या च ॥३२॥ पितृनाथदृष्ट्या रोगः ॥३३॥ पुत्रनाथदृष्ट्या दरिद्राः ॥३४॥ शूलनाथदृष्ट्या व्ययशालः ॥ ३५ ॥ रिपुनाथदृष्ट्या कर्म ॥ ३६ ॥ धननाथदृष्ट्या निरोगी च ॥३७॥ माननाथदृष्ट्या प्रबलः ॥३८॥ दारेक्षदृष्ट्या सुखिनः ॥ ३९ ॥ कामेशदृष्ट्या प्रध्वंसः ॥ ४० ॥ भाग्यनादृष्ट्या सुरूपः ॥ ४१ ॥ सर्वदृष्ट्या प्रबलः ॥४२॥ दारभाग्ये च ॥ ४३ ॥ वर्णपदाश्रयकोणेषु ॥ ४४ ॥ शुक्रे च ॥४५॥ कोणयोःशुभेषु मित्रप्रागपवर्गे ॥ ४६ ॥ केंद्रत्रिकोणयोः शुभे कालबलानि ॥४७॥ इत्युपदेशसूत्रे चतुर्थेऽध्याये द्वितीयः पादः॥२॥

बुधशुक्रयोर्युग्मे स्त्रीजननम् ॥ १ ॥ कालनिर्णयादि ॥२॥ अंशभेदेन लिप्तविलिप्ताः ॥ ३ ॥ कालकाः ॥४॥ अनुलिप्ताश्च ॥ ५ ॥ द्विना द्विचतुःसंख्यादि ॥६॥ नव भागशेषे ॥७॥ आद्यंशके ॥८॥ ग्रहक्रमेण वर्णम् ॥ ९ ॥ पुमान्पुंप्रजः ॥१०॥ अन्ये स्त्रियः ॥ ११ ॥ क्लीबे पूर्वापरौ ॥१२॥ एवं वर्णसंज्ञाः स्युः ॥१३॥ नीचे दारांशकः ॥ १४ ॥ आद्यादिस्ववर्णः ॥ १५ ॥ मित्रभेदाभ्यां चरपर्यायेण संज्ञाः स्युः ॥ १६ ॥ धात्वादिरूपवर्णेन ॥१७॥ स्वांशगैश्च बलः ॥१८॥ रविकुजौ रक्तौ ॥१९॥ बुधशुक्रौ श्यामौ ॥२०॥ कृष्णेतराः स्युः ॥२१॥ त्रित्रिभागे चरस्थिरोभयपर्याये ॥२२॥ घटिकाषष्टिनिर्णये

॥२३॥ अंशस्यैकस्य पंचघटिकाः ॥२४॥ एवं द्वादश पंच स्युः विघटिकादिक्रमेण ॥ २५ ॥ ओजे पुरुषः ॥ २६ ॥ युग्मे स्त्रियः ॥२७॥ ओजयुग्मयोः स्त्रीपुरुषौ ॥२८॥ यथा मातारि वर्णे॥१९॥ मात्रा प्रसवकालमुखेन ॥ ३० ॥ राह्विंदुभ्यां स्त्रीजननम् ॥ ३१ ॥ पुरुषतराः ॥ ३२ ॥ शन्याराभ्यां पुरुषः ॥ ३३ ॥ शनिबुधाभ्यां स्त्रियः ॥ ३४ ॥ शनिचंद्राभ्यां कुजः ॥ ३५ ॥ शनिशुक्राभ्यां रूपवत्या ॥ ३६॥ शनिकेत्वोर्जारिणी ॥ ३७॥ तत्र बुधांशे बहिर्जारिणी॥३८॥ चंद्रशुक्रौ कामी प्रवीणतमश्च ॥ ३९ ॥ अंशभेदेन ॥ ४० ॥ बुधशुक्राभ्यां कामी विरागतः ॥४१॥ तत्र केत्वंशे ॥ ४२॥ गोपमन्यतरः ॥४३॥ केत्वंशे बुधचंद्रदृष्टे सर्ववर्णाश्रयेषु संचरितः ॥४४॥ पापदृष्टे पुंश्चली ॥४५॥ सप्तमाष्टमयोः पापबल्ये विधवा (?) ॥४६॥ तत्राष्टमे कुजे केतुषु ॥४७॥ दृग्योगाभ्यां भर्तृहंत्री ॥ ४८ ॥ एकांशेन ॥ ४९ ॥ ओजयुग्ममार्गया ॥ ५० ॥ नीचे विपर्ययः ॥ ५१ ॥ षड्वर्गादौ सन्निपातहनने ॥ ५२ ॥ मूर्तौ रूपम् ॥५३॥ भाग्यांशगैश्चंद्रबाहुल्ये बुधशुक्राभ्यां सुमतिः ॥ ५४ ॥ तत्र केतुना केत्वंशे दुर्गंधी ॥ ५५ ॥ रविदृष्टे दंतवक्री ॥ ५६ ॥ कुजदृष्टे क्रोधकरी ॥ ५७ ॥ इतरग्रहदृग्योगः ॥ ५८ ॥ सौम्यश्च ॥ ५९ ॥ पापे पापबाहुल्या ॥६०॥ शुभे गुणवती ॥ ६१ ॥ मिश्रे समाः ॥ ६२ ॥ एवम्-

ष्टमः सप्तमार्द्धहारितः ॥ ६३ ॥ त्रिकोणत्रिषडायेषु ॥ ६४ ॥ नीचे विपर्ययः ॥ ६५ ॥ दिनभाग्ययोरानुकूल्ये ॥ ६६ ॥ शुभेतरमिश्रतरौ च ॥ ६७ ॥ चक्षुर्वर्णभेदेन नित्याश्च ॥ ६८ ॥ यत्ने अंशकतः ॥ ६९ ॥ राज्ये नीचे ॥ ७० ॥ धने कामी ॥७१॥ धर्मे मोक्षी ॥७२॥ धने पापी ॥ ७३ ॥ तत्र रव्यंशे बालविधवा ॥ ७४ ॥ रवित्रिकोणेषु च ॥ ७५ ॥ चंद्रे कामिनी ॥ ७६ ॥ चंद्रत्रिकोणेषु च कुजकुरूपिक्रोधी ॥ ७७ ॥ कुजत्रिकोणेषु च ॥ ७८ ॥ बुधे वंध्या ॥ ७९ ॥ बुधे त्रिकोणेषु चागुरो पतिभक्तिपरायणी ॥ ८० ॥ गुरुत्रिकोणेषु च ॥ ८१ ॥ शुक्रे सर्वसौभाग्यकारिणी ॥ ८२ ॥ शुक्रत्रिकोणेषु च ॥ ८३ ॥ शनौ कामिनी च पुरुषः ॥ ८४ ॥ शनित्रिकोणेषु च ॥ ८५ ॥ राहुसर्वकर्मात्मकेषु राहुत्रिकोणेषु च ॥ ८६ ॥ केतौ चंडाली तत्समानवर्ती ॥ ८७ ॥ तत्त्रिकोणेषु च ॥ ८८ ॥ एवं वर्णसंज्ञाः स्युः ॥ ८९ ॥ चक्षुर्हीनम् ॥ ९० ॥ वर्णात्रिंशांशे आद्यापहारे ॥ ९१ ॥ पापत्रिकोणेषु च ॥ ९२ ॥ यथास्वं नीचेषु च ॥ ९३ ॥ अंशग्रहबलानाम् ॥ ९४ ॥ रविशुक्राभ्यां प्रथमम् ॥ ९५ ॥ रविचंद्राभ्यां द्वितीयम् ॥ ९६ ॥ रविकुजाभ्यां तृतीयम् ॥ ९७ ॥ रविबुधाभ्यां चतुर्थम् ॥ ९८ ॥ रविराहुभ्यां सप्तमम् ॥ ९९ ॥ रविकेतुभ्यामष्टमम् ॥ १०० ॥ एवं सर्वे रन्ध्रभाग्ययोर्वर्जयेत् ॥ १ ॥

लाभे च तत्र लाभयोः ॥ २ ॥ शुभे न दोषः ॥ ३ ॥ शुभपापयोर्न क्वचित् ॥ ४ ॥ रंध्रापवादे सौम्यत्रिकोणे मृगवर्गादि ॥ ५ ॥ स्वत्रिंशांशः स्वनीचभवने ॥ ६ ॥ यथा मृगतौल्यादि ॥ ७ ॥ आद्यंशभेदेषु ॥ ८ ॥ राहुकेतुभ्यां प्रबंधः ॥ ९ ॥ वर्गोत्तमकाले ॥ ११० ॥ प्राणी बलानि ॥ ११ ॥ नवत्रिषडाययोरंशः ॥ १२ ॥ सप्ताष्टगुणचेष्टिताः ॥ १३ ॥ शुभागेन कर्तव्यम् ॥ १४ ॥ लक्षलक्ष्यापवादयोः ॥ १५ ॥ क्रमात्क्रूरे शुभाभ्यां च व्युत्क्रमादुभयाययोः ॥ १६ ॥ रंध्रसप्तमयोरेतत् ॥ १७ ॥ बलसचरिते ध्रुवाः ॥ १८ ॥ एतद्योगविहीनस्तु निश्चित्यः स्त्रीजातके ॥ १९ ॥ इति गुरुणाभ्यां वर्णः ॥ १२० ॥ स्वपितृवर्णश्च ॥ १२१ ॥ इत्युपदेशसूत्रे चतुर्थाध्याये तृतीयः पादः ॥ ३ ॥

गुणेषु गुणरमणी ॥ १ ॥ केंद्रत्रिकोणेषु शुभवर्गेषु ॥ २ ॥ अर्कारमंदफलयोः पुमांश्च ॥ ३ ॥ चंद्रबुधाभ्यां स्त्री च ॥ ४ ॥ दृग्योगाभ्यामपि ॥ ५ ॥ यथा निर्हरणम् ॥ ६ ॥ रोगे पापे वैधवी पापदृग्योगा निश्चयेन ॥ ७ ॥ उच्चे विलंबात् ॥ ८ ॥ नीचे क्षिप्रम् ॥ ९ ॥ मिश्रे मिश्रात् ॥ १० ॥ चंद्रकुजदृष्टौ निश्चयेन ॥ ११ ॥ आद्या आत्मजस्त्री ॥ १२ ॥ कार्ये पापे कोणे वा ॥ १३ ॥ पापदृग्योगकाले वियोनिसंज्ञायां विधित्वादिति ॥ १४ ॥ धात्वादिवर्णकाले ॥ १५ ॥

भावपरिवेधनेन ॥ १६ ॥ उच्चे स्वांशवर्गः ॥ १७ ॥ अर्धांशे पश्वादियोनिसंबंधः ॥ १८ ॥ मध्ये मृगाः ॥ १९ ॥ अंत्ये कीटकादयः ॥ २० ॥ एवमुभौ शुभलोके ॥ २१ ॥ रविशुक्राभ्यां पापपूर्वम् ॥ २२ ॥ अन्यैरन्यथा ॥ २३ ॥ अत्र शुभः केतुः ॥ २४ ॥ पापदृग्योगान्न ॥ २५ ॥ रविराहुशुक्राः ॥ २६ ॥ गुरुश्चैकेकालादृग्योगमिति ॥ २७ ॥ यथा चंद्रम् ॥ २८ ॥ तत्र गुरुवर्गे स्वाम्यंशे च ॥ २९ ॥ स्वेशभूमित्रनीचांशकश्च ॥ ३० ॥ पूर्णेंदुराह्वारांतरालाश्च ॥ ३१ ॥ शुभवर्गे शुभदृष्टियुतः ॥ ३२ ॥ अंशे मित्रभेदात् ॥ ३३ ॥ स्वानंदतुल्ये वा ॥ ३४ ॥ वर्गे नवांशश्च ॥ ३५ ॥ तत्र ज्ञानाज्ञानेषु ॥ ३६ ॥ पुत्रमणिरमणी ॥ ३७ ॥ बुधकेतुर्वा ॥ ३८ ॥ शुभचंद्राभ्याम् ॥ ३९ ॥ स्वलग्ननाथाश्च ॥ ४० ॥

इत्युपदेशसूत्रे वियोनिभेदो नाम चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः ॥ ४ ॥

इति जैमिनीयसूत्राणि समाप्तानि ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
“ लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर ” स्टीम्-प्रेस,
कल्याण-बम्बई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम्-प्रेस,
खेतवाड़ी-बम्बई.

त् लाघवो ॥





षड्वर्गफलप्रकाशः

(सारिण्यादिभिः समलङ्कृतः)

मिश्रोपाह्वपण्डितप्रवर-रामचन्द्रात्मजेन
मुकुन्दवल्लभज्यौतिषाचार्येण संकलितः

मो ती ला ल ब ना र सी दा स
दिल्ली :: वाराणसी :: पटना

षड्वर्गफलप्रकाशः

(सारिण्यादिभिः समलङ्कृतः)

मिश्रोपाह्वपण्डितप्रवर-रामचन्द्रात्मजेन मुकुन्दवल्लभज्यौतिषाचार्येण
संकलितः

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली • वाराणसी • पटना

मो ती ला ल ब ना र सी दा स
भारतीय संस्कृति साहित्य के प्रमुख प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता
मुख्य कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–७
शाखाएँ : १. चौक, वाराणसी–१ (उ० प्र०)
२. अशोक राजपथ, पटना–४ (बिहार)

प्रथम संस्करण : वाराणसी १९८१
मूल्य : रु० ८.००

श्री नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–७ द्वारा प्रकाशित तथा शिवशंकर प्रसाद, दीपक प्रेस, एस. १७/२७२ नदेसर, वाराणसी द्वारा मुद्रित।

भूमिका

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः प्राप्तिम् ।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव ॥

फलित-ज्योतिष में षड्वर्ग-कुण्डलियों के फलादेश का स्थान बहुत ऊँचा है। इन कुण्डलियों से जातक के धन, भ्राता, स्त्री, पुत्र एवं माता-पिता आदि के विषय में अच्छा प्रकाश पड़ता है। परन्तु बहुत से जन्मपत्र-निर्माता ज्योतिषी लोग जन्म-पत्रियों में षड्वर्ग की कुण्डलियों के चक्र तो बड़े सुन्दर मनमोहक बना देते हैं, परन्तु उनके सूक्ष्म चमत्कारी फलादेश लिखने में उनकी लेखनी रुक जाती है, जिससे जन्म-पत्र का महत्त्व घट जाता है; अनेकों जन्मपत्रनिर्माता ज्योतिषी यह नहीं जानते, कि अमुक ग्रह के नवांश द्वादशांशादिक षड्वर्ग में ग्रहों का पृथक्-पृथक् फलाफल क्या होता है; और फलित में नवांशादि का क्या महत्त्व है? इत्यादि समस्त गूढ़ विचार इस पुस्तक से ज्ञात होंगे। वास्तव में यह ग्रहगतिजन्य अनुभव का शास्त्र है। षड्वर्ग-कुण्डलियाँ फलित की मेरुदण्ड हैं। आधुनिक पाश्चात्त्य विद्वान् षड्वर्गचक्र न लगाकर वह ग्रहों की दृष्टियों से ही जो काम लेते हैं वही काम भारतीय दैवज्ञ षड्वर्ग कुण्डलियों से लेते हैं। जो ज्योतिषी जन्मकुण्डली के ग्रहभावों के फलादेश के साथ-साथ षड्वर्ग-कुण्डलियों के फल एवं विशेष फलों का भी विचारपूर्वक अनुसरण करते हैं, उनकी भविष्यवाणी कभी भी मिथ्या जानेवाली नहीं होवी। अपितु जन्मपत्र में लिखित-फलादेश गोली की चोट की तरह मिलेगा ही; जिसे देखकर जन्मपत्र बनानेवाले की ज्योतिषी पर अटूट श्रद्धा बढ़ेगी।

इस पुस्तक में षड्वर्ग के साधारण फलादेश के साथ विशेष चमत्कारी फ़ल भी भाषा में लिखा गया है, जन्मपत्र-निर्माताओं की सुविधा के लिए षड्वर्ग की सुन्दर सारणियाँ यथास्थान लिख दी हैं। इसके मनन एवं परिशीलन से अद्भुत फलादेश किया जा सकता है। ध्यान रहे; कि—जातक के शुद्ध-जन्मेष्ट एवं सूक्ष्म दृक्पक्षीय ग्रहस्पष्टों से जन्मलग्न व होरादि षड्वर्ग-कुण्डलियाँ बनती हैं, यदि स्थानीय जन्मेष्टकाल शुद्ध न हो या ग्रहस्पष्ट सूक्ष्म न हों तो लग्न व षड्वर्ग कुण्डलियाँ भी नितान्त—अशुद्ध होंगी। अशुद्ध-षड्वर्ग एवं जन्मलग्न के आधार पर अव्यभिचरित-फलादेश की आशा कैसे की जा सकती है? अतः स्थानीय-जन्मेष्ट एवं सूक्ष्म-ग्रह-स्पष्टों का शुद्ध होना नितान्त आवश्यक है? इस पुस्तक में आगे साधारण फलादेश

के जो श्लोक हैं उनकी टीका सरलार्थ होने से तथा वृथा ग्रंथवृद्धिभय से नहीं लिखी गई, यदि दैवज्ञों ने आग्रह किया तो आगामी संस्करण में लिख दिया जावेगा।

यह पुस्तिका मैंने चिरकालपूर्व सन् १९३२ ई० में लाहौर में छपवाई थी, जो हाथोंहाथ बिक गई थी। ज्योतिषप्रेमी सज्जनों एवं दैवज्ञवर्ग के आग्रह के परिणामस्वरूप अब पुनः इस पुस्तक का संशोधन एवं परिवर्धन करके इसे प्रस्तुत करते हुए मुझे परमहर्ष है, ज्योतिषप्रेमी सज्जनों एवं दैवज्ञों के लिए यदि यह लाभप्रद सिद्ध होगी तो मुझे इस अपने सत्प्रयास से परम सन्तोष होगा। पूर्वाचार्यों के विचारों का मनन करने के बाद अपने अनुभव से थोड़ा जो कुछ मैंने पाया है, आपके समक्ष प्रस्तुत कर दिया है, फिर भी इस पुस्तक में "भ्रान्तिर्मनुष्यधर्मः" के अनुसार यदि कहीं विषयवस्तु-सम्बन्धी किंवा मुद्रणजन्य त्रुटि रह गई हो तो विद्वज्जन सुधार कर पढ़ें तथा मुझे सूचित करके अनुगृहीत करें।

वर्गाणां गदितुं फलानि बहुधा ज्योतिर्विदग्रैः सरैः।
स्वातन्त्र्येण न केपि सन्ति रचिता ग्रन्थास्ततोऽयं बुधाः॥
प्रत्नानां वचनानि तत्तदुचितान्यालोच्य मत्या मया।
संगृह्य प्रकटीकृतोऽस्त्यभिनवो ग्रन्थः सतां प्रीतये॥

मार्तण्डभवनम्
कुराली (पंजाब)
सं० २०३७ श्रा० कृ० ५ भृगुवार
(द्वितीय संस्करण)

सतां वशंवदः
मुकुन्दवल्लभः

ॐ

श्रीगणेशाम्बावटुकेभ्यो नमः

अथ षड्वर्गफलप्रकाशः

अथ मङ्गलाचरणम्

अचिन्त्याऽव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्तजगदाधारमूर्त्तये ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

भा० टी०—जो अचिन्त्य अर्थात् चिंतन करने में नहीं आवे, अप्रकट रूप निर्गुण गुणात्मा समस्त विश्व के आधाररूप ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

अथ राश्यंशेश ज्ञान

भौमाच्छ-विच्चन्द्र रवि-ज्ञशुक्रवक्रेज्य मन्दाऽर्कसुतामरेज्याः ।
मेषाधिपानामधिपाः क्रमेण तदंशकनामपि ते भवेयुः ।

भा० टी०—मं० शु० बु० चन्द्र, सू० बु० शु० मं० बृ० श० श० बृ० यह क्रम से मेषादि राशियों के स्वामी होते हैं। तथा प्रत्येक राशि में तत्तद् राशि-संज्ञक नवांशादि राशियों के भी उक्त ग्रह ही स्वामी होते हैं।

षड्वर्ग ज्ञान

(सूत्र)—गृह होरा, द्रेष्काण, नवांश द्वादशांश, त्रिशांशाः षड्वर्गाः ।

भा० टी०—गृह १, होरा २, द्रेष्काण ३, नवांश ४, द्वादशांश ५, और त्रिशांश ६, इन छः को षड्वर्ग कहते हैं।

(सूत्र) षड्वर्गा एव सप्तमांशसहिताः सप्तवर्गाः ।

भा० टी०—उपरोक्त षड्वर्गों में सप्तमाँश मिलाने से सप्तवर्ग होते हैं।

(सूत्र) समेचन्द्रार्कयो विषमे व्यत्ययेन होरा ।

भा० टी०—सम राशि में १५ अंश तक चन्द्र और १५ अंश से ३० अंश तक सूर्य की होरा जानना। विषम राशि में इसके विपरीत अर्थात् १५ अंशतक सूर्य की और १५ से ३० अंशतक चन्द्रमा की होरा जानना।

(सूत्र) स्वेषु नवर्क्षेशा द्रेष्काणपाः ।

भा० टी०—द्रेष्काण–राशि के प्रथम द्रेष्काण से अर्थात् (० से १० अंश तक) उसी राशि का स्वामी, दूसरे द्रेष्काण (१० से २० अंशतक) में अपनी राशि से पाँचवों राशि का स्वामी, तीसरे द्रेष्काण (२० से ३० अंशतक) में अपनी राशि से नवमी राशि का स्वामी द्रेष्काण का स्वामी होता है ।

(सूत्र)—चरभेस्वस्मात्, स्थिरे नवमभात्
द्विस्वभावे पञ्चमभान्नवांशाः ।

भा० टी०—चर राशि में अपनी राशि से ही, स्थिर राशि में अपनी राशि से जो नवमी राशि हो उस को आदि लेकर द्विस्वभाव राशि में अपनी राशि से जो पाँचवी राशि हो उसको आदि लेकर नवांश के स्वामी जानना । राशि के नवमें भाग को नवांश कहते हैं । एक नवांश ३ अंश २० कला का होता है ।

(सूत्र)—स्वभात् द्वादशांशाः ।

भा० टी०—द्वादशांश के स्वामी सब राशियों में क्रम से अपनी ही राशि से जानना । एक द्वादशांश अढाई अंश का होता है ।

(सूत्र)—समे शुक्रज्ञेज्यार्किकुजानां
पञ्चाद्रयष्टशरेषवस्त्रिंशांशाः विषमेन्यथा ॥

भा० टी०—सम राशियों में शुक्र, बुध, गुरु, शनि, मंगल ५।७।८।५।५ इन अंशों के क्रम से त्रिशांश के स्वामी होते हैं ।

विषम राशियों में इसके विपरीत अर्थात् ५।५।८।७।५ इन अंशों के क्रम से मंगल, शनि, गुरु, बुध, शुक्र त्रिशांश के स्वामी जानना ।

नोट—त्रिशांश देखने में ध्यान रहे कि जिस ग्रह का त्रिशांश आवे यदि वह समराशि का हो तो अपनी दो राशियों में से समराशि का और विषम राशि का हो तो अपनी दो राशियों में से विषम राशि का त्रिशांश जानना ।

(सू०)—विषमे स्वस्मात् समे सप्तमात्सप्तमांशः ।

भा० टी०—सप्तमांश विषम राशि में अपनी राशि से ही और समराशि में अपनी राशि से जो सप्तमी राशि हो उससे गिनने से जो राशि आवे उसका स्वामी सप्तमांश का स्वामी होता हैं । एक सप्तमांश ४ अंश १७ कला का होता है ।

स्वनवांशका राशयो वर्गोत्तमाः (जा० त०)

भा० टी०—लग्न व ग्रह जिस राशि का हो उसी राशि का नवांश में भी हो तो वह वर्गोत्तम संज्ञक होता है (जो यहाँ शुभ फलप्रद माना जाता है) ।

॥ षड्वर्ग सारिणीयम् ॥

राशयः	षड्वर्ग	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	·०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	
भाग		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	·०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	भाग
अंशादि		२	३	४	५	६	७	८	१०	१२	१२	१२	१३	१५	१६	१७	१७	१८	२०	२१	२२	२३	२५	२५	२६	२७	३०	अं०
		३०	२०	१७	०	४०	३०	३४	०	०	३०	५१	२०	०	४०	८	३०	०	०	२५	३०	२०	०	४२	४०	३०	०	क०
		०	०	८	०	०	०	१७	०	०	०	२५	०	०	०	३४	०	०	०	४२	०	०	०	५१	०	०	०	वि०
० मेष	होरा	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	हो०
	द्रेष्का०	१	१	१	१	१	१	१	१	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	९	९	९	९	९	९	९	९	द्रे०
	सप्तमां०	१	१	१	२	२	२	२	३	३	३	३	४	४	४	४	५	५	५	५	६	६	६	६	७	७	७	स०
	नवमां०	१	१	२	२	२	३	३	३	४	४	४	४	५	५	६	६	६	६	७	७	७	८	८	८	९	९	न०
	द्वाद०	१	२	२	२	३	३	४	४	५	५	६	६	६	७	७	७	८	८	९	९	१०	१०	११	११	११	१२	द्वा०
	त्रिशां०	१	१	१	१	११	११	११	११	९	९	९	९	९	९	९	९	९	३	३	३	३	३	७	७	७	७	त्रि०
१ वृषभ	हो०	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	हो०
	द्रे०	२	२	२	२	२	२	२	२	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	द्रे०
	स०	८	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	२	स०
	न०	१०	१०	११	११	११	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	३	३	३	३	४	४	४	५	५	५	६	६	न०
	द्वा०	२	३	३	३	४	४	५	५	६	६	७	७	७	८	८	८	९	९	१०	१०	११	११	१२	१२	१२	१	द्वा०
	त्रिं०	२	२	२	२	६	६	६	६	६	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१०	१०	१०	१०	८	८	८	८	त्रि०
२ मिथुन	हो०	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	हो०
	द्रे०	३	३	३	३	३	३	३	३	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	११	११	११	११	११	११	११	११	द्रे०
	स०	३	३	३	४	४	४	४	५	५	५	५	६	६	६	६	७	७	७	७	८	८	८	८	९	९	९	स०
	न०	७	७	८	८	८	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	२	२	२	३	३	न०
	द्वा०	३	४	४	४	५	५	६	६	७	७	८	८	८	९	९	९	१०	१०	११	११	१२	१२	१	१	१	२	द्वा०
	त्रिं०	१	१	१	१	११	११	११	११	९	९	९	९	९	९	९	९	९	३	३	३	३	३	७	७	७	७	त्रि०

॥ षड्वर्ग सारिणीयम् ॥

राशय	षड्वर्ग	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	भाग
अंशादि		२	३	४	५	६	७	८	१०	१२	१२	१२	१३	१५	१६	१७	१७	१८	२०	२१	२२	२३	२५	२५	२६	२७	३०	अं०
		३०	२०	१७	०	४०	३०	३४	०	०	३०	५१	२०	०	४०	८	३०	०	०	२५	३०	२०	०	४२	४०	३०	०	क०
		०	०	८	०	०	०	१७	०	०	०	२५	०	०	०	३४	०	•	०	४२	०	०	०	५१	०	०	०	वि०
३ कर्क	हो०	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	हो०
	द्रे०	४	४	४	४	४	४	४	४	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	द्रे०
	स०	१०	१०	१०	११	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	२	२	३	३	३	३	४	४	४	स०
	न०	४	४	५	५	५	६	६	६	७	७	७	७	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	११	११	११	१२	१२	न०
	द्वा०	४	५	५	५	६	६	७	७	८	८	९	९	९	१०	१०	१०	११	११	१२	१२	१	१	२	२	२	३	द्वा०
	त्रि०	२	२	२	२	६	६	६	६	६	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१०	१०	१०	१०	८	८	८	८	त्रि०
४ सिंह	हो०	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	हो०
	द्रे०	५	५	५	५	५	५	५	५	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	१	१	१	१	१	१	१	१	द्रे०
	स०	५	५	५	६	६	६	६	७	७	७	७	८	८	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	११	स०
	न०	१	१	२	२	२	३	३	३	४	४	४	४	५	५	६	६	६	६	७	७	७	८	८	८	९	९	न०
	द्वा०	५	६	६	६	७	७	८	८	९	९	१०	१०	१०	११	११	११	१२	१२	१	१	२	२	३	३	३	४	द्वा०
	त्रि०	१	१	१	१	११	११	११	११	९	९	९	९	९	९	९	९	९	३	३	३	३	३	७	७	७	७	त्रि०
५ कन्या	हो०	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	हो०
	द्रे०	६	६	६	६	६	६	६	६	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	२	२	२	२	२	२	२	२	द्रे०
	स०	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	२	२	३	३	३	३	४	४	४	४	५	५	५	५	६	६	६	स०
	न०	१०	१०	११	११	११	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	३	३	३	३	४	४	४	५	५	५	६	६	न०
	द्वा०	६	७	७	७	८	८	९	९	१०	१०	११	११	११	१२	१२	१२	१	१	२	२	३	३	४	४	४	५	द्वा०
	त्रि०	२	२	२	२	६	६	६	६	६	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१०	१०	१०	१०	८	८	८	८	त्रि०

॥ षड्वर्ग सारिणीयम् ॥

भाग		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	भाग
अंशादि		२	३	४	५	६	७	८	१०	१२	१२	१२	१३	१५	१६	१७	१७	१८	२०	२१	२२	२३	२५	२५	२६	२७	३०	अं०
		३०	२०	१७	०	४०	३०	३४	०	०	३०	५१	२०	०	४०	८	३०	०	०	२५	३०	२०	०	४२	४०	३०	०	क०
राशयः	षड्वर्ग	०	०	८	०	०	०	१७	०	०	०	२५	०	०	०	३४	०	०	०	४२	०	०	०	५१	०	०	०	वि०
६	हो०	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	हो०
	द्रे०	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	११	११	११	११	११	११	११	११	३	३	३	३	३	३	३	३	द्रे०
	स०	७	७	७	८	८	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	स०
तुला	न०	७	७	८	८	८	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	२	२	२	३	३	न०
	द्वा०	७	८	८	८	९	९	१०	१०	११	११	१२	१२	१२	१	१	१	२	२	३	३	४	४	५	५	५	६	द्वा०
	त्रिं०	१	१	१	१	११	११	११	११	९	९	९	९	९	९	९	९	९	३	३	३	३	३	७	७	७	७	त्रिं०
७	हो०	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	हो०
	द्रे०	८	८	८	८	८	८	८	८	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	४	४	४	४	४	४	४	४	द्रे०
	स०	२	२	२	३	३	३	३	४	४	४	४	५	५	५	५	६	६	६	६	७	७	७	७	८	८	८	स०
वृश्चि	न०	४	४	५	५	५	६	६	६	७	७	७	७	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	११	११	११	१२	१२	न०
	द्वा०	८	९	९	९	१०	१०	११	११	१२	१२	१	१	१	२	२	२	३	३	४	४	५	५	६	६	६	७	द्वा०
	त्रिं०	२	२	२	२	६	६	६	६	६	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१०	१०	१०	१०	८	८	८	८	त्रिं०
८	हो०	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	हो०
	द्रे०	९	९	९	९	९	९	९	९	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	५	५	५	५	५	५	५	५	द्रे०
	स०	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	२	२	३	३	३	स०
धनु	न०	१	१	२	२	२	३	३	३	४	४	४	४	५	५	६	६	६	६	७	७	७	८	८	८	९	९	०
	द्वा०	९	१०	१०	१०	११	११	१२	१२	१	१	२	२	२	३	३	३	४	४	५	५	६	६	७	७	७	८	द्वा०
	त्रिं०	१	१	१	१	११	११	११	११	९	९	९	९	९	९	९	९	९	३	३	३	३	३	७	७	७	७	त्रिं०

॥ षड्वर्ग सारिणीयम् ॥

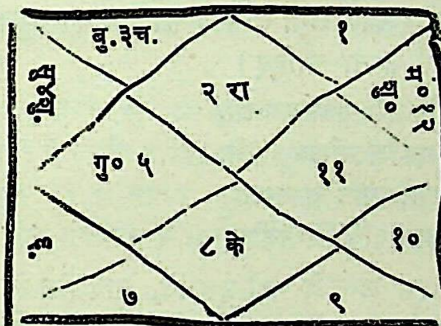
भाग		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	भाग
अंशादि		२	३	४	५	६	७	८	१०	१२	१२	१२	१३	१५	१६	१७	१७	१८	२०	२१	२२	२३	२५	२५	२६	२७	३०	अं०
राशयः	षड्वर्ग	३०	२०	१७	०	४०	३०	३४	०	०	३०	५१	२०	०	४०	८	३०	०	०	२५	३०	२०	०	४२	४०	३०	०	क०
		०	०	८	०	०	०	२७	०	०	०	२५	०	०	०	३४	०	०	०	४२	०	०	०	५१	०	०	०	वि०
	हो०	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	हो०
	द्रे०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	६	६	६	६	६	६	६	६	द्रे०
९	स०	४	४	४	५	५	५	५	६	६	६	६	७	७	७	७	८	८	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	स०
	न०	१०	१०	११	११	११	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	३	३	३	३	४	४	४	५	५	५	६	६	न०
मकर	द्वा०	१०	११	११	११	१२	१२	१	१	२	२	३	३	३	४	४	४	५	५	६	६	७	७	८	८	८	९	द्वा०
	त्रिं०	२	२	२	२	६	६	६	६	६	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१०	१०	१०	१०	८	८	८	८	त्रिं०
	हो०	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	हो०
	द्रे०	११	११	११	११	११	११	११	११	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	७	७	७	७	७	७	७	७	द्रे०
१०	स०	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	१	२	२	२	२	३	३	३	३	४	४	४	४	५	५	५	स०
	न०	७	७	८	८	८	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	१२	१२	१२	१२	१	१	१	२	२	२	३	३	न०
कुम्भ	द्वा०	११	१२	१२	१२	१	१	२	२	३	३	४	४	४	५	५	५	६	६	७	७	८	८	९	९	९	१०	द्वा०
	त्रिं०	१	१	१	१	११	११	११	११	९	९	९	९	९	९	९	९	९	३	३	३	३	३	७	७	७	७	त्रिं०
	हो०	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	हो०
	द्रे०	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	८	८	८	८	८	८	८	८	द्रे०
११	स०	६	६	६	७	७	७	७	८	८	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	१२	१२	१२	स०
	न०	४	४	५	५	५	६	६	६	७	७	७	७	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	११	११	११	१२	१२	न०
मीन	द्वा०	१२	१	१	१	२	२	३	३	४	४	५	५	५	६	६	६	७	७	८	८	९	९	१०	१०	१०	११	द्वा०
	त्रिं०	२	२	२	२	६	६	६	६	६	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१०	१०	१०	१०	८	८	८	८	त्रिं०

षड्वर्गसारणीप्रवेश

इन षड्वर्ग सारणियों में ऊपर की पंक्ति में भाग और नीचे अंशादि लिखे हैं, तथा बाईं तर्फ मेषादि राशियाँ लिखी हैं, इन सारणियों पर से जिस ग्रह तथा लग्न की षड्वर्ग राशियाँ जाननी होवें उस ग्रह वा लग्न के अंशादि सारणी ऊपर लिखे अंशादि के जिस भाग में समा जांय उस भाग की खड़ी लकीर तथा उस ग्रह वा लग्न की राशि की टेढ़ी लकीर जहां इकट्ठी मिलें उस स्थान पर लिखे अंकों के अनुसार राशियों में क्रम से होराद्रेष्काणादिक में ग्रह लिखना। यदि लग्न से देखा जाए तो उसी राशियों के होरा द्रेष्काणादिक की कुण्डलियों में लग्न लिखना।

श्री० वि० सं० १९६६ प्रथम श्रावण कृष्ण १४ भृगुवासरे श्रीमद्दिनमाणबिम्बकेन्द्राद्धोंदयात् स्पष्टीकृतमिष्टम् ५३।१३।४० सूर्यः ३।०।५३।१०, लग्नम् १।२३।४५।९,

जन्माङ्गम्



उदाहरण

मेरे पट्टशिष्य चि० हरदेव शर्मा तिवारी की जन्मपत्र में स्पष्ट लग्न १।२३।४५।९ है, उसके अंशादि २३।४५।९ हैं, यह षड्वर्ग सारणी के २२ वें भाग में समाते हैं, इसलिये २२ वें भाग की खड़ी लकीर तथा लग्न की राशि १ यानि वृषभ इसकी टेढ़ी लकीर जहां इकट्ठी होती है वहां अनुक्रम से ५।१०।१। ५।११।१० लिखा है जिससे जाना, कि होरालग्न सिंह का, द्रेष्काण मकर,

सप्तांश मेष, नवांश सिंह, द्वादशांश कुम्भ, त्रिशांश लग्न मकर का हुआ। इसी तरह ग्रहों के भी षड्वर्ग जानना।

इति श्रीमत्पण्डितप्रवर-रामचन्द्रसुतेन श्री शिवदेव्यागभंजेन पञ्चापदेशान्तर्गत कुरालीग्रामवास्तव्येन मिश्रोपाह्व श्रीपण्डित मुकुन्दवल्लभज्यौतिषाचार्येण विरचिते षडवर्गफलप्रकाशे प्रथमो गणितविभागः ॥

अथ फलविभागः

जन्मलग्न-होराद्रेष्काण-सप्तांशादि-लग्नेषु विचारणीय-तत्तत्पदार्थविशेषान्निरूपयति।

लग्ने धीरश्चिन्तयेद्देहभावं
होरा लग्नात्संपदाद्यं सुखं च।
द्रेष्काणाङ्गाद् बन्धुसौख्यं विचिन्त्यं
सप्तांशांगात् सन्ततेः स्याद्विचारः॥ १॥

भा० टी०—लग्न से बुद्धिमान् देह का सुख दुःख विचारे। होरा-लग्न से सम्पदादि विचारे। द्रेष्काण लग्न से बन्धु-भ्रातृवर्ग का सुख एवं सप्तांश लग्न से सन्तान का विचार करना चाहिए।

कलत्र-सौख्यादि-नवांशलग्नात्
विलोक्यमर्कांशकतोऽत्र पित्रोः।
त्रिशांशकाद्रिष्टफलं च वाच्यं
सर्वं विलग्नादपि चिन्तनीयम्॥ २॥

भा० टी०—नवांश लग्न से स्त्री-सुखादि, द्वादशांश से माता-पिता का सुख, त्रिशांश से अरिष्ट-कष्ट आदि का विचार करें, और जन्म लग्न से भी इन सब बातों का विचार करना चाहिए।

होराफल विचार

ओजे क्रूरेऽर्क- होरां गतवति बलवान् क्रूरवृत्तिर्धनाढ्यो
युग्मे चान्द्री शुभेषु द्युति-विनय-वचो हृद्य-सौभाग्य-युक्तः।
व्यस्तं व्यस्तेऽत्र मिश्रे समफलमुदितं लग्नचन्द्रौ बलिष्ठौ
तन्नाथौ द्वौ च तद्वद्यदि भवति चिरं जीव्य-दुःखी यशस्वी॥

भा॰ टी॰—जिसकी जन्मकुण्डली में विषम राशि में क्रूर ग्रह स्थित होकर सूर्य की होरा में हो तो वह मनुष्य वलवान, क्रूरवृत्ति एवं धनाढ्य होता है। इसके विपरीत जन्म में शुभ ग्रह समराशियों में स्थित होकर चन्द्र होरा में हो तो वह व्यक्ति नम्र, विनयशील, आनन्दी, प्रेमी, प्रतिभावान तथा भाग्यवान होता है। ऊपर जो दो परिस्थितियाँ बताई गई हैं ग्रहस्थिति उसके विपरीत हो तो विपरीत फल होता है। यदि मिली जुली परिस्थिति अर्थात् सम या विषम राशि का चन्द्रमा सूर्य की होरामें यदि शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार के ग्रह बैठे हों तो परिणाम भी मिश्र (मिला-जुला) होता है। जिसकी जन्म कुण्डली में लग्न, चन्द्रमा लग्नेश तथा चन्द्र राशीश यह चारों बली हों तो मनुष्य दीर्घायु वाला और दुःख व्याधि रहित यशस्वी होता है।

विशेष फल

जातक की धन सम्पत्ति जानने के लिये होरा लग्न देखना आवश्यक है। होरा लग्न सिंह राशि का हो और सूर्य उसी में स्थित हो तो वह व्यक्ति रजोगुणी उच्चपदाभिलाषी होता है। होरालग्न में सूर्य के साथ गुरु और शुक्र बैठे हों तो जातक धनी, मानी, शासक-नेता होता है। साधारणतया जन्म में सूर्य की होरा हो तो जातक को बाल्यावस्था में सुख की न्यूनता रहे और आगे अपने ही परिश्रम एवं बुद्धिबल से जातक धनी होता हैं। चन्द्र की होरा में जन्म हो तो जातक बाल्यावस्था में सुखी तथा युवावस्था में विदेशवास भी होता है।

होरेश जन्म कुण्डली में केन्द्रगत होकर शुभदृष्ट्युत हो तो जातक सुख-सम्पत्ति से युक्त होता है। यदि होरेश जन्म कुण्डली में अशुभ स्थानस्थ होकर अशुभग्रह–दृष्ट व युत हो तो जातक सुख सम्पत्ति से हीन या दुःखी रहता है तथा परम्परागत कुल मर्यादा के विरुद्ध कार्य करनेवाला नीच प्रकृतिवाला व्यक्ति होता है।

यदि चन्द्रमा की राशि होरा लग्न में हो और चन्द्रमा भी उसमें स्थित हो तो जातक शान्त-प्रकृति, मातृ-भक्त (सेवक), लज्जाशील, बाग-बगीचे या कृषिकर्म में रुचि रखनेवाला, अल्पलाभ में भी सन्तोषी प्रकृतिवाला होता है।

यदि शुभग्रह गुरु-शुक्रादि भी होरालग्न में चन्द्र के साथ हों तो जातक धार्मिक वृत्तिवाला, साधु-विप्र सेवक, सदाचारी, धनाढ्य, शुभ-सन्ततियुक्त एवं सुखी रहता है।

यदि होरालग्न में चन्द्रमा के साथ पापग्रह हों तो जातक आचरणहीन, निर्धन, दुष्टप्रकृति, दुखी, नीच कर्मरत होता है।

द्रेष्काणफल विचार

द्रेष्काणपो यत्र गृहे तदङ्का
सहजाः सहोत्था स यदा ससौम्यः ।
ते जीविनोऽथेतरथा मृताः स्यु-
स्तत्सौहृदाद्ये सहजैः सुखाद्यम् ।

भा० टी०—जन्म-लग्न का द्रेष्काणेश जन्म-कुण्डली में जिस राशि पर स्थित हो, उस राशि की संख्या के तुल्य भाई होते हैं। वही द्रेष्काणेश यदि सौम्यग्रह से युक्त दृष्ट हो, तो उसके वे भाई चिरंजीवी होते हैं और यदि पाप-ग्रहों से युक्त दृष्ट द्रेष्काणेश हो तो उसके भाई मृत्यु को प्राप्त होते हैं। और 'तत्सौहृदाद्ये' अर्थात्—लग्नेश की द्रेष्काण के साथ जैसी मित्रतादि हो, वैसा ही भाइयों के साथ सुख प्रेमादिक होता है। अर्थात् लग्नेश द्रेष्काण की परस्पर मित्रता में भाइयों के साथ प्रेम-सुख समता में उदासीनता, और शत्रुता में शत्रुता होती है। अथवा "तत्सौहृदाद्ये" अर्थात्—द्रेष्काण के साथ जो युक्त ग्रह हों तो उन की मित्रतादिवत् भाइयों के साथ सुख प्रेमादि कहे।

चेत् पुंग्रहास्ते सहजा भगिन्यः
स्युः स्त्री-ग्रहाश्चेदथवा पुमंगम् ।
चेद् भ्रातृ-सौख्यं भगिनी-सुखं तद्-
भेदे स्व घातोऽरि-मृतौ तदीशे ॥

भा० टी०—द्रेष्काणेश युक्त ग्रह यदि पुरुष संज्ञक हो तो भाई और यदि स्त्री संज्ञक हों तो बहिन होती हैं। अथवा द्रेष्काण लग्न पुरुष संज्ञक हो, भाई स्त्री संज्ञक हो तो बहनें होती हैं। अथवा जन्मलग्न पुरुष संज्ञक हो, और लग्नेश द्रेष्काणेश की मित्रता भी हो तो भाई होते हैं। और उनका सुख भी प्राप्त होता है। और यदि 'तद् भेदे' अर्थात् स्त्रीसंज्ञक लग्न हो, लग्नेश द्रेष्का-णेश की मित्रता हो तो बहिन होती है एवं उनका सुख भी प्राप्त होता है। और द्रेष्काणेश छठें आठवें स्थित हो तो अपने द्वारा ही अपने शरीर में घात होता है—

स्पष्टीकरण—स्वघातयोग में द्रेष्काणेश जन्ममें अशुभ शत्रुग्रह से दृष्ट युक्त हो, तो योग फल मिलेगा।

विशेष फल

द्रेष्काणेश, द्रेष्काण कुण्डली में जिस राशि में बैठा होगा, उस राशि के अंक के समान बहिन और भाइयों की संख्या जाने। द्रेष्काण-कुण्डली के लग्न

के स्वामी के साथ पापग्रह द्रेष्काण में बैठे हों अथवा द्रेष्काणेश को जितने पापग्रह देखते हों तो उतने भाई बहनों का नाश होता है, द्रेष्काण-लग्न में जितने शुभग्रह बैठे हों, या द्रेष्काणेश को देखते हों तो उतने भाई बहिन स्वस्थ एवं मौजूद रहते हैं।

द्रेष्काणेश, जन्मकुण्डली में चन्द्र के साथ शुभग्रहयुत हो तो वह जातक सुन्दर सुडौल-शरीर, अधिक रोमवाला होता है। चन्द्रयुक्त द्रेष्काणेश पापग्रह युत हो तो जातक कर्णरोगी, बन्धुविरोधी, शत्रुओं से विवाद करनेवाला होता है। द्रेष्काणेश मंगल जन्मकुण्डली में आठवें भाव में होय तो उसका भाई वृक्ष पर से गिरकर या अन्य स्थान से गिरकर मरता है या मरणतुल्य कष्ट पाता है।

द्रेष्काणेश जन्मकुण्डली में गुरुशनि के साथ हो तो उसका मरण विष से होगा। द्रेष्काणेश सूर्य मंगल जन्म में आठवें बैठा हो तो बिजली या आग से भय होता है। द्रेष्काणेश जन्मकुण्डली में आठवें हो तो हाथ में कोई चिह्न होता है। वही द्रेष्काणेश जन्मकुण्डली में आठवें पापयुक्त हो तो माता तथा स्वयं को हिक्का (हिचकी) रोग से परेशानी होने की संभावना रहती है। यदि शुभग्रह साथ हों तो जातक अभिमानी, प्रतापी एवं अच्छे शरीरवाला होता है।

लग्नद्रेष्काणेशे षष्ठेभतुल्ये मासि मृतिः।

लग्नके द्रेष्काण का स्वामी छठे स्थानमें स्थित हो तो छठे स्थान में जो राशि हो उतने ही संख्याके मासमें बालक को मृत्यु भय हो।

नवांश फलविचार

यस्य क्षेत्रस्य यो भागो बल्यंशस्तद् बलान्मतः।
अबलस्तस्य दौर्बल्ये मध्यमे मध्यमः स्मृतः॥

भा० टी०—जिस राशि का जो नवांश है, वह उस राशि के बल से अधिक बली होता है। राशि की दुर्बलता से नवांश भी तदनुरूप निर्बल होता है। यदि राशि मध्यम बली हो तो नवांश भी मध्यम बली होता है। इस बात का फलादेश में सर्वत्र ध्यान रखें।

नवांश-नाथे स्वलवे स्वभादौ शुभेक्षिताढ्येऽशुभयोगहीने।
प्राप्नोति रामामतुलामवश्यं नरो विनायासमपापरूपाम्॥

भा० टी०—नवांशेश अपने नवांश में हो, अथवा अपनी स्वराशि उच्च द्रेष्काणादिक में हो, शुभग्रहों से दृष्ट युक्त हो, अशुभ सम्बन्ध से रहित हो

तो पुरुष अतुल गुणवती उत्तम स्वभाववाली सुन्दरी स्त्री को विना परिश्रम के ही प्राप्त करता है।

केन्द्रे तदीशेऽष्टिसमान्तरिष्टे त्रिकोणगे तत्त्वमितेविवाहः।
नवांश-लग्ने खल-खेट-युक्ते जाया-लवे वा न विवाहसौख्यम् ॥

भा० टी०—नवांशेशबली होकर जन्मकुण्डली में केन्द्र में स्थित हो तो १६ वर्ष अर्थात् छोटी उमर में विवाह होता है। वह नवांशेशबली होकर त्रिकोण में हो तो २५ वर्ष, अर्थात् युवावस्था में विवाह होगा। केन्द्र त्रिकोण से अतिरिक्त अनुक्त अन्य स्थानों में नवांशेश हो तो बड़ी आयु में स्त्री सुख का लाभ होना सिद्ध होता हैं। नवांश लग्न में पापग्रहों का योगादिक हो तथा सप्तम भावगत नवांश पर पापग्रहों का योगादिक हो तो विवाह सुख नहीं होता।

विशेषफल

नवांश-कुण्डली में जो ग्रह बलवान् (वर्गोत्तमी व उच्च आदि) का होकर बैठा हो, वह उतना ही उत्तम एवं शुभफलप्रद सिद्ध होगा।

नवांश कुण्डली फलादेश के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है, अत इसकी उपेक्षा करना भारी भूल है।

नवांश कुण्डली से स्त्रीं का स्वभाव आचरण तथा सुख-दुःख आदि का विचार किया जाता है।

नवांश-लग्न का स्वामी **मंगल** हो तो स्त्री क्रूर स्वभाववाली एवं आचरण-हीन होती है। नवमांश लग्नेश **सूर्य** हो तो स्त्री पतिव्रता लेकिन उग्र प्रकृति, **चन्द्र** हो तो शान्तप्रकृति, रूपवती, **बुध** हो तो चतुर, सुन्दरी, कसीदे आदि में निपुण, **गुरु** हो तो सदाचारिणी, तीर्थ नेमव्रत में रुचि रखनेवाली, **शुक्र** हो तो शृङ्गारप्रिय, चतुर, सुन्दर, शौकीन, भोगविलास में प्रवीण, आचरणहीन होने का भय हैं। यदि नवांश लग्न का स्वामी **शनि** हो तो स्त्री क्रूर स्वभाव वाली, नीच-संगतिवाली, पति से विरुद्ध विचारवाली होती है। यदि नवांशलग्नेश राहु किंवा केतु के साथ हो तो गुप्त दुराचारा दुष्टा कुटिला, पतिविरुद्ध आचरण करनेवाली स्त्री होती है। नवांश पति व्ययस्थान में हो तो जातक स्त्री से सन्तुष्ट नहीं होता। नवांशपति पापग्रह पापयुक्त पापदृष्ट हो तो स्त्री झगड़ालू होती हैं, नवमांशेश जन्मकुण्डली में शुभग्रहयुत या दृष्ट

हो, किंवा ग्रह स्वराशिस्थ व केन्द्र-त्रिकोण में हो तो स्त्री का पूर्णसुख मिलता है। जन्म कुण्डली में नवमांशेश दूसरे ग्यारहवें भाग्येश के साथ युत होकर बैठा हो तो व्यक्ति को ससुराल से लाभ होता है अथवा स्त्रियों द्वारा अनेक प्रकार से लाभ होता है। यदि नवांशेश पापग्रहों से युक्त किंवा दृष्ट हो तो उतनी ही स्त्रियों का नाश या उतने ही सम्बन्ध छूटते हैं। ऐसे ही स्त्री की कुण्डली में भी पति सौख्य का विचार बुद्धिपूर्वक करें। नवांशपति जन्म में दूसरे हो तो विवाह बाद धनी होता है। नवांशपति जन्मलग्न में स्वगृही हो या ३।५।७।९।१०वें हो तो सुन्दर भाग्यशाली स्त्री का लाभ होता है। नवांशपति जन्मलग्न में छठे आठवें हो तो स्त्री का वियोग या हानि होती है। जन्मलग्नेश जहाँ हो वहाँ के नवांशपति के गृह में जब गोचर में गुरु आवे तब स्त्री लाभ हो। लग्नेश शत्रु या नीच नवांशगत हो तो स्त्री हानि या विवाह में बाधा हो।

फलित में नवांश व वर्गोत्तमी ग्रह-भाव का महत्त्व

बहुधा देखने में आता है, कि किसी व्यक्ति की कुण्डली में विशिष्ट राजयोग पड़ा हुआ है, परन्तु उसका जीवन गिरी हुई हालत में ही गुजरता है, ऐसे ही किसी की कुण्डली में अधिकांश ग्रह या विशिष्ट ग्रह नीच के हैं, परन्तु देखने में वह महाभाग्यवान् है। इसका कारण नवांश-गत-ग्रहों की परिस्थिति है। क्योंकि फलादेश-कथन में नवांश-कुण्डली व वर्गोत्तमी ग्रहभाव का विशेष महत्त्व है। नवांश कुण्डली के बिना फलादेश कहना लंगड़े की दौड़ के समान ही है। क्योंकि, विशेष विचारों में जन्म कुण्डली से भी अधिक विशेष महत्त्व नवांश कुण्डली का होता है, तद्यथा—"स्वोच्चे नीचांशके दुःखी नीचे स्वोच्चांशके सुखी। स्वांशे वर्गोत्तमे भोगी राजयोगी भविष्यति।!"

जैसे जन्मकुण्डली में कोई ग्रह अपनी उच्च राशि का है और वही ग्रह नवाँशकुण्डली में नीचराशिगत है तो उसकी राशिगत उच्चता निरर्थक है। नवांश की स्थिति को देखते हुए वह ग्रह नीच ही समझा जाएगा। इसके विपरीत यदि कोई ग्रह जन्मकुण्डली में नीचस्थ है और वही ग्रह नवांश कुण्डली में उच्च का है तो उसका नीचत्व भंग हो जाता है। वह ग्रह उच्च सदृश फलप्रद रहेगा। विशेष यह भी समझ लें, कि जन्म कुण्डली में नीचस्थ ग्रह यदि नवांश कुण्डली में भी नीच का ही रहे, तो वह ग्रह वर्गोत्तमी समझा जाएगा और अपनी वर्गोत्तम-स्थिति के कारण अशुभ फल न देकर शुभफल ही देगा, उसकी राशिगत नीचता लुप्त हो जायगी।

इसी तरह यदि कोई ग्रह शत्रु क्षेत्रवर्ती है, लेकिन नवांश कुण्डली में भी उसी राशिगत है तो वह वर्गोत्तमी एवं स्वक्षेत्री ही समझा जाएगा, अतः शुभ फलप्रद रहेगा।

चन्द्र एवं गुरु का केवल वर्गोत्तम होना राजयोगप्रद है। शुक्र भी वर्गोत्तमी होकर शुभ उत्तम भाग्य योग बनाता है। लग्न का वर्गोत्तमी होना विशेष लाभप्रद है। वर्गोत्म लग्न-गत चन्द्र या स्वनवांश गत-चन्द्रमा शुभ सौभाग्यप्रद कहा है। शुभग्रह किंवा पापग्रह भी वर्गोत्तम स्थिति में शुभ फलप्रद ही सिद्ध होता है। वर्गोत्तम लग्नेश यदि वक्री हो साथ ही आत्मकारक ग्रह के साथ हो तो उसे अधिक बलशाली एवं श्रेयस्कर समझना चाहिए।—इस प्रकार ग्रहस्थिति को दृष्टि में रखते हुए भविष्य कथन में आश्चर्यजनक रूप से सफलता मिलती है—यह अनुभव है।

फलित ज्योतिष में नवांश की महत्ता

नवांश का महत्व सुनार की कसौटी की भाँति है। सुनार कसौटी पर कसकर सुवर्ण के खरेपन की जांच करता है, दैवज्ञ नवांशगत ग्रहस्थिति का गम्भीरअध्ययन करके ग्रहों के वास्तविक बलाबल एवं कुण्डली की शक्ति का ज्ञान करता है। कोई भी शुभाशुभ योग जन्मकुण्डली की अपेक्षा नवांश कुण्डली में शुभ होनेपर अधिक शुभ, अशुभ होनेपर अधिक अशुभ कहा जाएगा। कोई भी योग्य ज्योतिषी ग्रहफल-निर्णय के समय नवांश की उपेक्षा नहीं कर सकता। ध्यान रहे,—अत्यन्त प्रबल-राजयोग भी अशक्त या निष्फल हो जाता है यदि योग कारक ग्रह नवांश में नीचादि दोष युक्त हों। इसके विपरीत यदि मुख्य लग्न कुण्डली कुछ दोषयुक्त भी हो, किन्तु दोषजनक ग्रह नवांश-कुण्डली में सुधरा हो तो मुख्य कुण्डली बहुत बल पा जाती है। **नवांश कुण्डली तो वास्तव में जन्मकुण्डली का मेरुदण्ड है।** यदि नवांश कुण्डली में नीचांश के कारण ग्रह निर्बल हों तो वह व्यक्ति उन्नति नहीं कर सकता, भले ही जन्मकुण्डली में ग्रह प्रबल हो।

जन्मकुण्डली में यदि लग्न 'पुरुष-लग्न' हो तो नवांश भी प्रायः पुरुष-लग्न ही होगा। जातक के विषय में विवेचन करते समय ग्रहों का प्रत्येक भाव पर एवं तद्भावगत ग्रहों के साथ दृष्टिसम्बन्ध का ध्यान रखना नितान्त आवश्यक है। नवांश कुण्डली आदि मूलतया दृष्टियां ही है। पाश्चात्त्य-ज्योतिष में जहां दशा पद्धति का ज्ञान नहीं, वहाँ ग्रहों की दृष्टियों को बहुत अधिक महत्त्व दिया

गया है। पाश्चात्त्य-विद्वान ग्रहों की दृष्टियों, योगों, प्रतियोगों के आधार पर भविष्यवाणी करते हैं, इस दृष्टि-योगादि के आधार पर की गई भविष्यवाणी गोली की चोट ठीक बैठती है। जिससे अश्रद्धालु भी मन्त्रमुग्ध हुए विना नहीं रहते।

नवांश का अर्थ है ४० अंश (अथवा उसके गुणित) दृष्टि, पाश्चात्त्य ज्योतिषी इसे प्रथम 'नोनाइल—दृष्टि' कहते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार जो ग्रह परस्पर ४०,८०,१२०, १६०,२००,२४०,२८० अंश दूर होते हैं वे एक ही नवांश में पड़ेंगे। नवांश कुण्डली में जब ग्रह युति करते हैं तो उनका अर्थ यह होता है, कि वे जन्म कुण्डली में ४० अंक अथवा नवांश उसके गुणितो की दृष्टि से एक दूसरे को देख रहे हैं। नवांश का अर्थ है कि नवम भाग अर्थात् राशि के ३६० अंश का १।९ वां भाग जो कि ४० होता है। जब कोई ग्रह नवांश में युति नहीं करता तो इसका अर्थ यह है, कि—उनकी परस्पर दृष्टि नहीं है और वह एक दूसरे के ४० अंश से अधिक दूर है। इस प्रकार द्रेष्काण १२० अंश और उसके गुणितों का द्योतक है। द्रेष्काण का अर्थ है कि तीसरा भाग जो १२० अंश होता है, भारतीय-ज्योतिष में सप्तवर्ग नाम से सातों कुण्डलियों के बारे में यही बात सही है। इस बात से हम सहमत नहीं, कि अंश पूर्ण का एक भाग है और कभी भी पूर्ण के बराबर नहीं हो सकता। केवल नवांश कुण्डली में ग्रहों की स्थिति का विवेचन उसी प्रकार नहीं किया जाना चाहिए जिस प्रकार जन्म समय के कालचक्र में ग्रहों की स्थिति के सम्बन्ध में किया जाता है। सप्तवर्ग मूलतः दृष्टियों का विवेचन है जो कि ज्योतिष की सभी देशी विदेशी पद्धतियों में मान्य हैं। इसके महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि सप्तवर्गों की उपेक्षा की जाए तो उसका अर्थ दृष्टियों की उपेक्षा करना ही होगा। यह सभी जानते हैं, कि प्रत्येक ग्रह की अपनी दृष्टि होती है। किन्तु सुविधा के लिए ज्योतिषी कुछ ग्रहों की विशेष-दृष्टियों को ही महत्त्व देते हैं। इसका अर्थ यह नहीं हैं, कि बृहस्पति की चौथे और आठवें या तीसरे और दसवें दृष्टियां नहीं होतीं। या शनि की ४ और ८ या ५ और ९ दृष्टि नहीं होती। बाद में बनाई जानेवाली ये सप्तवर्गीय कुण्डलियां मूल जन्मकुण्डली में उपस्थित ग्रहों की दृष्टियों के सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत करती हैं। पाश्चात्त्य ज्योतिषी भी इन्हीं दृष्टियों को बहुत महत्त्व देते हैं। परन्तु हम भारतीय सभी प्रकार की दृष्टियों का अध्ययन सप्तवर्गों से करते हैं, जब कि पाश्चात्त्य-ज्योतिषी केवल जन्मकुण्डली से ही सारी दृष्टियों का हिसाब लगाते हैं,—यही पाश्चात्त्य एवं भारतीय-ज्योतिष के बीच का अन्तर है।

द्वादशांशफलविचार

अर्कांशपेऽङ्गे पितृतुल्यभाग्य
त्रिक-स्थितेनात्म-सुखं न पित्रोः।
लाभ-स्थिते तात-धनं सुगुप्तं
नीचास्त-पापारिखलेष्वभद्रम् ॥

भा० टी०—द्वादशांशेश यदि जन्म कुण्डली में लग्नस्थ हो, तो जातक पिता के समान भाग्यवान होता है। यदि त्रिक-स्थान में हो तो उसे अपने शरीर तथा माता-पिता का भी सुख नहीं होता। यदि द्वादशांश लाभ में स्थित हो तो पिता का धन गुप्त है (उसे यह भोगेगा)। यदि जन्मकुण्डली में द्वादशांश लग्न नीच अस्त-पाप शत्रु ग्रह से युक्त दृष्ट हो तो अभद्र अर्थात् माता-पिता की हानि, क्लेशादि अशुभ फल कहे।

विशेषफल

द्वादशांश कुण्डली से माता-पिता का सुख तथा उनकी आयु आदि का ज्ञान होता है।

द्वादशांशेश यदि जन्मलग्न में हो तो जातक पिता के बराबर धनी व गुणी नहीं होता। पिता से कम गुण एवं स्वल्प द्रव्यवाला होता है।

यदि धन स्थान में (द्वादशांश का स्वामी, हो तो जातक पिता से अधिक गुणी तथा जीवन में पिता से अधिक धनी होता है। तृतीय स्थान में द्वादशांशेश हो तो पिता से अधिक यशस्वी, चतुर्थ स्थान में हो तो भाग्यशाली, पंचम में हो तो बुद्धिमान् एवं पिता को सुख देनेवाला होता है, द्वादशांशेश छठे भाव में हो तो अधिक शत्रुओंवाला होता है। सातवें भाव में हो तो सुखलाभ होता है। द्वादशांशेश अष्टम स्थान में हो तो पिता या शस्त्र, शत्रु वा विषैले जीव से या आत्महत्या से अपमृत्यु होती है। नवम स्थान में हो तो जातक का पिता धार्मिक वृत्तिवाला व तीर्थसेवी होता है। दशम स्थान में द्वादशांशेश के होनेपर जातक पिता से अधिक सुख-समृद्धि युक्त होता है। द्वादशांशेश लाभ स्थान में बली होकर बैठा हो तो गुप्त (गड़ा) धन भण्डार आदि तथा आकस्मिक सट्टा लाटरी आदि से भी लाभ प्राप्त करता है। यदि द्वादशांशेश, द्वादश भाव में हो तो वृथा धननाश, लाभ के स्थान में हानि, दुष्टसंगति तथा अनीति-मार्ग से निन्दनीय होता है।

जन्म कुण्डली में स्वगृही या उच्च का द्वादशांशपति हो तो जातक महा-भाग्यशाली होता है, यदि द्वादशांशेश नीचस्थ, पापयुक्त किंवा पापदृष्ट या अस्त हो तो जातक रोग, शत्रु व अनेकविध चिन्ताओं से कई वार परेशान होना पड़ता है।

द्वादशांशपति पुरुषग्रह स्वराशि, मित्र राशि, या उच्चस्थ होकर केन्द्र किंवा त्रिकोण में बैठा हो तो पिता का पूर्ण सुख होता है। यदि वही नीच, शत्रुराशि या पापग्रह की राशि में स्थित हो या त्रिक भाव में बैठा हो तो जातक को पिता का अल्पसुख होता है या पिता कष्ट में ही रहता है। ऐसे ही द्वादशांशपति स्त्री-ग्रह हो तथा शुभ, स्वराशि, मित्रराशि या उच्च में स्थित होकर केन्द्र त्रिकोण में हो तो जातक को माता का पूर्णसुख प्राप्त होता है। यदि वही [द्वादशांशपति] स्त्रीग्रह पापयुक्त, पापदृष्ट होकर त्रिक में हो तो माता का सुख नहीं या कम होता है या माता अस्वस्थ रहती है।

त्रिशांश फलविचार

त्रिशांशादष्टम-स्थानाधिपे सौम्यशुभेक्षिते।
शुभैः त्रिशांशके मृत्युः शोभनो नो विपर्यये॥

भा० टी०—त्रिशांश लग्न से जन्म में अष्टमेश यदि शुभग्रह हो, और वह शुभग्रह से देखा गया हो, और त्रिशाँश लग्न में भी शुभ ग्रह हो तो मनुष्य की मृत्यु शुभ और सुख से होती है। इससे विपरीत हो तो विपर्यय अर्थात् महारोगारिष्ट क्लेश से मृत्यु होती है।

त्रिशांशपोऽसौम्य खगोऽस्तनीचो यदा तदा बन्धुभिराशुवैरम्।
त्रिक् स्थितश्चेन्नृप-भीतिभाक् स्यात्सद्न्वितः सन्यदिसौख्यशाली॥

भा० टी०—त्रिशांशेश यदि पापग्रह हो, और वह अस्त नीच का हो तो उसका भाई बन्धु-पित्रादिकों के साथ मामूली बात से अकारण ही विरोध हो जाता है। यदि त्रिशांशेश त्रिक् स्थान में स्थित हो तो वह मनुष्य राजभय को प्राप्त होता रहता है। यदि वही त्रिशांशेश शुभ ग्रह से युक्त दृष्ट हो और स्वयं शुभ ग्रह हो तो सर्वथा सुखी रहता है।

स्व-त्रिशांश गता ग्रहा विदधते तत्कारकत्वोदितम्।
तत्रैकोऽपि सुहृद् गृहेक्षित-युतः स्वोच्चेऽर्थयुक्तं नृपम्॥
कुर्यादात्मसुहृद्-दृगाणग-शशी कल्याणरूपं गुणम्

भा० टी०—अपने त्रिशांश में बैठा ग्रह स्वयं जिसका कारक हो वह उस कारक का पूर्ण फल देता है। स्व त्रिशांश में बैठा एक ग्रह भी स्व-गृही अथवा

उच्च का हो और वह मित्र ग्रह से दृष्ट युक्त हो, तो मनुष्य को धन सम्पन्न नृप समान बनाता है विपरीत ग्रहस्थिति होनेपर विपरीत फल होना स्वयं सिद्ध है। यदि–चन्द्रमा द्रेष्काण कुण्डली में स्वराशि मित्र राशि का हो, तो वह मनुष्य को कल्याण देनेवाला तथा रूपगुणादि शुभफल देनेवाला होता है। यहाँ चन्द्र की नीचादि राशियों में स्थिति होनेपर विपरीत फल होगा।

विशेष फल

इस कुण्डली से जातक का अरिष्ट, कष्ट आदि का विचार किया जाता है। त्रिशांशपति सूर्य चन्द्र नहीं होते, शुभग्रह के त्रिशांश में जन्म हो तो जातक शुभवाणीवाला होता है। अशुभग्रह के त्रिशांश में जन्म हो तो जातक अशुभवाणी बोलनेवाला होता है। त्रिशांशपति शुभग्रह हो, वह उच्च या मित्र गृह में हो तो शरीर सुखी रहे, और रूप भी सुन्दर हो।

यदि वह त्रिशांशपति जन्मकुण्डली में छठे हो तो बन्धनयोग होता है, सातवें हों तो गृहस्थ जीवन सुखी होता है। त्रिशांशपति पापग्रह हो तथा जन्म कुण्डली के आठवें भाव में हो तो राज्य से मरणभय होता है। त्रिशांशेश जन्मकुण्डली में बारहवें हो तो जीवन संघर्षमय, तकरार, कजिया, राज्यभय युक्त हो।

त्रिशांशपति से जन्मकुण्डली के बारहवें घर में शत्रुग्रह बैठा हो तो जातक के जीवन में अदालती झगड़े, मुकद्दमों से हैरानी होती रहे।

त्रिशांश लग्न से आठवें घर का स्वामी शुभग्रह हो तथा शुभ ग्रह से दृष्ट या युत हो तो जातक की मृत्यु शुभ (पवित्र) स्थान पर दान धर्म के साथ होती है। यदि त्रिशांश लग्न से अष्टमेश क्रूरग्रह हो और क्रूरग्रहों के साथ युक्त दृष्ट हो तो कष्टमय अपमृत्यु होती है।

सप्तांश फलविचार

सप्तांश लग्ने विषमे शुभानां योगे क्षणादौ पुमपत्यसौख्यम्।
समेसुतासंकलितोऽथ तत्रासौम्यैरसंभूतिमुशन्ति सन्तः॥

भा० टी०—सप्तांश लग्न विषम हो, और उसमें शुभग्रह स्थित हो वा उसको देखें तो पुत्र का सुख होता है। और सम हो तो कन्या संतान होती है। यदि सप्तांश लग्न पापग्रहों से युक्त दृष्ट हो, तो सन्तान-सुख नहीं होता–ऐसा महापुरुष कहते हैं।

विशेष फल

संतानसुखज्ञानार्थं सप्तांश कुडलीका परिशीलन नितान्त आवश्यक है। सप्तांश लग्न का स्वामी जन्म कुण्डली में जिस राशि में हो, उस राशि के अंक की संख्या के समान प्रायः जातक को सन्तति (पुत्र कन्या) प्राप्त होती है। सप्तांश लग्न से जन्म में पंचमभाव शुभयुक्त दृष्ट हो तो पुत्र सुख हो अन्यथा अभाव।

सप्तांश लग्नेश पुरुषग्रह सू० मं० गु० हों तो विशेषतया पुत्र सुख देता है, सप्तांश-लग्नेश स्त्रीग्रह चं० शु० हो तो कन्या का सुख विशेष होता है।

सप्तांशपति अस्त हो और जन्मकुण्डली में पाप-युक्त होकर लग्न में हों तो गर्भ का अभाव रहता है। सप्तांशेश नीच हो तो अल्पायु दुर्बल एवं खराब स्वभाववाली सन्तान होती है। सप्तांशेश शत्रु घर में हो तो सुपुत्रों की हानि होती रहे, तथा कुपुत्रों का लाभ हो। सप्तांशपति सूर्य के साथ हो तो सन्तान नेत्ररोगी होती है। सप्तांशपति वृहस्पति या शुक्र के साथ हो तो उनके पुत्र भाग्यवान एवं दीर्घायु होते हैं। सप्तांशेश यदि बुध के साथ हो तो कन्याऐं अधिक होती हैं। सप्तांशपति पापग्रह हो या जन्म कुण्डली में पापग्रह की राशि में बैठा हो तो (उस व्यक्ति की) सन्तान नीच कर्म करनेवाली किंवा अल्पायु होती है। सप्तांशेश पांपग्रह हो या जन्म कुण्डली में पाप ग्रह की राशि में बैठा हो तो उस व्यक्ति की सन्तान नीच कर्मरत या मस्तिष्क पीडा-युक्त होती है। सप्तांशपति जन्म कुण्डली में ग्यारहवे या बारहवे बैठा हो तो उस व्यक्ति के मस्तक कमर या पैर में वायु पीडा से कष्ट होता है। यदि उपरोक्त ग्रहस्थिति होनेपर पापग्रह का योग भी हो तो जातक दुष्ट हृदय वाला होता है। शुभग्रह का योग होनेपर शुद्ध विचारोंवाला सहृदय होता है।

सप्तांशेश जन्म में शुभग्रह से दृष्ट युक्त हो शुभ की राशि में हो, उच्चस्थ हो, या मित्र राशि में हो तो सन्तान सुमार्गगामिनी रूपगुणयुक्त एवं सुशील होती है। सप्तांशेश जन्मकुण्डली में सप्तांश लग्न से सातवे आठवे पापयुक्त पापदृष्ट या अस्त हो तो जातक की सन्तति अल्पायु और दुर्बल होगी। ऐसी स्थिति में जातक प्रायः सन्तति की ओर से चिन्तित ही रहता है। इसी प्रकार सप्तांशेश पापग्रह हो तो और वह जन्म लग्न में हो तो जातक को सन्तान की ओर से कुछ ना कुछ चिन्ता बनी ही रहती है। सन्तान सुख नहीं होता।

विशेषविचार

षड्वर्गेषु शुभग्रहाधिकगुणैः श्रीमांश्चिरं जीवति ।
क्रूरांशे बहुले विलग्नभवने दीनोऽल्प जीवः शठः ।
तन्नाथा बलिनो नृपोऽस्त्यथ नवांशेशो दृगाणेश्वरो
लग्नेशः क्रमशः सुखी नृप-समः क्षौणी-पतिर्भाग्यवान् ।

भा० टी०—यदि षड्वर्ग में शुभग्रहों का बल अधिक हो तो मनुष्य लक्ष्मीवान और दीर्घायु हो । यदि षड्वर्ग में लग्न अधिक क्रूर-अंशों केषड्वर्ग में हो तो दीन, अल्पायु और शठ प्रकृतिवाला होता है । परन्तु षड्वर्ग लग्नों के स्वामी यदि बलवान् हो तो मनुष्य नृप (पदाधिकारी) हो । यदि जन्म कुण्डली में नवांशेश, द्रेष्काणेश तथा लग्नेश बलवान् हों, तो मनुष्य क्रम से सुखी-राजा के समान भूपति एवं भाग्यवान् होता है । अर्थात् नवांशेश बली हो तो सुखी, द्रेष्काणेश बली हो तो राजा के सम, जन्मलग्नेश बली हो तो भूपति एवं भाग्यवान होता है ।

वि०–संकेत–स्मरण रहे कि—सुस्थानस्थ जो ग्रह षड्वर्ग में ४ से अधिक निजोच्च, मित्र शुभ की राशियों में आवे, और अस्त न हो, तो वे ग्रह-षड्वर्ग शुद्ध बलवान् कहलाते हैं ।

यन्मित्र-स्व-गृहे फलं निगदितं तुङ्गे त्रिकोणेऽपि वा ।
तत्सर्वं विदधाति जन्म-समये षड्वर्ग-शुद्धो ग्रहः ॥
स्याच्चैकोऽपि स्व-षड्वर्ग-शुद्धः सर्वैर्दृष्टस्तत्र जातो नृपः स्यात् ॥

भा० टी०—जो फल जन्म कुण्डली में स्थित मित्र-ग्रह, स्वग्रह उच्च मूल त्रिकोण में कहा है, वह समस्त-फल एक षड्वर्ग शुद्ध ग्रह जन्म में देता है । यदि एक भी ग्रह बली सुस्थानस्थ होकर षड्वर्ग शुद्ध हो, और वह सर्व ग्रहों से दृष्ट हो तो मनुष्य कुलानुमान से नृप (बड़ा आदमी) होता है ।

शुभाः स्व-मित्र सौम्योच्चे निन्द्यानीचारिपापजाः ।
एवं पापं शुभं वीक्ष्य तद्विशोध्य परस्परम् ॥
वर्गे शुभाधिकेः क्रूरः शुभः सौम्योऽतिशोभनः ।
निन्द्याधिके शुभः क्रूरः क्रूरोऽति क्रूरतां व्रजेत् ॥

भा० टी०—सुस्थान में स्थित उच्चगत ग्रह-मित्र वर्ग वा सौम्यवर्गगत हों शुभफलप्रद होते हैं। और नीचगत ग्रह शत्रुवर्ग पापवर्ग में हों तो अशुभफलप्रद होते हैं। इनमें पापवर्ग वा शुभवर्ग का परस्पर अन्तर द्वारा न्यूनाधिक्य देखकर जो अधिक रहे उससे शुभाशुभ फल जानना। शुभाधिक वर्ग में क्रूर भी शुभफलप्रद होता है। और शुभ हो, तो अधिक शुभ होता है। निन्द्य वर्गाधिक में शुभ भी क्रूर होता है, और क्रूर अति क्रूरता को प्राप्त होता है।

दृक्काणेशे स्ववर्गे शुभखगसहिते स्वोच्चमित्रर्क्षगे वा
तद्वस्त्रिशांशनाथे बलवति यदि चेद् द्वादशांशाधिपे वा।
होरानाथे तथा चेन्निखिलगुणगणो नित्यशुद्धप्रवीणो
दीर्घायुः स्याद्दयावानसुतधनसहितः कीर्तिमान्राजभोगः॥

यदि लग्न द्रेष्काण का स्वामी अपने उच्च वर्ग में स्ववर्ग में या मित्र के वर्ग में शुभ ग्रह के साथ हो, यदि लग्न होरा, लग्न त्रिशांश तथा लग्न द्वादशांश के स्वामी भी अपने-अपने उच्चवर्गों में स्ववर्गों में या मित्रवर्गों में हों और शुभग्रह सहित हो तो उस व्यक्ति में बहुत गुण होते हैं। वह चतुर दीर्घायु, दयावान, पवित्र, यशस्वी राजाओं के सदृश भोग भोगनेवाला होता है। उसको पुत्र से सुख प्राप्त होता है। और वह धनी भी होता है।

नोट—उपरोक्त षड्वर्ग का जो शुभाशुभ फल कहा है, उसके साथ **"सर्वं विलग्नादपि चिन्तनीयम्"** सिद्धान्तानुसार लग्न कुण्डली से भी विचारपूर्वक शुभाशुभ फल षड्वर्ग को ध्यान में रखते हुए कहे। जिस भाव का फल षड्वर्ग-विशेष में शुभ हो तथा जन्म लग्न में भी शुभ ग्रहस्थिति के आधार पर फल शुभ हो उसका फल "विशेष शुभ' कहे। षड्वर्ग से जिस भाव का फल शुभ प्रतीत हो तथा जन्मलग्न के आधार पर कदाचित् उस भाव का फल अशुभ बने तो **'मध्यम'** मिश्रित "शुभाशुभ घटनाओंवाला" फल बुद्धिपूर्वक कहे।

अगर षड्वर्ग एवं जन्मलग्न से (दोनों प्रकार से) जिस भाव का फल अशुभ मालूम हों तो उस भाव का फल अवश्यमेव अशुभ होगा—ऐसा विचार-पूर्वक कहे।

●

स्वोच्चे शुभफलं पूर्णं त्रिकोणे[1] पादवर्जितम् ।
स्वर्क्षे दलं मित्रगेहे पादमात्रं प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥

पादार्धं समभे प्रोक्तं व्यर्थं नीचास्तशत्रुगे ।
तद्वद् दुष्टफलं ब्रूयाद्व्यत्ययेन विचक्षणः ॥ २ ॥

पापवर्गेऽरिवर्गे च ग्रहो नेष्टफलप्रदः ।
शुभवर्गे सुहृद्वर्गे दशातीव शुभप्रदः ॥ ३ ॥

पापारिवर्गगः क्रूरः स्वपाके मृत्युदुःखदः ।
शुभवर्गेऽधिवर्गे च शुभः सत्फलदोऽखिलम् ॥ ४ ॥

अंशस्य पतिरंशे च तन्मित्रो वा शुभोऽपि वा ।
पश्येद् यदा तदा ज्ञेया सर्वे दोषाश्च निर्बलाः ॥ ५ ॥

स्वेषु स्वभागेषु फलं समग्रं
त्रिकोणवत् स्यात् फलमंशकेषु ।
स्वक्षेत्रतुल्यं भवनांशकेषु
नीचारिभागेषु जघन्यमेव ॥ ६ ॥

सूत्र—नीचगाः स्वोच्चांशगाः नृपतुल्यः ॥ ७ ॥
सू०—उच्चगाः खेटानीचांशगा व्यर्था शुभयोगाः ॥ ८ ॥
स्याच्चेदेकोऽपि स्वषड्वर्गशुद्धः सर्वैर्दृष्टस्तत्र जातो नृपः स्यात् ॥ ९ ॥

अथ साधारणतया लग्नफलानि

तत्रादौ मेषलग्नफलम्

लग्ने क्रिये क्रोधपरोऽथ लुब्धो विदेशगोऽल्पात्मजबन्धुशीलः ।
मेषाक्षिरीर्ष्युंस्खलिताभिधायां पटुः परश्रेष्ठविशिष्टकर्ता ॥ १ ॥

विरुद्धशीलः सहजैश्च मित्रैः ख्यातोऽल्पमेधाश्च कुबन्धुयुक्तः ।
भीरुः स्थिरः स्फीतधनो विषादी कनिष्ठकर्मा द्रुतयोजितारिः ॥ २ ॥

वियुज्यते प्राक् सहजेन मात्रा पित्रा धनभ्रंशसमन्वितश्च ।
प्राप्नोति भार्यां सुकुमारशीलां व्यङ्गां समीरादिभिरर्दिताङ्गीम् ॥ ३ ॥

---

१. अत्र त्रिकोणशब्देन मूलत्रिकोणं ग्राह्यम् ।

अथ वृषलग्नफलम्

लग्ने वृषे स्यात्सुभगो यशस्वी स्यादिष्टकर्माम्बरभूषणेषु ।
लुब्धोऽन्नपाने दयिताप्रियश्च कन्याप्रियो वा पितृतोऽधिकारी ॥ ४ ॥

आपीनवक्षः स्वजनेन मर्दो धर्मेऽतिवृत्तः कफवातुलश्च ।
वणिक् कृषीद्यूतजलाशयार्थी स्थिरः पटु स्वाश्रितभृद् यशस्वी ।
भार्यां प्रचण्डां विषयां कुयोनिं प्राप्नोति रौद्रानपि बन्धुवर्गान् ॥ ५ ॥

अथ मिथुनलग्नफलम्

लग्ने तृतीये प्रियवाक्यदाता शास्त्रार्थसङ्गीतकलासुदक्षः ।
भोगे रतः कामवशो वरस्त्री द्विमातृकः पूज्यवरश्च दक्षः ॥ ६ ॥

हीनाधिकाङ्गो हि विशिष्टकर्मा दुर्मर्षणः क्षुद्रकुटुम्बचित्तः ।
अनिष्टपुत्रश्च समोऽल्पबन्धुर्धर्मालसोनार्थसहोलसश्च ॥ ७ ॥

वह्वङ्गणो रोगसहोऽरिहन्ता स्वसंस्थितो पानरतो जहाति ।
रत्नानि हेमाढ्यजभूमिभागी प्रसिद्धवक्ता च नरो विनीतः ॥ ८ ॥

अथ कर्कलग्नफलम्

कुलीरलग्ने विषमस्वभावो न चैकवासो द्विजदेवभक्तः ।
दाता सुधीर्दानदयासमेतः कफानिलात्मा चपलश्च शीघ्रः ॥ ९ ॥

भीरुः परार्थव्ययकर्मभागी पूज्यः कुलायोगदभुक् च कामी ।
दुष्टात्मपुत्रो बहुवाक् सुबन्धुः कन्याप्रजो वा बहुलार्जितात्मा ॥ १० ॥

सगोमहिष्यो धनधान्यवस्त्रविभूषणः साहसिकोऽतिधीरः ॥ ११ ॥
विदेशगो दुष्टकबन्धुकः स्यात् सदैव पापान्भजतेऽहितांश्च ॥ १२ ॥

अथ सिंहलग्नफलम्

सिंहे हरौ सिंहमुखे महौजा दृढांसवक्षो नृपलब्धमानः ।
धीरो गभीरो स्थितिसत्वयुक्तः प्रियामिषः स्वल्पवचो प्रयोगी ।
भ्रातुसबन्धूनपि हन्ति दृष्टान् वातात्मको दुःखसहोऽतिकोपी ॥ १३ ॥

वनाद्रिचारी वधकृत्क्षुधालुर्लुब्धोऽरिहा स्वार्थकुटुम्बकार्यः ॥
कृष्यादिचित्तोन्वितबन्धुमित्रो व्ययी विधर्मा तु कदन्नभोगी ॥ १४ ॥

अथ कन्यालग्नफलम्

कन्या विलग्ने मृदुवाग् दयावान् कामी सुरूपः सुभगो विनीतः।
सङ्गीतकाव्यव्यवहारशीलः दातोपचारप्रणयादरज्ञः॥ १५॥

कन्याबलप्रीतिविलाससत्वयशोभिलाषी परवित्तभोक्ता।
वामोऽटनो द्विप्रकृतिः सवातो मन्दप्रजो धर्मरतश्च मानी॥ १६॥

स्वजातिपूज्यः प्रबलः कुटुम्बः क्रियापरः स्यान्नहितो सतीषु।
पापैरतापैः सहजैर्विरुद्धैर्नीवारिविद्वेषविवृद्धरोषः॥ १७॥

अथ तुलालग्नफलम्

तुलाविलग्ने शुभकृष्णरक्तश्चलोऽलसो दीर्घकृशः कृतघ्नः।
क्षीणार्जितार्थो विषयाङ्गशीलो वक्ता सुधीर्धर्मरतोऽतिदुःखी॥ १८॥

देशानुचारी कफवातकज्ञो पुराणवर्ती कलिकृत् प्रियावान्।
शुचिर्गुरुर्यानकृतज्ञपूज्यः पितासुजातः सहजप्रियश्च॥ १९॥

भार्यां कुवृत्तिर्महितांश्चबन्धून् पुत्रान् लभेतोपहतं कुटुम्बम्।
पापोऽल्पवीर्यो मृदुशत्रुवर्गः काव्येषु लब्धव्यवसायबुद्धिः॥ २०॥

अथ वृश्चिकलग्नफलम्

लग्नेऽष्टमे विस्तृतपीतदेहो निम्नोदरः पिङ्गगभीरनेत्रः।
पित्तान्वितो मध्यविलग्नघोणो विश्वासहा मातुरनिष्टकर्त्ता॥ २१॥

स्थिरप्रचण्डो विषमस्वभावो ईषत् सुहृद् रोगकरो महाभूः।
परान्नभोक्ता वधभेदकारी शूरोऽन्यनारीनिरतः सुरक्तः॥ २२॥

नृपानुगः पापधनः कुटुम्बी क्षुद्रोजकृत् कर्मरतः प्रजावान्।
शिवाश्रयः स्यात् प्रणतार्थदाता प्रभूतनारीनिरतोनटश्च॥ २३॥

अथ धनुर्लग्नफलम्

धनुर्विलग्ने पृथगन्तु मूर्धा ह्रीमान् महाक्षः कुनखी जितारिः।
पीनोरुवक्षोरुभुजोदरश्च स्थूलद्विजोहिश्रुतिनासिकश्च॥ २४॥

परोपकारी बहुशास्त्रवेत्ता क्रोधी सुधीः सत्यधृतिः कुलेष्टः।
स्वयंस्वहेतुर्जितधर्मचित्तो बन्धुप्रियः शिल्परतश्च शूरः॥ २५॥

सामैकसाध्यो बहुपुत्रदारः कफानिलात्मा बहुनेत्ररोगी।
चलद् बहुक्षुद्रकुटुम्बकार्यः श्रुत्याहतो वा क्षितिपाहृतार्थः॥ २६॥

अथ मकरलग्नफलम्

नक्रे विलग्ने कुकृशो मृगास्यो भीरुः प्रदीर्घो घनसौम्यसत्त्वः।
उद्धृतरोमादिकरो सिताक्षो विस्तीर्णवक्षाश्चपलः क्षुधार्त्तः॥ २७॥
आचारहीनोऽद्रिवनानुचारी संगीतशास्त्रार्थरतोऽतिदाता।
हृताङ्गराजोऽनिलरुक्कुभार्योऽलसो व्ययी स्वक्षिकटिस्वतीर्थः॥ २८॥
धर्मप्रवासी नृपशिल्पपण्य शौर्यार्जितस्वो जनकोङ्गनानाम्।
सद्भावभाक् क्षुद्रचलः कुटुम्बी स्त्रीणां वशो दुःखजनः शठारिः॥ २९॥

अथ कुम्भलग्नफलम्

लग्ने घटे विस्फुटिताग्रघोणो नीचः कुलीनः कलिकृत्स्वतन्त्रः।
क्रोधी पिपासुः कफमारुतात्मा क्षोणीहितार्थः पिशुनः कुकीर्तिः॥ ३०॥
प्रभूतकर्मेष्टजनो जनानां बह्वालसो नष्टसुहृत्कुटुम्बः।
स्त्रीद्यूतपारुष्यरतः प्रवासी व्ययी शठो मातृभिरर्दितश्च॥ ३१॥
न गर्हितां कर्मणि दुष्टशीलां स्त्रीं कर्मवान् विग्रहकारिणीं च।
प्राप्नोति मित्रानहितान् शठांश्च विद्वेषिणः श्लेमगदाभिभूतः॥ ३२॥

अथ मीनलग्नफलम्

लग्ने झषे कुट्टनकर्मरक्तस्स्वदोषभागी विवृताननश्च।
पापाभि प्रैप्सुर्वृतसत्वमेधा शौचश्रुताचाररतो विनीतः॥ ३३॥
गीताङ्गनाकार्यसुशिल्पवृत्तः कन्याप्रजः प्रत्ययकीर्तियुक्तः।
दुर्मषणः स्फीतचलत्कुटुम्बो धन्यः स्थिरो भ्रातृजनेऽतितेजाः॥ ३४॥
कफानिलात्मा व्यजनो हि धन्यः फलक्रियाभिः सहितोऽत्युदारः।
क्षुद्रोगशत्रुर्मृदुवल्गुहस्तो व्यालान्यसृग्रुग्विषकर्षिताङ्गः॥ ३५॥

अथ लग्नगतहोराफलम्

तत्रादौ सूर्यहोराफलम्

होरायां सवितुः कुवृत्तिनिरतो धूर्तो विरूपः खलः।
पापात्मा मलिनः सुखार्थरहितः क्रूरो गुणैर्वर्जितः।
प्रेष्यः शीघ्रगतिर्गभीरहृदयः कामी परस्त्रीजितो।
देवब्राह्मणनिन्दकोऽतिमुखरः स स्याददृश्यो नरः॥ १॥

अथ चन्द्रहोराफलम्

शान्तः सर्वगुणान्वितः स्थिरमतिर्नित्यं सुहृत्पूजको ।
नानारत्नवराङ्गनात्मजधनैर्युक्तः सुवेषः शुचिः ।
त्यागी मानरतः स्वकर्मनिरतः पात्रं धरित्रीपतेः ।
होरायां रजनीकरस्य च भवेत् भृत्यप्रियो मानवः ॥ २ ॥

अन्यच्च

होरा यदा रात्रिपतेर्विलग्ने तदा प्रकृष्टं सुखिनं गुणाढ्यम् ।
सुदुष्टचित्तं सुतरां कृशाङ्गं पुत्रैर्विरोधं चलवित्तयुक्तम् ॥ ३ ॥
रवेः स्वदेशस्थितिदा होरा चन्द्रस्य चैव हि ।
विदेशे तत्र लाभं स्याच्छुभदृष्टौ न चान्यथा ॥ ४ ॥

मेषादिराशीनां पृथक्-पृथक् होराफलमाह

मेष

रक्तोत्कटदृक् क्रूरो धनपः शुकनासिकोग्रदारतः ।
पीनोन्नतः प्रचण्डस्तस्करनाथः क्रियादिहोरायाम् ॥ ५ ॥

चौरः प्रमादबहुलः खराग्रपादाङ्गुलिर्द्वितीयायाम् ।
स्निग्धायताक्षचतुरः, पृथुपीनतनुः सुमेधाश्च ॥ ६ ॥

वृष

सौम्यो विशालचक्षुर्ललाटवक्षाः प्रगल्भ रतिवश्यः ।
स्थूलास्थितनुर्वृषभप्रथमार्धे स्याद्वपुष्मांश्च ॥ ७ ॥

पृथ्वायतवृत्ततनुमुदारसत्वं सुमूर्द्धजं जनयेत् ।
व्यस्तकटिं वृषभास्यं वृषभे होराद्वितीयायाम् ॥ ८ ॥

मिथुन

मध्यायतोऽतिदक्षो मध्यतनुर्मृदुशिरोरुहांघ्रिश्च ।
मिथुनाद्यर्धेशूरः सुरतेप्सुः स्याद्धनी प्राज्ञः ॥ ९ ॥
परदारदत्तदेहो भवेन्नृमिथुनद्वितीयहोरायाम् ॥ १० ॥

कर्क

उद्धतमूर्तिः सुशिराः प्रगल्भधीर्मन्ददृक् चलाङ्गशठः ।
श्यामतनुः सुकृतघ्नो भग्नाग्ररदः कुलीरहोरायाम् ॥ ११ ॥
द्यूतेरतोऽध्वनिरतः पृथुवक्षाः सत्प्रमाणसम्पन्नः ।
कठिनशरीरः क्रोधी जायेत कुलीरभद्वितीयायाम् ॥ १२ ॥

सिंह

रक्तान्तदृक् प्रगल्भो गुरुरायतविग्रहश्च सिंहाद्ये ।
जिह्मस्वभावसुखभागन्तस्थिरकार्यसत्वश्च ॥ १३ ॥
स्त्रीमृष्टपानभोजनवस्त्रेप्सुर्बहुविचेष्टकठिनाङ्गः ।
दाताध्वरतोऽपसुतो भोगी स्थिरसौहृदोऽन्त्यार्धे ॥ १४ ॥

कन्या

सुकुमारमूर्तिः कान्तः, सुवाक्यगीताङ्गनारतिर्मधुरः ।
गन्धर्वविद्विनीतः सुभगः पूर्वार्धजः षष्ठे ॥ १५ ॥
सेवालेख्यलिपिज्ञः क्षयवृद्धियुतः सुखीद्वितीयार्धे ॥ १६ ॥

तुला

वृत्तानन उच्चनसस्त्वसितायतसुनयनो विलासी स्यात् ।
पीनायतोऽस्थिसारो धनवान् स्वजनप्रियस्तुलाद्यर्धे ॥ १७ ॥
वह्वर्थभाक् स्थिरार्धः श्यामाकुञ्चितशिरोरुहश्च शठः ।
वृत्ताक्षस्त्वपराधसुत्वग्घोनाग्रपादश्च ॥ १८ ॥

वृश्चिक

रक्तान्तपिङ्गदृष्टिः साहसकर्मान्वितो रणेशूरः ।
दुष्टस्वभावरामाप्रियोऽर्थभाग्वृश्चिकाद्यर्धे ॥ १९ ॥
विस्तीर्णोपचितायतपीनाङ्गः क्ष्माधिपोपसेवी स्यात् ।
बह्वृणमित्रसमेतः स्फुटिताक्षो वृश्चिकापरा यात् ॥ २० ॥

धनु

दारित पृथुमुखवक्षाः परिकुञ्चित नेत्रगण्डः स्यात् ।
बाल्ये त्यक्तात्मगुरुश्चापाद्यर्धे तपस्वी च ॥ २१ ॥
पद्माक्षो दीर्घमहाबाहुः शास्त्रार्थवित्सुमूर्तिः स्यात् ।
वाक्सुभगो धन्योऽपि च धनुरपरे निवतो यशस्वी च ॥ २२ ॥

मकर

श्यामो मृगाक्षधन्यः स्त्रीष्वजितः सौम्यमूर्तिशठ आढ्यः ।
मृष्टाशनः सुचेष्टो मृगाद्यभागेऽनूच्चघोणः स्यात् ॥ २३ ॥
रक्तान्तदृष्टिरलसा गुरुदीर्घाटनपरो भवति मूर्खः ।
श्यामो रोमचितास्तीक्ष्णः सहसः सुरौद्रकर्मा च ॥ २४ ॥

कुम्भ

स्त्रीमित्रभागरसविन्मृदुलोऽल्पसुतश्च सद्गुणः शूरः ।
ताम्रो भास्वरवर्णो यानमतिः कुम्भपूर्वार्धे ॥ २५ ॥
आताम्रदारिताक्षः कृशः स्थिरोऽत्यल्पमूर्तिरलसः स्यात् ।
नैकृतिकः सुविषादी कृपणः कुम्भापरे सुशठः ॥ २६ ॥

मीन

ह्रस्वः पृथु चारुतनुर्महाल्लाटो वृहद्वदनवक्षाः ।
स्त्रीदयितो मीनार्धे प्रथमे सुयशाः क्रियापटुः शूरः ॥ २७ ॥
दाता सुतुङ्गनासो निपुणो मेधान्वितः शुभदनेत्रः ।
नृपदयितः स्त्रीसुभगश्चारुर्मीनापरे सुवाक्यः स्यात् ॥ २८ ॥

अत्र किंचिद्विशेषः

चन्द्रार्कयोरेकतमे बलिष्ठो, होरापतिं पश्यति केन्द्रगं वा ।
होरा यथोद्दिष्टफलप्रदात्री स्यादगर्भसंस्थासु समुद्भवेषु ॥ २९ ॥
होरापतौ पूर्णबले च होरे होरागुणं स्वं लभते प्रसूतः ।
स्वस्वामियोगे क्षणतः फलं स्याद्भावोद्भवं श्रेष्ठमतोऽन्यथान्यत् ॥ ३० ॥

अथ सूर्यहोरायां ग्रहाणां फलानि

तत्रादौ सूर्यहोरायां सूर्यफलम्

होरांगतोऽर्कः प्रकरोति तैक्ष्णं स्वपित्तरोगं स्वजनापमानम् ।
इष्टैर्वियोगं कलहं च दुःखं धनक्षयं वैरिबलप्रभूतम् ॥ ३१ ॥

सूर्यहोरायां चन्द्रफलम्

होरांगतोऽर्कस्य करोति चन्द्रो नरं सकामं वनिताजितं च ।
दोषात्मकं बन्धुजनैर्विमुक्तं सव्याधिदेहं रिपुवर्गगम्यम् ॥ ३२ ॥

भौमफलम्

होराश्रितो वासरपस्य भौमो बन्धुप्रियं साहसकर्मशीलम् ।
नरं प्रसूते बहुरोगयुक्तं पित्ताश्रितं तप्ततनुं नितान्तम् ॥ ३३ ॥

बुधफलम्

होरां बुधो वासरपस्य जातस्तीव्रं शठं कामपरं विशीलम् ।
गतप्रतापं बहु पापरक्तं देवद्विजानां परिनिन्दकञ्च ॥ ३४ ॥

बृहस्पतिफलम्

होरां रवेर्देवगुरुः प्रयातः, करोति मर्त्यं बहुरोषयुक्तम् ।
लुब्धं स्ववाग्दोषयुतं सुतीव्रं सुगुप्तपापं परतर्ककं च ॥ ३५ ॥

शुक्रफलम्

होरां गतो वासरपस्य शुक्रः करोति मूर्खं विधनं विशीलम् ।
हिंसानृतस्तेयपरं प्रकामं पैशुन्ययुक्तं च विधर्मशीलम् ॥ ३६ ॥

शनिफलम्

होरां गतो वासरपस्य शौरिर्नरं प्रसूते वहुवैरियुक्तम् ।
प्रनष्टधर्मं विगताभिमानं दयाविहीनं परदारलुब्धम् ॥ ३७ ॥

अथ चन्द्रहोरायां ग्रहाणां फलानि

तत्रादौ चन्द्रहोरायां सूर्यफलम्

होरां गतो रात्रिपतेर्दिनेशो नरो विधत्ते सततं सुशीलम् ।
रोगैर्विमुक्तं विगतारिपक्षं प्रयाति बन्धुस्वजनैः प्रधानम् ॥ ३८ ॥

चन्द्रहोरायां चन्द्रफलम्

होरां गतो रात्रिपतिर्यदा स्वां तदा नरं शीलरतं करोति ।
स्वधर्मरक्तं नृपमानयुक्तं कृतज्ञमुत्साहितमप्रमत्तम् ॥ ३९ ॥

भौमफलम्

होराश्रितो रात्रिपतेर्महीजः करोति मर्त्यं विनयेन युक्तम् ।
भोक्तारमाढ्यं व्यवहारशीलं गतप्रसूतिं विगतारिपक्षम् ॥ ४० ॥

बुधफलम्

होरां गतो रात्रिपतेस्तु सौम्यो नरं प्रसूते सुभगं सुशीलम् ।
वसिष्ठवाग्बुद्धिगुणं नयज्ञं प्रियातिथिं नित्यमुदारचेष्टम् ॥ ४१ ॥

बृहस्पतिफलम्

चन्द्रस्य होराधिगतः सुरेज्यो नरं प्रसूते सुभगं मनोज्ञम् ।
स्थिरक्रियारम्भधनं शरण्यं धर्मस्वभावं दृढसौहृदं च ॥ ४२ ॥

शुक्रफलम्

होरां गतो रात्रिपतेस्तु शुक्रः सतां प्रियं स्फीतिधनं करोति ।
गन्धर्वलीलाश्रुतिगीतरक्तं विप्रप्रियं पार्थिववल्लभं च ॥ ४३ ॥

शनिफलम्

होरां गतो रात्रिपतेस्तु शौरिर्नरं प्रसूते बहुकीर्तियुक्तम् ।
सौन्दर्यसौख्यार्थसमृद्धिवन्तं प्रियं मनोज्ञं प्रणतं सुराणाम् ॥ ४४ ॥

इति होरायां ग्रहाणां फलानि ।

अथ विशेषः

होरायां रूपसौहार्दं पश्येज्जन्मनि सर्वदा ।
बहवो धनगाः श्रेष्ठास्तथा नेष्टा व्यये ग्रहाः ॥ ४५ ॥
होरेशश्चेत्सासद्ग्रहः सवक्रस्तदादृग्वक्रम् ।
वक्रंतथार्कविध्वोः सेन्द्रसतोर्विक्रतरदनरसनोष्ठम् ॥ ४६ ॥

होराफले श्रीवराहः

यातेष्वसत्स्वसमभेषु दिनेशहोरां
ख्यातोमहोद्यमवलार्थयुतोतितेजाः ।
चान्द्री शुभेषु युजिमार्दवकान्तिसौख्य-
सौभाग्यधीमधुरवाक्ययुतः प्रजातः ॥ ४७ ॥

तास्वेव होरास्वपरर्क्षगासु ज्ञेया नराः पूर्वगुणेषु मध्याः ।
व्यत्यस्तहोरा भवनस्थितेषु मर्त्या भवन्त्युक्तगुणैर्विहीनाः ॥ ४८ ॥

अथ द्रेष्काणफलम्

तत्रादौ लग्नगतद्रेष्काण फलानि

द्रेष्काणे दिवसेश्वरस्य मलिनः शूरोऽङ्गनावल्लभः
क्रूरः साहसिकः कुकर्मकुशलो मूर्खः कुपक्षग्रहः।
ह्वाशी गुरुतल्पगोऽल्पतनयो द्यूतक्रियासंरतः
पापात्मा कृपणः खलोऽतिमुखरः सः स्याददृश्यो नरः॥ १॥

अन्यच्च

त्र्यंशो यदा वासरपस्य लग्ने तदा सुतीव्रं जनयेन्मनुष्यम्।
कलिप्रियं दानरतं विशालं विद्वेषशीलं द्विजदेवतानाम्॥ २॥

द्रेष्काणे रजनीकरस्य सुतनुः सम्पूर्णचन्द्राननः
शिल्पज्ञो वहुभाषणो विधुरपूर्णश्चेत्कदापि क्षयी।
शास्त्रे मन्दरतिः सुशीलहृदयो वन्ध्वर्चितश्चंचलो,
धर्माधर्मरतो विदेशकुशलो स स्याददृश्यो नरः॥ ३॥

अन्यच्च

चन्द्रस्य लग्ने तु यदा त्रिभागस्तदा प्रसूते खलु भाग्यवन्तम्।
श्रियान्वितं भक्तिपरं गुरूणां विख्यातकीर्तिः सुतमित्रयुक्तम्॥ ४॥

द्रेष्काणे धरणीसुतस्य मलिनः क्रूरो विहीनो धनैः
पापात्मा पिशुनः सुतार्थरहितः स्यान्निष्ठुरो निर्दयः।
दुःशीलो बहुभाषणो क्षततनुश्चात्मंभरिः क्रोधयुक्
रोगार्तो परसेवको गुणगणः सन्त्याजितो मानवः॥ ५॥

अन्यच्च

त्र्यशांशको भूमीपतेस्तु लग्ने करोति मर्त्यं क्षतजार्तिदेहम्।
क्रूरस्वभावं हतबन्धुदारं प्रतापहीनं विषयार्दितं च॥ ६॥

द्रेष्काणे शशिजस्य बुद्धिकुशलः क्ष्मापालपूज्यः सदा।
दीर्घायुर्वलवानपत्यवहुलः शांतो यशस्वी शुचिः।
धर्मज्ञानरतः प्रमादरहितो नित्यं सतां वल्लभः।
शास्त्रज्ञः कुलभूषणो वहुधनत्यागी च तुष्टो नरः॥ ७॥

अन्यच्च

तृतीयभागः शशिजस्य लग्ने करोति सौम्यं सरुजं मनुष्यम् ।
न दीर्घसूत्रं न च वित्तहीनं सस्यादिकं भूरिधनं सदैव ॥ ८ ॥
द्रेष्काणे धिषणस्य यः शिशुरभूत् दीर्घायुरव्याधितो ।
बुद्धीशः प्रियदर्शनो गुणनिधिर्मुक्ताशयोर्धार्मिकः ।
मोक्षज्ञानपरः कृपालयतनुः शान्तः सुशीलः शुचिः ।
सुस्त्रीस्नेहरतोऽन्यदारनिरतः स्यात्सुन्दरः श्रीमयः ॥ ९ ॥

अन्यच्च

त्र्यंशो यदा देवपुरोहितस्य लग्ने प्रयातः प्रकरोति मर्त्यम् ।
तेजस्विनं सर्वसुखाधिवासं सुधार्मिकं प्रीतिकरं स्वपक्षे ॥ १० ॥
द्रेष्काणे भृगुनन्दनस्य सुतनु पात्रं धरित्रीपतेः ।
सर्वज्ञोऽपि जनानुरागकुशलो दाता सतां पालकः ।
मुक्तारत्नवराङ्गनात्मजघनैः स्फीतः कृपालुः शुचिः ।
शान्तः सत्यरतोऽपि मुक्तहृदयो धर्मानुरक्तो नरः ॥ ११ ॥

अन्यच्च

द्रेष्काणसंस्थश्च भृगोर्विलग्ने वित्तान्वितं संजनयेन्मनुष्यम् ।
शास्त्रानुरक्तं गतरोगपापं नृपप्रियं देवगुरुप्रसक्तम् ॥ १२ ॥
द्रेष्काणे रविनन्दनस्य मलिनः क्रूरो मृदुस्तस्करो ।
दुःशीलः कृपणः सुतार्थरहितः प्रेष्यैर्गुणैर्वर्जितः ।
पापात्मा गुरुतल्पगोऽपि पिशुनः स्यात् क्रोधनो निर्दयः ।
शोकार्तो मुखरः स्वरूपरहितः कामातुरो मानवः ॥ १३ ॥

अन्यच्च

शनैश्चरश्चापि त्रिभागसंस्थो लग्नस्य सूते कृपणं गतस्वम् ।
धर्मार्थहीनं सहजं न सौख्यं दयाविहीनं च करोति नूनम् ॥ १४ ॥

इति लग्नगतद्रेष्काणफलम् ॥

अथ पृथक् द्रेष्काणफलानि

तत्रादौ मेषस्य

दाता हर्ता दीप्तः क्षयोदयी सङ्गरप्रचण्डः स्यात् ।
प्रियविग्रहस्त्रिभागे मेषाग्रे बन्धुषूग्रदण्डश्च ॥ १५ ॥

स्त्रीचञ्चलो विहारी रतिमान् गीतप्रियो मनस्वी स्यात् ।
मित्रार्थभाक् सुरूपः स्त्रीवित्तरुचि द्वितीये च ॥ १६ ॥

गुणवान् परदोषकरो बलसत्त्वयुतो नरेन्द्रसेवी स्यात् ।
स्वजनप्रियोऽतिधर्मस्तृतीयभागे प्रियादरोऽज्ञश्च ॥ १७ ॥

वृषस्य

प्रियपानभोज्यनारीवियोगतप्तो वृषस्य पूर्वांशे ।
वस्त्राऽलंकारयुतो युवतिप्रकृतानुसारी स्यात् ॥ १८ ॥

सौम्यवपुस्त्रीसुभगो महाधरो रूपधनयुक्तः ।
धनवान् स्थिरो मनस्वी लुब्धस्त्रीणां प्रियो द्वितीये स्यात् ॥ १९ ॥

चतुरोऽल्पभाग्यवीरो मलीमसः स्याद्धनान्युपादाय ।
सन्तप्य ते तु पश्चाद्वृषभस्य भागे तृतीये च ॥ २० ॥

मिथुनस्य

मिथुनादिमे दृगाणे पृथूत्तमाङ्गो धनान्वितः प्रांशुः ।
कितवो गुणी विलासी नृपाप्तमानो वचस्वी स्यात् ॥ २१ ॥

ह्रस्वाननस्वरूपः सौम्यवपुः सूक्ष्ममूर्द्धजतनुः स्यात् ।
धन्यो मृदुर्महाधीर्द्वितीयभागे प्रतापवान् सुयशाः ॥ २२ ॥

स्त्रीद्वेषिणो वपुष्मान् महाशिराः शत्रुसंयुतः प्रांशुः ।
रूक्षनखाङ्घ्री करतलश्चलार्धविभृतो दृढस्तृतीये स्यात् ॥ २३ ॥

कर्कस्य

कर्कटकादिमभागे देवब्राह्मणरतश्चलागौरः ।
कृत्यकरश्च परेषां सुधीः सुमूर्तिः शुभाङ्गनः शुभगः ॥ २४ ॥

लुब्धस्याद्वदनपरः स्वप्नरतः स्त्रीजितोऽभिमानी स्यात् ।
सहजान्वितो विलासी चपलो बहुरुग् द्वितीये च ॥ २५ ॥

स्त्रीचञ्चलोऽर्थभागी विदेशनिरतः प्रियासवः साधुः ।
काननतोयानुरतो दुर्दृष्टिर्माल्यवांस्तृतीये स्यात् ॥ २६ ॥

सिंहस्य

सिंहादिद्रेष्काणे दाता भर्तारिर्निर्जिगीषुः स्यात् ।
बहुधनयोषित्सु सुहृद्बहुनृपसेवकः सुसत्वश्च ॥ २७ ॥

सुरुचिरकारी दाता स्थिरो वपुष्मान् रणेप्सुः स्यात् ।
सुखभाक् श्रुतिधर्मरुचिर्विस्तीर्णमतिर्द्वितीये च ॥ २८ ॥

लुब्धः परस्वहरणे कल्यः स्तब्धो महामतिः कितवः ।
नायततनुर्मूर्तिः स्यान्नैकापत्यः प्रगल्भोऽन्त्ये ॥ २९ ॥

कन्यायाः

श्यामः सुवाग्विनीतः प्रांशुः सुकुमारमूर्तिरबलाद्ये ।
स्त्रीभ्योऽर्थभागनिष्ठो दीर्घशिरा मधुसमाक्षश्च ॥ ३० ॥

धीरो विदेशभागी शिल्पकथापण्डितः समरशौण्डः ।
वाचाटः श्रुतवाक्यो वनौकसां सम्मतो द्वितीये स्यात् ॥ ३१ ॥

गीतापरार्द्धभागी सङ्गीतरतिर्नरेन्द्रदयितः स्यात् ।
ह्रस्वस्वरूपवेषश्चान्ते पृथुदृक् शिरस्कश्च ॥ ३२ ॥

तुलायाः

कन्दर्परूपनिपुणस्तुलादिभागेऽध्वसेवज्ञः ।
श्यामकला पण्यरतो नियोगधीरः सुमेधावी ॥ ३३ ॥

पङ्कजविशालनेत्रः सुरूपवाक् साहसः विलासी स्यात् ।
ख्यातः स्ववंशवर्धितवृद्धानुचरो द्वितीये च ॥ ३४ ॥

चपलः शठः कृतघ्नो विरूपजिह्मोपचितमूर्तिः ।
नष्टसुहृद्द्रविणयशाः स्वल्पमतिर्भागके तृतीये स्यात् ॥ ३५ ॥

वृश्चिकस्य

गौरः स्थिरः प्रचण्डो रणोत्कटः स्यान्नरो विशालाक्षः ।
स्थूलविशालशरीरः कलिप्रियो वृश्चिकाद्यांशे ॥ ३६ ॥
मृष्टान्नपानचतुरश्चलेक्षणो हेमगौरमूर्तिः स्यात् ।
कान्तः परवित्तयुतः शीलकलावान् द्वितीयेंऽशे ॥ ३७ ॥
निश्मश्रुरोमहिंस्रः पिङ्गाक्षमहोदरः प्रहर्त्ता च ।
सहजच्युतस्तृतीये पीवरबाहुः सुधीरहृदयश्च ॥ ३८ ॥

धनुषः

परिमण्डलाक्षवक्त्रो गणेषु मुख्यो धनुर्दृगाणाद्ये ।
स्वोपचितस्वाचारस्तथा मृदुर्भवति सञ्ज्ञातः ॥ ३९ ॥

शास्त्रार्थवित् प्रवक्ता क्रतुशतहर्ता द्वितीये च।
मन्त्रभृतां श्रेष्ठतमस्त्वनेकतीर्थायतनचारी ॥ ४० ॥

बन्धुप्रधानचतुरः सतां गतिर्धर्मभाक् तृतीयेऽपि।
कामी पराङ्गनाभाक् रूपयशोभाजनो विजिष्णुश्च ॥ ४१ ॥

मकरस्य

व्यालम्बभुजः श्यामः प्रथितयशो रूपकान्तिशठः स्मितभाषी।
मकराद्ये स्त्रीषुजितो वल्गुचेष्टधनयुक्तः ॥ ४२ ॥

अल्पवदनश्च मध्ये चलः परस्त्रीधनापहर्ता स्यात्।
चतुरः सतां गतिज्ञः प्रदानशीलो दुरन्तपादः स्यात् ॥ ४३ ॥

वाचालः कलुषकृशो दीर्घाङ्गपितृवियुश्च।
लभते विदेशगमनाद्व्यसनानि मृगमुखस्यान्ते ॥ ४४ ॥

कुम्भस्य

स्त्रीमानयशोभूतिः स्फीतप्रभवो घटस्याद्ये।
प्रांशुः कर्मसु निष्ठो धनवान्नृपसेवको जातः ॥ ४५ ॥

लुब्धः समर्थमधुरो गौरः पिङ्गोद्धताक्षहास्यधनः।
उद्घृष्टवचा मतिमान् बहुमित्रः स्याद् द्वितीये तु ॥ ४६ ॥

दीर्घः शठः प्रतापी कृशोऽल्पबाहुः सुतार्थभाक् स्तब्धः।
बह्वनृतोऽन्तर्विषमो विदारिताक्षो रतिविन्दन्त्ये ॥ ४७ ॥

मीनस्य

मधुपिङ्गाक्षो गौरो मेधावी सत्क्रिया रतिज्ञश्च।
सुखभागी मीनाद्ये जलचरयुगले विनीतश्च ॥ ४८ ॥

नार्युपचारप्रवरो मृष्टान्नरतिः परार्द्धकामी।
स्त्रीसञ्जनातिदयितो वदतां श्रेष्ठो द्वितीये तु ॥ ४९ ॥

श्यामः कलासु निपुणः पृथुपादसुहृतप्रदानश्च।
मृष्टान्नपानहास्यो मीनयुगान्त्ये भवेत्पुरुषः ॥ ५० ॥

इतीरितोऽयं स्वगुणस्वभावैः, द्रेष्काणकानां गुण चिन्हकल्प्यः।
द्रेक्कापतौ वीर्यवतीष्टदृष्टे द्रेक्काफलं निर्विकलं विदध्यात् ॥ ५१ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां द्रेष्काणे सूर्यफलमाह

सूर्यस्य द्रेष्काणे सूर्यफलम्

रोगाभिभूतं सविता करोति नरं त्रिभागे प्रचुरं स्वकीये।
उद्विग्नचित्तं परदेशभाजं, जयत्प्रतापं प्रबलं नितान्तम् ॥ १ ॥

चन्द्रस्य द्रेष्काणे सूर्यफलम्

त्र्यंशे विधोर्वासरपः प्रसूते धर्मिष्ठजंस्वं स्वजनं विपापम्।
गीतप्रियं सर्वधनं प्रयुक्तं, प्रभूतकोशं दयितं नराणाम् ॥ २ ॥

भौमस्य द्रेक्काणे सूर्यफलम्

द्रेष्काणगोऽर्को धरणीसुतस्य यदा प्रजातः प्रकरोत्पथारीन्।
असृग्व्यथा नीचसमागमञ्च पुत्रार्थहानिं सततं नराणाम् ॥ ३ ॥

बुधस्य द्रेक्काणे सूर्यफलम्

त्र्यंशे गतः सोमसुतस्य भानुः स्वधर्मशीलं प्रकरोति मर्त्यम्।
विलासिनीकामपरं सदैव विचित्रवाक्यं द्विजदेवभक्तम् ॥ ४ ॥

गुरोर्द्रेक्काणे सूर्यफलम्

बृहस्पतेस्त्र्यंशमनु प्रयातो भानुर्विधत्ते मनुजं विनीतम्।
प्रियातिथिं सर्वगुणैः समेतं मेधान्वितं वाक्यविशारदञ्च ॥ ५ ॥

शुक्रस्य द्रेक्काणे सूर्यफलम्

त्र्यंशस्थितो दैत्यपुरोहितस्य भानुर्विधत्ते सुखिनं मनुष्यम्।
स्त्रीवल्लभं देवगुरुप्रसक्तमरोगदेहं बहुसत्ययुक्तम् ॥ ६ ॥

शनेर्द्रेक्काणे सूर्यफलम्

द्रेष्काणमर्कोपगतोऽर्कजस्य पापं प्रसूतेः सरुजं कृतघ्नम्।
नरं सुतास्रव्यसनोपतप्तं दुःशीलिनं बन्धुजनैर्विमुक्तम् ॥ ७ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां द्रेष्काणे चन्द्रफलमाह

सूर्यस्य द्रेष्काणे चन्द्रफलम्

त्र्यंशे शशी वासरपस्य नित्यं करोति पापं बहुशत्रुयुक्तम्।
अल्पार्थसत्वं विगुणं हृतस्वं, दौर्भाग्यदेहं परदारलुब्धम् ॥ ८ ॥

चन्द्रस्य द्रेक्काणे चन्द्रफलम्

करोति विज्ञं बहुमित्रवित्तं पुत्रान्वितं बन्धुजनैः समेतम् ।
त्र्यंशे स्वकीये सुखिनं सुकान्तं निशाधिपो मर्त्यं मलाङ्किताङ्गम् ॥ ९ ॥

भौमस्य द्रेक्काणे चन्द्रफलम्

त्र्यंशे शशाङ्को विचरन् कुजस्य नरं प्रसूते विगतप्रतापम ।
हीनक्रियं दुःखशतैरुपेतं परार्थलुब्धं गतसौहृदं च ॥ १० ॥

बुधस्य द्रेक्काणे चन्द्रफलम्

द्रेष्काणमाप्तः प्रकरोति चन्द्रः सौम्यस्य सौम्यं सुभगं मनुष्यम् ।
विधाविनं सर्वगुणैः समेतं विद्यान्वितं सर्वकलासुदक्षम् ॥ ११ ॥

गुरोर्द्रेक्काणे चन्द्रफलम्

त्र्यंशेगुरो रात्रिपतिः प्रसूते शास्त्रानुरक्तं मनुजं सुशीलम् ।
नानासुहृत्संस्तुतमल्पकोपं प्रियातिथिं देवगुरुप्रभक्तम् ॥ १२ ॥

शुक्रस्य द्रेक्काणे चन्द्रफलम्

सितस्य चन्द्रो विचरन् त्रिभागे करोति मर्त्यं वरयानयुक्तम् ।
स्त्रीवल्लभं सत्यमुदारचेष्टं कलाधिपं पूज्यतमं नृपाणाम् ॥ १३ ॥

शनेर्द्रेक्काणे चन्द्रफलम्

शनेर्यदा त्र्यंशमनुप्रयातश्चन्द्रस्तदा रोगिणमेव धत्ते ।
दीनं दरिद्रं विकृतं सपापं महापदं निष्ठुरमेव मर्त्यम् ॥ १४ ॥

अथ द्रेष्काणे चन्द्रस्य फलविशेषः

कल्याणरूपगुणमात्मसुहृद् दृकाणे
चन्द्रोऽन्यगतस्तदधिनाथगुणं करोति ।
व्यालोद्यतायुधचतुश्चरणाण्डजेषु
तीक्ष्णोति हिंस्रगुरुतल्परतोऽटनश्च ॥ १५ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां द्रेष्काणे भौमफलमाह

सूर्यस्य द्रेष्काणे भौमफलम्

मुखाक्षिरोगोपहतं सुशीलं स्वल्पात्मजं क्लेशपरं खलं च ।
त्र्यंशे कुजो वासरपस्य तिष्ठन् करोति मर्त्यं विगतप्रतापम् ॥ १ ॥

चन्द्रस्य द्रेक्काणे भौमफलम्

क्रूरं खलं द्वेषिणमिष्टधमं ख्यातं नृपाणां स्वगुणैरुदारैः।
त्र्यंशे गतो रात्रिपतेर्महीजो नरं प्रसूते विगतारिपक्षम् ॥ २ ॥

भौमस्य द्रेक्काणे भौमफलम्

स्वत्र्यंशभागो विचरन् महीजो करोति मर्त्यं बहुरोगयुक्तम्।
परान्नरक्तं प्रवरप्रकोपं गतप्रतापं सततं कुशीलम् ॥ ३ ॥

बुधस्य द्रेक्काणे भौमफलम्

त्र्यंशे कुजः सोमसुतस्य तिष्ठन् गम्भीरसत्वं स्थितिवृद्धिमन्तम्।
नरं प्रसूते बहुवित्तयुक्तं नरेन्द्र सन्मानसमन्वितञ्च ॥ ४ ॥

गुरोर्द्रेक्काणे भौमफलम्

त्र्यंशे गुरोर्भूमिसुतः प्रसूते नरं विदग्धं प्रथितं कुवेषम्।
सुश्रूषकं देवगुरुद्विजानां प्रनम्रचित्तं मतिमन्तमेव ॥ ५ ॥

शुक्रस्य द्रेक्काणे भौमफलम्

त्र्यंशे कुजा भार्गवनन्दनस्य नरं प्रसूते वनितास्वभिष्टम्।
हिरण्यवस्त्रमणिहस्तियुक्तं क्रियारुचाभिः प्रयतं प्रगल्भम् ॥ ६ ॥

शनेर्द्रेक्काणे भौमफलम्

द्रेष्काणमार्के विचरन् महीजो, मूर्खं सदाचारगुणैर्विहीनम्।
प्रद्वेषशीलं प्रियविग्रहञ्च नरं प्रसूतेः सततं कुचैलम् ॥ ७ ॥

अथसर्वेषांग्रहाणां द्रेष्काणे बुधफलमाह

सूर्यस्य द्रेष्काणे बुधफलम्

त्र्यंशे बुधो वासरपस्य तिष्ठन् नरं प्रसूते परवादयुक्तम्।
क्रूरं हताशं सऋणं कुरूपं कूटानुरक्तं च सदासकामम् ॥ ८ ॥

चन्द्रस्य द्रेक्काणे बुधफलम्

त्र्यंशे बुधो रात्रिपतेः प्रयातो नरं प्रसूते विगतारिपक्षम्।
शुश्रूषकं देवगुरुद्विजानां लिपिप्रवीणं कलहप्रियञ्च ॥ ९ ॥

भौमस्य द्रेक्काणे बुधफलम्

बुधो यदा भूमिसुतस्य संस्थो, भागे तृतीये प्रकरोति मर्त्यम् ।
माङ्गल्यधर्मश्रुतिधर्मवाह्यं स्ववान्धवात्स्वल्पपदा विमुक्तम् ॥ १० ॥

बुधस्य द्रेक्काणे बुधफलम्

स्ववह्निभागेन्दुसुतः प्रसूते सुरूपदेहं सुभगं मनुष्यम् ।
यज्ञव्रतादिष्यनुरक्तचेष्टं, दातारमार्यं बहुमित्रपक्षम् ॥ ११ ॥

गुरोर्द्रेक्काणे बुधफलम्

तृतीयभागे सुरपूजितस्य बुधो विधत्ते प्रसभं मनुष्यम् ।
स्त्रीवल्लभं शुभ्रमलंघ्यवीर्य्यं प्रभूतकोशं विविधार्थयुक्तम् ॥ १२ ॥

शुक्रस्य द्रेक्काणे बुधफलम्

भागे तृतीये शशिजः सितस्य तिष्ठन्प्रसूते सुविदग्धमेव ।
मर्त्यं महाधामनिधिं गतारिं प्रसन्नचित्तं नृपवल्लभञ्च ॥ १३ ॥

शनेर्द्रेक्काणे बुधफलम्

त्र्यंशे शनेः सोमसुतः प्रयातः करोति नित्यं सऋणं मनुष्यम् ।
विवादिनं दुर्बलदेहसत्वं प्रवासिनं विग्रहविक्रमञ्च ॥ १४ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां द्रेष्काणे गुरुफलमाह

सूर्यस्य द्रेष्काणे गुरुफलम्

भागे तृतीये सुरराजमंत्री सूर्यस्यसूते कृपणं मनुष्यम् ।
क्रूरं क्रियाहीनमनःप्रधृष्यं निन्द्यं कुकर्मार्जितसम्पदञ्च ॥ १५ ॥

चन्द्रस्य द्रेक्काणे गुरुफलम्

जीवस्त्रीभागे रजनीकरस्य तिष्ठन्प्रसूते सुमनोज्ञरूपम् ।
नरं प्रसिद्धं बहुमानवित्तं प्रगल्भचित्तं द्विजदेवभक्तम् ॥ १६ ॥

भौमस्य द्रेक्काणे गुरुफलम्

त्र्यंशे गुरुर्भूमिसुतस्य धत्ते नृणां भयं वन्धुजनप्रसूतम् ।
पित्ताक्षिरोगं धनधान्यनाशं प्रभाषणं दस्युकृतं सदैव ॥ १७ ॥

बुधस्य द्रेक्काणे गुरुफलम्

त्र्यंशे गुरुसोमसुतस्य तिष्ठन् करोति मर्त्यप्रवरं प्रसिद्धम् ।
विद्याविनीतं बहुधर्मसक्तं सौम्याकृतिं सोम्यगुणैः समेतम् ॥ १८ ॥

गुरोर्द्रेक्काणे गुरुफलम्

त्र्यंशे स्वके देवगुरुः प्रसूते नरं सुशीलं विजितारिपक्षम् ।
क्षमान्वितं पार्थिवमानयुक्तं चतुष्पदाढ्यं प्रणतं गुरूणाम् ॥ १९ ॥

शुक्रस्य द्रेक्काणे गुरुफलम्

द्रेष्काणसंस्थो भृगुजस्य जीवो नरं प्रसूते बहुकाञ्चनाढ्यम् ।
नागाश्वभाजं वररत्नयुक्तं सुखान्वितं पार्थिववल्लभञ्च ॥ २० ॥

शनेर्द्रेक्काणे गुरुफलम्

रौद्रं परं स्वापहरं कुबुद्धिमनीष्टकर्माणममित्रवन्तम् ।
द्रेष्काणसंस्थो रविजस्य जीवो नरं प्रसूते बहुशोकभाजम् ॥ २१ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां द्रेष्काणे शुक्रफलमाह

सूर्यस्य द्रेष्काणे शुक्रफलम्

द्रेष्काणसंस्थो दिनपस्य शुक्रो नरं प्रसूते कठिनं गतस्वम् ।
कुयोषिताभ्यां गतसौख्ययुक्तं, क्षुद्रं नृशंसं बहुरोषिणञ्च ॥ २२ ॥

चन्द्रस्य द्रेक्काणे शुक्रफलम्

तृतीयभागे शशिलाञ्छनस्य तिष्ठन् भृगुः सौख्ययुतं प्रसूते ।
विद्याविनीतं पितृमातृभक्तं तेजस्विनं धर्मपरं कृतज्ञम् ॥ २३ ॥

भौमस्य द्रेक्काणे शुक्रफलम्

तृतीयभागे धरणीसुतस्य शुक्रश्चरन् पापरतं करोति ।
क्षुद्रोगवन्तं व्यसनैरुपेतं मायाविनं वञ्चनतत्परञ्च ॥ २४ ॥

बुधस्य द्रेक्काणे शुक्रफलम्

द्रेष्काणसंस्थः शशिजस्य शुक्रो नरं प्रसूते सुभगं मनोज्ञम् ।
रतिप्रगल्भं प्रियधूर्तदारं सुवर्णरत्नात्मजभागिनं च ॥ २५ ॥

गुरोर्द्रेक्काणे शुक्रफलम्

भागे तृतीये सुरपूजितस्य शुक्रश्चरन् श्रेष्ठतमं सुरूपम् ।
सत्यान्वितं सर्वकलासु दक्षं क्षमान्वितं प्रीतिकरं जनानाम् ॥ २६ ॥

शुक्रस्य द्रेक्काणे शुक्रफलम्

त्र्यंशे स्वकीये भृगुजः प्रसूते नरं प्रगल्भं धनिनं सुशीलम् ।
अध्यात्मविद्यानिरतं सुरूपं कुलप्रधानं व्यसनैर्विहीनम् ॥ २७ ॥

शनेर्द्रेक्काणे शुक्रफलम्

भागे तृतीये रविजस्य शुक्रः करोति मर्त्यं वधबन्धयुक्तम् ।
स्वबन्धुहीनं परदाररक्तं विद्वेषशीलं कुरतं कुसेव्यम् ॥ २८ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां द्रेष्काणे शनेः फलमाह

सूर्यस्य द्रेष्काणे शनिफलम्

द्रेष्काणसंस्थो दिनपस्य सौरः करोति कन्याप्रजनं मनुष्यम् ।
व्यायामभाजं विगतप्रतापं प्रसन्नशीलं सततं सुजिह्मम् ॥ २९ ॥

चन्द्रस्य द्रेक्काणे शनिफलम्

भागे तृतीये रविजः प्रसूते चन्द्रस्य मर्त्यं महदर्थयुक्तम् ।
विवेकिनं सर्वकलासुदक्षं विपक्षहीनं सुतलालसञ्च ॥ ३० ॥

भौमस्य द्रेक्काणे शनिफलम्

भागे तृतीये वनिजस्य सौरश्चौरं शठं प्रेष्यकरं प्रसूतेः ।
सुनिष्ठुरं पापरतं नृशंसं व्यपेतलज्जं गतसौहृदञ्च ॥ ३१ ॥

बुधस्य द्रेक्काणे शनिफलम्

द्रेष्काणसंस्थः शशिजस्य सौरः करोति मर्त्यं बहुशास्त्रयुक्तम् ।
विज्ञानिनं धर्मरतं प्रशंस्यं स्वदारतुष्टं गतसाध्वसञ्च ॥ ३२ ॥

गुरोर्द्रेक्काणे शनिफलम्

द्रेष्काणसंस्थः सुरपूजितस्य सौरः प्रसूते द्विजदेवभक्तम् ।
प्रियंवदं सर्वसहं प्रगल्भं महज्जनैः पूजितसाधुदारम् ॥ ३३ ॥

शुक्रस्य द्रेष्काणे शनिफलम्

भागे तृतीये रविजः प्रसूते शुक्रस्य तिष्ठन्प्रचुरान्नपानम् ।
लाभान्वितं धर्मपरं सुमित्रं हतारिपक्षं व्यसनैर्वियुक्तम् ॥ ३४ ॥

शनेर्द्रेष्काणे शनिफलम्

स्ववन्हिभागे रविजः प्रसूते नरं सदाचारमनल्पसौख्यम् ।
नृपात्मजैः प्रीतिकरं वदान्यं विमुक्तरोगं बहुमित्रयुक्तम् ॥ ३५ ॥

अथ विशेषः

द्रेष्काणे केन्द्रगः कुर्यादुच्चस्थो भूपतिं ग्रहः ।
स्वक्षेत्रगश्चमूनाथं मित्रगश्चापि वाग्मिनम् ॥ ३६ ॥

द्रेष्काणे मित्रतुङ्गस्थैः शुभखेटैः शुभं भवेत् ।
समस्तकर्मतो दुःखं विपरीते न संशयः ॥ ३७ ॥

शत्रुनीचाश्रिता ये च तेषां तत्तुल्यकेतनौ ।
व्रणे घातादिकं चापि वदेत्तदनुपूर्वकम् ॥ ३८ ॥

द्रेष्काणपो यत्र गृहे तदङ्क संख्याः सहोत्थाः स यदा ससौम्यः ।
ते जीविनोऽथेतरथा मृताः स्युस्तत्सौहृदाद्यं सहजैः सुखाद्यम ॥ ३९॥

चेत्पुंग्रहास्ते सहजा भगिन्यः स्युः स्त्रीग्रहाश्चेदथवा पुमङ्गम् ।
चेद्भ्रातृसौख्यं भगिनीसुखं तद्भेदे स्वघातोऽरिमृतौ तदीशे ॥ ४० ॥

त्र्यंशपोऽरिमृतिगोऽशुभयुक् चेन्मृत्युमेति सदृत्तरूपातैः ।
बन्धुवैरमसदिन्दुयुतश्चेद्रोमशः श्रवणपृष्ठगदीना ॥ ४१ ॥

चेदर्कभौमो मृतिगौ तदाढ्यौ मृतिं वदेद्विद्युत आतपाद्वा ।
विषान्मृतिः स्यान्मृतिगे गुरुभ्यां युतेऽरिगे त्र्यंशपतौ करेऽङ्कः ॥ ४२ ॥

तत्तद्रेष्काणगाः पापास्तथैव फलदामताः ।
द्वाविंशेऽङ्गादृकाणे तु तद्ग्रहादिवशाच्च्युतिः ॥ ४३ ॥

लग्ने दृकाणाधिपतिस्तु सौम्यः शुभग्रहैर्युक्तनिरीक्षितश्च ।
सत्कर्मकर्ता बहुकीर्तियुक्तः पापग्रहैः स्यादशुभश्च तत्र ॥ ४४ ॥

अथ लग्नगतमेषादिनवांश फलमाह

चौरः क्रियांशे सुखभाक् वृषांशे पुष्णाति विद्यां मिथुनांशके वा ।
कर्कांशके स्याद्धनवान् महांशः सिंहांशके क्लीवसमोऽङ्गनांशे ॥ १ ॥

शूरस्तुलांशे भृतकोऽष्टमांशे दासो हयांशे हिमगो वलिष्ठे।
पापो मृगांशे पिशुनोग्रचेष्टः कुम्भांशके मीनलवे प्रधानः ॥ २ ॥

अथ लग्नगतनवांशफले विशेषः—

दीर्घाकुञ्चित मूर्धजोसमतनुः गौरो गभीराशय—
स्तेजस्वी सुरतोपचारकुशलः पापानुरक्तः सदा।
स्तब्धः साहसिकोऽतिचञ्चलधनो रक्तोत्यधर्मः सुखी
क्रूरः स्यादरिमर्दनोऽल्पतनयो भानोर्नवांशे नरः ॥ ३ ॥

अन्यच्च

लग्नस्य भागे नवमे विवस्वान्नरं प्रसूते विजितं खलञ्च।
नीचानुरक्तं वृजिनैः समेतं जिह्मस्वभावं सततं विशीलम् ॥ ४ ॥

भवति कनककान्तिर्नातिदीर्घो न खर्वः
प्रविरलतनुरोमा वासवेषः सुदृष्टिः।
बहुधनपरिपूर्णो धर्मशीलो गुणज्ञो
विषयसुखसुवेशः शीतरश्मेर्नवांशे ॥ ५ ॥

अन्यच्च

नवांशको रात्रिपतेर्विलग्ने, करोति मर्त्यं बहुशो धनाढ्यम्।
कृष्याप्तवित्तं सुतसौख्ययुक्तं प्रियातिथिं सर्वजनप्रियञ्च ॥ ६ ॥

केशाग्रे कपिलः सुवृत्तनयनः पृष्ठेर्नकिंचित्तनौ
गौराङ्गः कुनखी व्रणोङ्कितशिरा कामी बली मत्सरी।
धूर्तः स्त्रीधनसंग्रहेऽतिकुशलः प्रायोऽल्पधर्मः सुखी
क्रूरः शत्रुविमर्दनोऽतिकृपणः स्याद्भूमिजांशे नरः ॥ ७ ॥

अन्यच्च

नवांशको भूतनयस्य लग्ने करोति मर्त्यं बहुदुःखयुक्तम्।
पित्तज्वरासृक्परिपीडिताङ्गं प्रतापहीनं सततं कुचैलम् ॥ ८ ॥

श्यामश्चञ्चललोचनः समतनुविस्तीर्णवक्षस्थलो
दीर्घाकुञ्चितमूर्धजोऽपिदशनश्रोणीभिराशोभितः।
शीर्णश्चक्रयविक्रयेषु कुशलो धीरो धनाढ्यः सुखी
दिव्यस्त्र्यम्बरमाल्यभूषणरतः स्याच्चन्द्रजांशे नरः ॥ ९ ॥

अन्यच्च

लग्ने नवांशः शशिनन्दनस्य, करोति मर्त्यं बहुवित्तयुक्तम् ।
मेधाविनं सर्वसुखाधिभाजं, विवेकिनं पण्डितमल्पवैरम् ॥ १० ॥
श्यामाङ्गकमलोदरः सुवदनो नीलोत्पलाभेक्षणः
प्रांशुः शोभनमूर्द्धजोऽति विमलः पाणौ सुरेखाङ्कितः ।
बुद्धीशो ह्यतिथिप्रियो बहुगुणः शूरोऽङ्गनावल्लभो
वित्ताढ्यो मधुरस्वरः सुरगुरोरंशे भवन्मानवः ॥ ११ ॥

अन्यच्च

नवांशके देवपुरोहितस्य लग्ने विधत्ते सुतवित्तसौख्यम् ।
करोति गीते निपुणं मनुष्यं, सदा नराणां कुरुते च पूज्यम् ॥ १२ ॥
रक्तोपान्तोऽनयसितनयनो मञ्जुकेशः सुमूर्तः ।
कम्बुग्रीवो भवति विकलः श्यामवर्णः सुनाभिः ।
शूरः श्रीमान्सुशीलः कविरतिसधनो दानशीलो गुणज्ञः ।
वस्त्रालङ्कारतुष्टः सुकुसुमनिरतो मानवो भार्गवांशे ॥ १३ ॥

अन्यच्च

नवांशको भार्गवनन्दनस्य लग्ने विधत्ते बहुपुत्रभोगान् ।
सुरूपचेष्टं गुणिनं समृद्धं दिव्याङ्गनाभोगसुखं सदैव ॥ १४ ॥
प्रविरलतनुशोभा बभ्रुकेशः कृशाङ्गो
भवति ललितनेत्रः श्यामवर्णः स्वतंत्रः ।
बहुगुणपरिपूर्णः पापशीलो विधर्मा
परिमितधनभागी मानवो भानुजांशे ॥ १५ ॥

अन्यच्च

नवांशकः सूर्यसुतस्य लग्ने नृणां विधत्ते बहु भूमिनाशम् ।
अर्थक्षयं न्यायमनन्तमुग्रं प्रपोषणं चौरक्षतं सदैव ॥ १६ ॥

अथ केवललग्नस्थ प्रथमादिनवांशफलम्

पिशुनश्चपलो धृष्टः पापकर्मरतः सदा ।
परेषां व्यसनासक्तश्चौरश्च **प्रथमांशके** ॥ १६ ॥

धार्मिकः सत्यवादी च नानाशास्त्रविशारदः ।
दृढव्रतो महोत्साही **द्वितीयांशे** भवेन्नरः ॥ १७ ॥

उत्पन्नविभवो भोक्ता संग्रामे विगतस्पृहः ।
गान्धर्वे प्रमदासक्तस्तृतीयांशकसम्भवः ॥ १८ ॥

चतुरंशकजातं स्मरणाद्वीक्षणादपि ।
सर्वस्वं संग्रहे नित्यं यत्किञ्चिद्दिविभूतले ॥ १९ ॥

सर्वलक्षणसम्पन्नो धनी भवति सर्वतः ।
दीर्घायुर्बहुपुत्रश्च यो जातः **पञ्चमांशके** ॥ २० ॥

स्त्रीनिर्जितोऽनपत्यश्च बहुमायो नपुंसकः ।
दृढवैरो महोत्साहो जातः **षष्ठे नवांशके** ॥ २१ ॥

विक्रान्तो मतीमान् शूरः संग्रामे वा पराजितः ।
दृढबुद्धिर्महोत्साहो यो जातः **सप्तमांशके** ॥ २२ ॥

स्वधर्मकुशलो दक्षः सिञ्जितात्मा जितेन्द्रियः ।
भृत्यानां पोषणे दक्षा यो जातश्चा**ष्टमांशके** ॥ २३ ॥

अष्टमांशकजातस्य ये गुणाः संप्रकीर्तिता ।
नवमेंशे प्रजातस्य त एव कथिता बुधैः ॥ २४ ॥

इति लग्ननवांश फलम्

अथ पृथक् पृथक् नवांशफलम्

अतोंऽशके लग्नगते तु वक्ष्ये वर्णस्वभावाकृतिलक्षणानि ।
प्रधानवीर्येंऽशपतौ शशीव तत्स्वामिराशि क्रमशो विधत्ते ॥ १ ॥

मेषस्य

अजसंस्थानमुखः स्यान्मेषाद्यांशेऽल्पनासिकाङ्गभुजः ।
चण्डध्वनिर्विरूपः संकुचिताक्षः कृशोऽक्षताङ्गश्च ॥ २ ॥

श्यामगुरुस्कन्धभुजो ह्रस्व ललाटः सुजत्रुकः स्फुटदृक् ।
दीर्घास्यनसो मृदुवाक् **द्वितयभागे** कृशांघ्रिसन्धिश्च ॥ ३ ॥

व्यालुप्तकेशगौरो व्यस्तभुजश्चारुनयननासश्च ।
वाक्पण्डितस्तृतीये जातस्तु कृशोरुजानुजंघश्च ॥ ४ ॥

विभ्रान्तदृक्प्रचण्डो ह्रस्वनटोऽटनखरांघ्रिरोमा च ।
अभ्रातृकः कृशः **स्याचचतुर्थे** नवभागजः पुरुषः ॥ ५ ॥

दृप्तो गजेन्द्रनयनः पृथुनासाभ्रूललाटको मध्ये ।
पीनोपचिताग्रतनुः खरतररोमाङ्कितनुकेशः ॥ ६ ॥

श्यामो मृदुर्मृगाक्षो गुरुः कृशास्फिक् कठोरु चरणः स्यात् ।
व्यस्तोदरकभुजांशः षण्ढो भीरुश्च बहुभाषी ॥ ७ ॥

दूर्वाङ्कुराम्भचपलः सितनेत्रः सप्तमे भवेत्पुरुषः ।
कुलटा पतिर्नृशंसो विशालविस्तीर्णमूर्तिः स्यात् ॥ ८ ॥

वानरमुख प्रवक्ता खरपिंगतनुश्च गुह्यगदः ।
हिंस्रोऽनृतघातरतः सुहृत्प्रयोग्रः सदाष्टमजः ॥ ९ ॥

दीर्घः कृशो विहारी व्यस्तललाटश्रवोऽश्ववदनश्च ।
बह्वभिधानाभिरतस्त्वनृजुर्नवमांशजो भवति ॥ १० ॥

इति मेषे ।

अथ वृषभस्य

समकृष्णतनुस्तब्धः पूर्वं मघान्त्येऽन्तकर्मा स्यात् ।
नीचः प्रकृतिविरुद्धो विषमाक्षिनिरीक्षणो वृषस्याद्ये ॥ ११ ॥

गम्भीरदृगलसात्मा विनतशिरावक्त्रकश्च लघुमेधाः ।
प्रतिकूलकर्म मिथ्याबहुप्रलापी द्वितीये स्यात् ॥ १२ ॥

मृद्वङ्गवान्वपुष्मान् सुनसस्पष्टायताक्षवृहदङ्गः ।
यज्ञादिकर्मनिरतः स्थिरपोष्णिकरस्तृतीय नवमांशे ॥ १३ ॥

ह्रस्वोदरः सुरोषो मेषाक्षः पिंगलस्त्वघनयुक्तः ।
परधनहरणाभिरतश्चतुर्थभागे वृषस्य नरः ॥ १४ ॥

व्यालः सुतुंगघोणो महर्षभाकारवक्त्रघनकेशः ।
स्यात्पञ्चमे विलासी बृहद्भुजस्कन्धकटिगौरः ॥ १५ ॥

स्वक्षस्थिरः सुकेशः स्निग्धतनुर्वल्गुवाक् प्रगल्भः स्यात् ।
माधुर्यहास्यनिरतः कृशः सनिपुणो भवेत्षष्ठे ॥ १६ ॥

मृतसुतयुवतीषु रतो मनाक्प्रलम्बाग्रनासिकाक्षः स्यात ।
उद्वद्धाङ्गः स्वजनद्वेषागुरुपादसूक्ष्मकेशश्च ॥ १७ ॥

व्याघ्रेक्षणः सुदनस्त्वजितस्फुटनासिकोऽल्पकर्मः स्यात् ।
उद्वृत्तनीलकेशोग्रनखो मुखरस्तथाष्टमजः ॥ १८ ॥

मान्योऽल्पसत्वभीरूः क्रोधी समरुचिरमूर्ति कितवः स्यात् ।
सञ्चितधनः प्रसिद्धः कृशस्त्वधस्तात्प्रलाप्यन्ते ॥ १९ ॥

इति वृषभे ।

अथ मिथुनस्य

रोमोपचितांस भुजो घना सितापाङ्गदृक् तथोच्चनसः ।
दूर्वाकाण्डश्यामः कृशाङ्घ्रिपाणिस्तृतीयभवनाद्ये ॥ २० ॥

घटशीर्षो शुचिकर्मा घातर्मध्यलग्न घोणः स्यात् ।
बहुभाषी बहुचेष्टो **द्वितीयभागे** तु विग्रहाधिपतिः ॥ २१ ॥

गौरोऽतिरक्तनयनः सुनासिकः समतनुः सुमेधाः स्यात् ।
दीर्घाननो सितभ्रूर्वाचा चतुरस्तृतीयेंऽशे ॥ २२ ॥

सुभ्रूललाटकामी नीलोत्पलमूर्ति विपुलवक्षाः स्यात् ।
सितवक्त्रो मृदुवक्रः प्रशस्तरोमाचितश्चतुर्थेंऽशे ॥ २३ ॥

पृथ्वाननो बृहत्स्फिक् पीवरवक्षोभुजश्च खलः ।
स्थूलशिरा मायावी सितानुकूलनयनस्तु **पंचमजः** ॥ २४ ॥

मध्वीक्षणः प्रलापी व्यस्तललाटः समस्सुतनुः ।
कितवखलश्च रुधिरोष्ठरदः **षष्ठे** तु सत्वयुतः ॥ २५ ॥

ताम्रारुणाक्षवर्णः समुन्नताक्षो विशालवृक्षाः स्यात् ।
शिक्षासु शिल्पनिपुणा हास्यरतिः **सप्तमे** जातः ॥ २६ ॥

श्यामो गुरुर्मनस्वी ललितो मधुराभिधानश्च ।
व्यस्तविवृद्धशरीरो दीर्घासितदृक् कलाविद**ष्टमजः** ॥ २७ ॥

वृत्तासितदृक् सुतनुः सिद्धो मेधाबलो रतिज्ञः स्यात् ।
विज्ञानकाव्यनिरतो **नवमे** जायेत मिथुनस्य ॥ २८ ॥

इति मिथुने ।

अथ कर्कस्य

निर्मलचारुसुगौरः सुमूर्द्धजः स्याद्विशालकुक्षिश्च ।
मङ्गलमुखोन्नताक्षस्तन्वङ्गभुजः **कुलीराद्ये** ॥ २९ ॥
रक्तच्छविचरणोढः कलाप्रियः स्याद्विडालमुखनेत्रः ।
कर्किद्वितीयभागे त्यागी कृशजानुजंघश्च ॥ ३० ॥

गौरः सुनेत्रवाग्मी सुकुमारः स्थूल योषिदङ्गश्च ।
धीमात्मृदुकर्मरतस्तृतीयभागे भवेदलसः ॥ ३१ ॥

श्यामच्छविर्नतभ्रू विलास पीनोन्नतः सुनासाक्षः ।
क्षीणः पुरुषो दाता सुजातिकार्यश्चतुर्थे स्यात् ॥ ३२ ॥

घण्टाशिरो नतास्यः सुसंहतभ्रूः सुदीर्घबाहुः स्यात् ।
सेवारतो विकर्मा **मध्ये** दुर्मर्षणोऽल्पमेधाश्च ॥ ३३ ॥

दीर्घविशालशरीरः प्रशस्तनयनो बहुप्रतापः स्यात् ।
गौरः सुवंशघोणो वक्ता **षष्ठेच** पृथुदन्तः ॥ ३४ ॥

भिन्नशिरोरुहरोमा बृहत्तनुः स्यात्सिरालजंघश्च ।
परगृहरक्षणशिलः काकाकारश्च **सप्तमजः** ॥ ३५ ॥

घण्टाशिराः कुशिल्पी सुमुखभुजाङ्गश्च कूर्मगतिः ।
मध्यविलग्ननसः **स्यादष्टमभागेतु** कृष्णश्च ॥ ३६ ॥

गौरो झषनेत्रगुरुर्मृदूदरोऽथ पृथुपीनवक्षाः स्यात् ।
दीर्घहनुर्लवोष्ठो महोरुकृशजानुगुल्फो**ऽन्त्ये** ॥ ३७ ॥

इति कर्कटे

अथ सिंहस्य

मन्दोदरः प्रचण्डो रक्ताग्रनसो बृहच्छिराः शूरः ।
उन्नतमांसलवक्षाः सिंहे **प्रथमे** भवेद्भागे ॥ ३८ ॥

उन्नतविततललाटश्चतुरस्रतनुर्विलोमनेत्रश्च ।
दीर्घभुजोन्नतवक्षाः पृथूग्रघोणो **द्वितीयेंशे** ॥ ३९ ॥

रोमान्वितायतभुजश्चकोरनयनश्चलस्त्यागी ।
उन्नासिकस्**तृतीये** स्निग्धतनुर्वाहुवृत्तगलः ॥ ४० ॥

घृतमण्डगौरगात्रो दीर्घासितलोचनो मृदुशिरोजः ।
भिन्नध्वनिश्**चतुर्थे** पृथुकरश्चरणश्च भेक कुक्षिः स्यात् ॥ ४१ ॥

घण्टाशिरोऽल्पकेशो सितघोणाक्षश्च ।
लोमशाङ्गतनुः लम्बोदरप्रचण्डो दंष्ट्रोत्कटपीनहृन्**मध्ये** ॥ ४२ ॥

स्रस्ताल्परोममूर्तिः स्निग्धसमासितविलोचनो दीर्घः ।
श्यामस्त्रीणां चतुरो विकत्थनो वाक्यपण्डितः **षष्ठे** ॥ ४३ ॥

दीर्घाननः सिरालः पीनतनुः स्त्रिषु दुर्भगः कृष्णः।
स्यात्सप्तमे सुचण्डो रोमचितः कूटनिष्ठुराभाषी ॥ ४४ ॥

उत्कृष्टवाक् स्थिरांगः सुभगो गम्भीरदृग्विकर्माच।
निःस्वः कूटकरः **स्यादष्टमभागे** प्रसूतश्च ॥ ४५ ॥

रासभमुखोऽसिताक्षो व्यालम्बभुजः सुपार्ष्णिजंघश्च।
श्वासनिपीडितवक्षा **नवमांशे** जायते मनुजः ॥ ४६ ॥

इति सिंहे।

अथ कन्यायाः

सारंगाक्षो वक्ता प्रदानसम्भोगवान् धनाढ्यश्च।
श्यामोन्नतहृदयः स्यात्षष्ठे **प्रथमांशके** जातः ॥ ४७ ॥

पूर्णाननः सुचक्षुः स्निग्धो मृदुवादशीलश्च।
लम्बोदरश्चलः **स्याद्वितीयभागे** महोरुश्च ॥ ४८ ॥

स्फुटनासिका स्फुटः स्यात्प्रशस्तपादश्च पीनपादभुजः।
विस्पष्टभाक् च गौरः कन्यासु **सुचतृतीयेंशे** ॥ ४९ ॥

श्रुतवान् स्त्रीषु च रमते सुकुमारो मधुररक्तगौरश्च।
तीक्ष्णश्**चतुर्थभागे** प्रबोधनोधः कृशो द्विमूर्धा च ॥ ५० ॥

स्थूलोष्ठबाहुरुन्नततनुः पृथुशिरोरुहांसः स्यात्।
पञ्चमजः पृथुवक्षाः पराश्रयोद्बद्धजङ्घश्च ॥ ५१ ॥

स्निग्धच्छविः सुवाक्यः शस्ततनुः शास्त्रकृतमतिप्रचुरः।
लिपिलेख्यकलाभिज्ञः सुमनाः **षष्ठांशजो** विहारी च ॥ ५२ ॥

ह्रस्ववदनोन्नतांसः स्निग्धभुजोऽन्ते च केशगौरः स्यात्।
सप्तमजः पृथुजठरः पृथुतरचरणोऽम्बुभीरुश्च ॥ ५३ ॥

सुकुमारगौरदीर्घश्चित्रोन्नतदृक प्रचण्डमानी स्यात्।
व्यालम्बपीनबाहुः पिंगलरोमा**ष्टमे** **जातः** ॥ ५४ ॥

ख्यातो मृदुसुखविशालनेत्रो बलासदृशसत्वः।
चतुरो **नवमेंशेस्यान्नतांस** लेख्यादिविद्वांश्च ॥ ५५ ॥

इति कन्यायाम्।

अथ तुलायाः

गौरो विशालनेत्रः श्लाघी दीर्घाननोऽर्थगोप्ता स्यात् ।
नवपण्यकर्मकुशलस्तुलाधराद्यंशजः सुविख्यातः ॥ ५६ ॥

प्लुतमंडलनेत्रः स्यात् करालदन्तो निमग्नमध्यस्तु ।
युगले विस्मृतहृदयः कुतनुर्घनसंहतभ्रूश्च ॥ ५७ ॥

गौरोऽश्वमुखः सुरदो महोन्नताक्षः कृशोऽपिलब्धयशाः ।
दीर्घकरोरुहघोणस्तृ**तीयजः** स्यात्सुचरणश्च ॥ ५८ ॥

तन्वंसबाहुर्भीरुस्तून्नतदन्तकृशो मृगतरलदृक् ।
ह्रस्वनसः सुविषादी श्यामो शीलश्च**तुर्थजः** भवति ॥ ५९ ॥
गम्भीरदृक् स्थिरात्मा सुहृत्प्रियः **पञ्चमे** ह्यमानी स्यात् ।
खरकेशः समनेत्रो मध्यप्रतिलग्नघोणदृप्तश्च ॥ ६० ॥

पीनाङ्गो गौरः स्याद्विशालनेत्रः सुनासिका वंशः ।
स्निग्धनखः सुनयज्ञः **षष्ठेंशे** शास्त्रविज्जातः ॥ ६१ ॥

रक्तावदातमतिमान् गुरुह्रस्वतनु कृशो ललाटे स्यात् ।
लुब्धः प्रचण्डदुर्गः **सप्तमभागे** मनस्वी च ॥ ६२ ॥

तुगांसगण्डभोक्ता कठिनतनुर्दीर्घकृष्णभ्रूः ।
निर्निक्तवाक् प्रशान्तः सद्वक्षस्त्वर्धमस्तको**ऽष्टमजः** ॥ ६३ ॥

स्वक्षः प्रसन्नगौरः समचारुतनुः पटुः कलाभिरतः ।
दाक्षिण्यहास्यनिरतो विटस्वभावो **भवेन्नवमे** ॥ ६४ ॥

इतितुलायाम् ।

अथ वृश्चिकस्य

ह्रस्वोन्नतोष्ठघोणः सुललाटः स्यात् दृढाङ्गगौरश्च ।
दर्दुरकुक्षिर्घटकोऽष्टमराशौ **प्रथमनवभागे** ॥ ६५ ॥

गौरः पृथ्वायतहृद्बाहुस्ताम्रोग्रदृग् **द्वितीये** स्यात् ।
उद्वृत्तबलनिहन्ता साहसकृदनल्पकेशश्च ॥ ६६ ॥

प्राज्ञो दृढांसबाहुः प्रयत्नकोशो विशुद्धवाक्यः स्यात् ।
कानीनको वपष्मान् गौरो रुचिराधरस्**तृतीयेंशे** ॥ ६७ ॥

परदाररद्रोहरतिः क्षेप्ता धीरश्चतुर्थजो दीर्घः ।
श्यामोऽसितकेशाक्षो नटः प्रगल्भश्च पीनरोमांसः ॥ ६८ ॥

गम्भीरस्ताम्राक्षो मग्ननसः **पञ्चमे** धीरः ।
मृष्टोदरोग्रकर्मा व्यस्तदृढाङ्गो यशस्वी स्यात् ॥ ६९ ॥

धृष्टो वरिष्ठबुद्धि पृष्ठोच्चनसो गभीरसत्वः स्यात् ।
सुनसः प्रचण्डकर्मा **षष्ठे** दक्षोऽल्पकचघनभ्रूश्च ॥ ७० ॥

दारितमुखः स्थिराङ्गः प्रविकीर्णरदः शिरावनद्धाङ्गः ।
निम्नोदरः प्लुताक्षः स्रस्ततनुः **सप्तमे** भवेदंशे ॥ ७१ ॥

स्फुताग्रनसः कालो विपन्नशीलो मलीमसाङ्गः स्यात् ।
भिन्नोत्कटैः शिरोजैः सन्त्यक्तमतिस्त**थाष्टमजः** ॥ ७२ ॥

गौरो मृगाकृतिर्मृदुः प्रशान्तपिङ्गाक्षरोमदृढपीनः ।
सुसमेतश्च गुरूणां मतः प्रजातो **नवम** भागे ॥ ७३ ॥

इति वृश्चिके ।

अथ धनुषः

सुबृहन्नसोजदृष्टिः स्फुटाग्रभाषी सुदन्तरोमा च ।
गौरः सुबुद्धवृषण**श्चापाद्यांशे** प्रचण्डः स्यात् ॥ ७४ ॥

प्रोत्तुङ्गशिराः स्थिरविद्धिस्तीर्णाक्षो गुरुस्फिगुरुश्च ।
विकृताक्षनसो दीर्घो महाहनुः **स्याद्द्वितीयेंशे** ॥ ७५ ॥

शिक्षाशास्त्रमतिज्ञः प्रगल्भगम्भीरमूर्त्ति सुनयश्च ।
स्त्रीवल्लभो मनस्वी **तृतीयजो** हास्यशिल्पज्ञः ॥ ७६ ॥

दक्षो मधुमण्डलदृक् गौरः कृच्छ्र प्रवृद्धकुक्षिः स्यात् ।
प्राज्ञोऽटनः सुकेशः पृथुशुभमूर्त्ति**श्चतुर्थे** स्यात् ॥ ७७ ॥

पृथुकण्ठनेत्रवदनः प्रवृद्धहरिविग्रहो महाभ्रूः स्यात् ।
पीनोन्नतांसहन्ता **पञ्चमजो** रूढरोमदृढबुद्धिः ॥ ७८ ॥

स्निग्धा सितान्त पृथुदृक् महाललाटः सुवृत्तिकाव्यरतः ।
पृथुपीनमुखो हीनः **षष्ठे** विद्वान् कथाभिरतः ॥ ७९ ॥

श्यामो मृदुर्वचस्वी तुङ्गशिराः संग्रहानुसन्धिरतः ।
दीर्घो विशालनयनो दाक्षिण्यपटुश्च **सप्तमजः** ॥ ८० ॥

चिपिटाग्रनासिकः स्याद्विस्तीर्णशिराः सुबद्धवैरश्च ।
विभ्रान्तदृक् प्रलापी गुरुष्वभिमतोऽष्टमांशभवः ॥ ८१ ॥
गौरो हयाकृतिमुखो दीर्घासितदृक् तथाल्पवाक्यः स्यात् ।
सत्यः सतां विषादी **नवमे** कुटिलोरुजङ्घश्च ॥ ८२ ॥
इति धनुषि ।

अथ मकरस्य

विरलाग्ररदः श्यामः प्रभिन्नवाक् खरसिरोरुनखजानुः ।
गीताध्वहासनिरतो **मकराद्ये** बलधनः कृशाङ्गः स्यात् ॥ ८३ ॥
अलसशठः कुटिलनसो गीताभिरतिर्विशालदेहश्च ।
प्रचुरांगनासु निरतो बहुभाषी **स्याद्द्वितीयजः** कल्प्यः ॥ ८४ ॥
गन्धर्वकलाकामः ख्यातांगो गौरदृक् सुनसः ।
बहुमित्रबन्धुरतिमान् **तृतीयजः** स्वीष्टकर्मा च ॥ ८५ ॥
रक्तासितवृत्ताक्षो महाललाटभुजदुर्बलांगकरः ।
भवति हि विकीर्णकेश**श्चतुर्थजो** विरलदन्तवाक्यः स्यात् ॥ ८६ ॥
उद्दण्डघोणकुक्षिर्भवति हि भोगता सुनासिकावंशः ।
श्यामो वृत्तोरुभुजः **पञ्चमभागे** स्थिरारम्भः ॥ ८७ ॥
स्निग्धच्छविः सुवेषः कामरतः सूक्ष्मसमरदसुवक्ता ।
षष्ठांशजः पृथुहनुर्महाललाटः पुमान् भवति ॥ ८८ ॥
श्यामोऽलसः सुभाषी रूक्षितदेहो वृहत्तनुः कठिनः ।
मृदुपादपाणा **मतिमान्सप्तमजः** शालसम्पन्नः ॥ ८९ ॥
गम्भीरदृक्सुघोणो रक्तास्योभिन्ननखशिरोजः स्यात् ।
उद्बद्धतनुः शक्तो**ऽष्टमजो** घट पृथुललाटश्च ॥ ९० ॥
विपुलाक्षि हृत्सुमेधाः पूर्णमुखो गीतवाद्यनिरतश्च ।
माधुर्यसत्वयुक्तः साधु**र्नवमे**भवेत्सुजनः ॥ ९१ ॥
इतिमकरे ।

अथ कुम्भस्य

श्यामो मृदुकृशाङ्गः पीनहनुः शास्त्रकाव्यमतिः ।
कामी रतिमान्कान्तः **कुम्भस्याद्यांशके** भवेज्जातः ॥ ९२ ॥

त्वङ्नखदृष्टिशिरोजैः खरैश्च सुविपन्नवत्सलः साधुः।
दीर्घो विशिरा मूर्खो द्वितीयभागे भवेज्जातः ॥ ९३ ॥

संसक्ततनुः प्रमदाप्रियश्च वैडूर्यकान्तिधरः।
शास्त्रार्थवित्प्रयोक्ता तृतीयनवभागसंजातः ॥ ९४ ॥

कान्तानुरतो गौरो विदारितास्यो रिपुप्रणाशकरः।
गम्भीरधीरसत्वश्चतुर्थजो भोगरतियुक्तः ॥ ९५ ॥

स्पष्टार्थवित्कलाज्ञः खररोमधराङ्घ्रिरुग्रः स्यात।
संरुद्धगण्डकर्णः पञ्चमजः कृष्णवर्णश्च ॥ ९६ ॥

व्याघ्राननः प्रगल्भः कुञ्चितकेशः सुनिश्चितार्थश्च।
व्यालमृगोरगहन्ताषष्ठेंशेवल्लभो नृपते. ॥ ९७ ॥

मेषाक्षिमुखस्तीक्ष्णो ग्राम्यरतिस्त्रीषु परिभूतः।
पित्तरुगर्दितदेहः सप्तमजः सत्वधृतियुक्तः ॥ ९८ ॥

स्थिरसत्वबुद्धिरतिमान् नरेन्द्रयोधो नरेश्वरः शुभगः।
स्थूलरदो विपुलाक्षः कुम्भे स्यादष्टमेंशके पुरुषः ॥ ९९ ॥

श्यामः समग्रवदना विशेषितः सुधनदारपुत्रश्च।
नवमांशजः सुवाक्यः प्रथितः शक्तो भवेत्पुरुषः ॥ १०० ॥

इति कुम्भे।

अथ मीनस्य

गौरोऽपि रक्तदेहः प्रभामृदुस्त्रीमति प्रचलचित्तः।
ह्रस्वगलः कृशमध्यो मीनस्याद्यांशके पुरुषः ॥ १०१ ॥

पृथुपीनभुग्ननासः क्रियापटुर्मांसभुग्रुचिरदेहः।
काननपर्वतचारी बृहच्छिराः स्याद्द्वितीयांशे ॥ १०२ ॥

गौरः शठः सुचक्षुः शस्ततनुर्धर्मवान् सुविद्वांश्च।
दाक्षिण्यवान् विनीतस्तृतीयजो रूपवांश्चतुरः ॥ १०३ ॥

गुणवान् विपन्नशालः प्रवृद्धसेवी क्रियापटुर्विद्वान्।
सत्वादिको नयज्ञस्तुङ्गनसः स्याच्चतुर्थे तु ॥ १०४ ॥

दीर्घोऽसितः प्रतापी तुङ्गाङ्गः स्वल्पनासिकः स्वक्षः।
हिंसारतिः शुभरदो दुष्प्रसहः पञ्चमे प्रतापी स्यात् ॥ १०५ ॥

कान्तः प्रतापगुणवान् प्रसन्नवंशोऽल्पनासिको मानी ।
तिर्यग्वदनः ख्यातःषष्ठेंशे स्यात्तथा निपुणः ॥ १०६ ॥

पुरुषाभिमानापरक्तद्धर्मरुचिः श्रेष्ठगश्च सचिवः स्यात् ।
प्रबलो विषादशीलः शठोऽस्थिरः सप्तमे भागे ॥ १०७ ॥

दीर्घो वृहच्छिराः स्यात्कृशोऽलसो रूक्षनेत्रकेशश्च ।
मन्दात्मजोऽर्थनिरतो रणकुशलो ह्यष्टमे भागे ॥ १०८ ॥

ह्रस्वोमृदुः सुधीरो विशालवक्षोक्षिनासिकः स्निग्धः ।
विहिताङ्ग बुद्धिगुणवान् नवमेंशे स्यात्पुमान् ख्यातः ॥ १०९ ॥

इतिमीने ।

यत्प्रोक्तांशादिफलं द्वादशभागेऽपि तत्फलं वाच्यम् ।
सप्तमभागसमानं शेषेषु विनिर्दिशेत्प्राज्ञः ॥ ११० ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां नवांशे सूर्यफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य स्वनवांशे फलम्

नवांशके स्वे सविता प्रसूते नरं पराभूतमनल्पसौख्यम् ।
कलिप्रियं वक्रिणमद्यशीलं गतप्रभावं वहुरोगभाजम् ॥ १११ ॥

चन्द्रस्य नवांशे सूर्यफलम्

नवांशके रात्रिपतेर्विवस्वान्करोति मर्त्यं स्थित एव दक्षम् ।
सुतान्वितं ज्ञानयशोधनाढ्यं नृपप्रियं मुख्यतमं स्वपक्षे ॥ ११२ ॥

भौमस्य नवांशे सूर्यफलम्

कुजस्य भानुर्नवभागसंस्थो दरिद्ररोगाभिहतं प्रसूते ।
निराकृतं दीनमरुत्प्रकोपं पापानुरक्तं कृतजार्तिभाजम् ॥ ११३ ॥

बुधस्य नवांशे सूर्यफलम्

तिष्ठन्रविः सोमसुतस्य जातं नवांशके वातभयं करोति ।
जितारिपक्षं सुतयानुरक्तं नरं सदा भोगसुखैरुपेतम् ॥ ११४ ॥

गुरोर्नवांशे सूर्यफलम्

नवांशके देवपुरोहितस्य तिष्ठन् रविः सत्यधनं प्रसूते ।
तपोनुरक्तं कृतिनामभीष्टं जितेन्द्रियं सर्वसुखादिवासम् ॥ ११५ ॥

शुक्रस्य नवांशे सूर्यफलम्

ईत्यान्वितं बन्धुजनप्रधानं विवेकिनं धर्मपरंजितारिम् ।
नवांशके देवपुरोहितस्य नरं प्रसूते सविता प्रगल्भम् ॥ ११६ ॥

शनेर्नवांशे सूर्यफलम्

पराजितं निर्धनमल्पवीर्यं कामान्वितं बन्धुजनैर्वियुक्तम् ।
शनेर्नवांशे सविता प्रसूते नरं खलं दुर्गतिरोगभाजम् ॥ ११७ ॥

सूत्रम्

उच्चेऽर्के नीचांशे राजपुत्रोऽपि नीचतां गच्छति ॥ ११८ ॥

नवांशवीर्यप्रबलो विवस्वान् नरं प्रसूते सततं मनोज्ञम् ।
विचित्रमाल्याभरणं सुखाढ्यं प्रशान्तचित्तं निरुजं सुशीलम् ॥ ११९ ॥

सूर्यो नवांशात्मकवीर्यहीनो करोति मर्त्यं प्रियविग्रहं च ।
विषाग्निशस्त्रज्वरपित्तभाजं पितुर्जनन्या विकृत्तोपचारम् ॥ १२० ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां नवांशे चन्द्रफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य नवांशे चन्द्रफलम्

नवांशके रात्रिपतिर्यदा स्यात् सूर्यस्य दुष्टं मनुजं प्रसूते ।
स्त्रीचञ्चलं पापरतं सदैव प्रनष्टबुद्धि विजितं परैश्च ॥ १२१ ॥

चन्द्रस्य नवांशे चन्द्रफलम्

नवांशके स्वे प्रकरोति चन्द्रो नरं सुरूपं सुभगं सुशीलम् ।
स्त्रीसंमतं सर्वगुणैः समेतं विद्याविनीतं जनवल्लभञ्च ॥ १२२ ॥

भौमस्य नवांशे चन्द्रफलम्

नवांशके भूमिसुतस्य चन्द्रस्त्वसृग् रुगार्ति प्रकरोति मर्त्यम् ।
क्लीबं कृशं व्याधितमल्पसत्वं स्त्रीदुर्भगं कामपरं सदैव ॥ १२३ ॥

बुधस्य नवांशे चन्द्रफलम्

सौम्यस्य भागे नवमे शशाङ्कः करोति सौम्यं सततं सुखाढ्यम् ।
नित्यं सुहृद्देवगुरुप्रसक्तं महाधनं पण्डितमप्रमेयम् ॥ १२४ ॥

गुरोर्नवांशे चन्द्रफलम्

गुरोर्नवांशे विचरन् शशाङ्कः करोति मर्त्यं नयसत्यसारम् ।
विद्याविनीतं सुहृदां वरिष्ठं द्विजप्रियं रोगभयं व्यपेतम् ॥ १२५ ॥

शुक्रस्य नवांशे चन्द्रफलम्

शुक्रस्य भागे नवमे शशांको नरं प्रसूते बहुवित्तवन्तम् ।
पुत्रान्वितं पुण्यधनैरुपेतं प्रियाऽऽतिथिं सर्वजनाभिरामम् ॥ १२६ ॥

शनेर्नवांशे चन्द्रफलम्

चन्द्रः शनेर्भागमनु प्रयातो नवाख्यमत्यन्तदुरुक्तवाच्यम् ।
नरं प्रसूते विकृतस्वभावं परार्थ लुब्धं व्यसनैः समेतम् ॥ १२७ ॥

विशेषः

नवांशपुष्टः प्रबलः शशाङ्को नरं विधत्ते सुतयानयुक्तम् ।
रोगैर्विमुक्तं सुकुमारदेहं भोगाधिकं सर्वकलासुदक्षम् ॥ १२८ ॥
नवांशवीर्येण विवर्जितस्तु नयेन हीनं पुरुषं शशांकः ।
करोति दुष्टं च तथा कृतघ्नं भीरुरुजार्तं नृपपीडितञ्च ॥ १२९ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां नवांशे भौमफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य नवांशे भौमफलम्

नवांशके वासरपस्य भौमो लुब्धं कुयोषित्हृतसंङ्गचित्तम् ।
तिष्ठन् विधत्तेऽल्पसुखं मनुष्यं हृद्रोगिणं बह्वशिनं शठञ्च ॥ १३० ॥

चन्द्रस्य नवांशे भौमफलम्

चरन्नवांशे प्रकरोति भौमश्चन्द्रस्य कान्तं सुखमानयुक्तम् ।
सुहृद्द्विजातिथ्यपरं प्रशान्तं पूज्यं सतां बन्धुहिते रतञ्च ॥ १३१ ॥

भौमस्य नवांशे भौमफलम्

नवांशके स्वे प्रचरन् करोति भौमोऽतिहिंस्रं विकृतं मनुष्यम् ।
खड्गादियुद्धे निपुणं विशीलं विद्वेषिणं साधुजनस्य नित्यम् ॥ १३२ ॥

बुधस्य नवांशे भौमफलम्

बुधस्य भौमो विचरन्नवांशे करोति मर्त्यं प्रणतां द्विजानाम् ।
द्रव्यान्वितं धीरमुदारसत्वं विस्तीर्णसत्वं सुभगं सुखाढ्यम् ॥ १३३ ॥

गुरोर्नवांशे भौमफलम्

गुरोर्नवांशे विचरन्महीजः करोति मर्त्यं विविधान्नपानम् ।
शूरं प्रचण्डं रणरंगरक्तं गतद्विपं यानवरैः समेतम् ॥ १३४ ॥

शुक्रस्य नवांशे भौमफलम्

शुक्रस्य भागे नवमे तु भौमः करोति मर्त्यं रतिलुब्धसौख्यम् ।
सुहृद्गुरुप्रीतिकरं सुवाक्यं सुधर्मरक्तं बहुभृत्ययुक्तम् ॥ १३५ ॥

शनेर्नवांशे भौमफलम्

शनेर्नवांशे विगतो महीजो नरं प्रसूते बहुपापरक्तम् ।
गुह्याक्षिरोगोपहतं सुदुष्टं प्रियाविहीनं परतर्ककञ्च ॥ १३६ ॥

विशेषः

देवद्विजार्यार्चित लब्धकीर्ति शूरं सतामाश्रयमाप्तविद्यम् ।
भौमः स्वनन्दांशकवीर्ययुक्तः करोति मर्त्यं नृपमानयुक्तम् ॥ १३७ ॥

नवांशवीर्येण विवर्जितस्तु भौमः प्रसूते सरुजं मनुष्यम् ।
प्रपीडितं शत्रुकृतैर्विकारैः पराभवैर्मित्रकृतैस्तथैव ॥ १३८ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां नवांशे बुधफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य नवांशे बुधफलम्

चरन्नवांशे दिनपस्य सौम्यः करोति पापं विकृतं मनुष्यम् ।
स्त्रीसौख्यहीनं कलहप्रियञ्च द्यूतप्रियं चौर्यरतं विशीलम् ॥ १३९ ॥

चन्द्रस्य नवांशे बुधफलम्

चन्द्रांशके स्यान्नवमे यदा ज्ञः तदा विधत्ते सुमुखं नितान्तम् ।
ख्यातञ्च पुष्टं तमुदारचेष्टं जेतारिमान्यं सुहृदां सताञ्च ॥ १४० ॥

भौमस्य नवांशे बुधफलम्

नवांशके भूमिसुतस्य सौम्यो नरं विधत्ते रुधिरार्तदेहम् ।
वितर्कशीलं सुहृदामनिष्टं द्वेष्यं खलं पार्थिवपीडितञ्च ॥ १४१ ॥

बुधस्य नवांशे बुधफलम्

नवांशके स्वे प्रकरोति सौम्यः, सौम्यं सुरूपं सुभगं मनुष्यम् ।
देवद्विजातिप्रवणं प्रसन्नं प्रियातिथिं सर्वजनानुकूलम् ॥ १४२ ॥

गुरोर्नवांशे बुधफलम्

नवांशकस्थः सुरपूजितस्य सौम्यः प्रसूते सुखिनं मनुष्यम् ।
नानार्थलाभं प्रचुरप्रतापं सुमित्रयुक्तं प्रचुरं सुशीलम् ॥ १४३ ॥

शुक्रस्य नवांशे बुधफलम्

शुक्रस्य भागे नवमे बुधस्तु करोति मर्त्यं विवधार्थयुक्तम् ।
प्रभूतमित्रद्विजपूजनेष्टं सुतान्वितं नित्यमुदारचेष्टम् ॥ १४४ ॥

शनेर्नवांशे बुधफलम्

सौरस्य भागे नवमे वितिष्ठन् करोति सौम्यो निरुजं मनुष्यम् ।
कुशिल्पिनं साधुगुणैरयोग्यं पराङ्गनासक्तमनर्थयुक्तम् ॥ १४५ ॥

विशेषः

नवांशवीर्येण युतस्तु सौम्यो नरं प्रसूते सततं मनुष्यम् ।
शुचिक्षमासत्यरतं कृतज्ञं मनस्विनं सर्वसुखाधिवासम् ॥ १४६ ॥
नवांशवीर्येण विवर्जितो ज्ञः कठोरवाक्यं जनयेन्मनुष्यम् ।
विमुक्तदेहं सहजायरक्तं विगर्हितं शीलपरिक्रियाभिः ॥ १४७ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां नवांशे गुरुफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य नवांशे गुरुफलम्

प्रेष्यः कुकर्मातिखलस्वभावो धनैर्विहीनस्त्वथमन्दसत्वः ।
नवांशके वासरपस्य जीवो यदा तदा स्यान्मनुजः प्रचण्डः ॥ १४८ ॥

चन्द्रस्य नवांशे गुरुफलम्

नवांशके रात्रिपतेः सुरेज्यास्तिष्ठन्प्रसूते सुभगं मनुष्यम् ।
प्रियातिथिं प्रीतिकरं नराणां प्रसन्नचित्तं प्रमदास्वभीष्टम् ॥ १४९ ॥

भौमस्य नवांशे गुरुफलम्

मुखादिरोगैः व्यसनोपतप्तं भयान्वितं पापरतं प्रकाशम् ।
नवांशके भूमिसुतस्य जीवस्तिष्ठन्प्रसूतेऽतिखलं मनुष्यम् ॥ १५० ॥

बुधस्य नवांशे गुरुफलम्

बुधस्य भागे नवमे सुरेज्यस्तिष्ठन्प्रसूते सदयं मनोज्ञम् ।
वित्तान्वितं धर्मरतं सुवेषं शास्त्रार्थरक्तं गुरुभक्तियुक्तम् ॥ १५१ ॥

गुरोर्नवांशे गुरुफलम्

जीवो नवांशे च यदा स्वकीये तदा मनुष्यं नृपतुल्यवेशम् ।
वित्तान्वितं सौख्यकलत्रयुक्तं शास्त्रार्थयुक्तं सुजनार्थवन्तम् ॥ १५२ ॥

शुक्रस्य नवांशे गुरुफलम्

शुक्रस्य भागे नवमे सुरेज्यस्तिष्ठन्प्रसूते सुखिनं मनुष्यम् ।
तेजस्विनं कीर्तिकरं कृतज्ञं पुण्यात्मकं धर्मरतं सदैव ॥ १५३ ॥

शनेर्नवांशे गुरुफलम्

नासाक्षिरोगव्यसनैः समेतं श्रियाविहीनं विगतप्रतापम् ।
नवांशकस्थो रविजस्य जीवो नरं प्रसूते नृपपीडितञ्च ॥ १५४ ॥

विशेषः

नवांशवीर्येण विवर्जितस्तु सुरेन्द्रमन्त्री कुरुते भयार्त्तम् ।
पापादिरोगैः सहितं सुदीनं विहीनबुद्धिं विसुखं विशोकम् ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां नवांशे भृगुफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य नवांशे भृगुफलम्

नवांशकस्थो दिनपस्य शुक्रः करोति मर्त्यं विकलं सुभीरुम् ।
बहुद्विषं निष्क्रियमल्पवीर्यं प्रपञ्चयुक्तं गतसत्वसौख्यम् ॥ १५५ ॥

चन्द्रस्य नवांशे भृगुफलम्

नवांशकोभार्गवनन्दनस्तु चन्द्रस्य धत्ते तनयं नराणाम् ।
सद्योषितां वै धनधान्यलाभं, रिपुक्षयं बन्धुसमागमञ्च ॥ १५६ ॥

भौमस्य नवांशे भृगुफलम्

नवांशके भूमिसुतस्य शुक्रो नरं प्रसूते रुधिरार्द्दिताङ्गम् ।
प्रपीडितं दस्युनृपैः सदैव प्रद्वेषशीलं निकृतिप्रियञ्च ॥ १५७ ॥

बुधस्य नवांशे भृगुफलम्

बुधस्यभागे नवमे तु शुक्रः करोति मर्त्यं विबुधं सुधर्मम् ।
तीर्थाश्रयं देवगुरुप्रभक्तं प्रियातिथिं सन्नियमैरुपेतम् ॥ १५८ ॥

गुरोर्नवांशे भृगुफलम्

शुक्रो नवांशे सुरपूजितस्य करोति मर्त्यं प्रणतं द्विजानाम् ।
विवेकविद्यागमशास्त्रलुब्धं नृपप्रियं बन्धुजनैश्च सार्द्धम् ॥ १५९ ॥

शुक्रस्य नवांशे भृगुफलम्

नवांशके स्वे भृगुजः प्रसूते अध्यात्मविद्यानिरतं मनुष्यम् ।
स्वधर्मपूज्यं सुधिया समेतं हतारिपक्षं व्रतशीलिनञ्च ॥ १६० ॥

शनेर्नवांशे भृगुफलम्

स्थितो नवांशेऽर्कसुतस्य शुक्रो नरं प्रसूते सरुजं सदुःखम् ।
भार्यासुतार्थैः परिवर्जितञ्च प्रपीडितं नीचजनैर्विशेषात् ॥ १६१ ॥

विशेषः—

नवांशवीर्येण युतस्तु शुक्रः करोति मर्त्यं विजितारिपक्षम् ।
यज्ञप्रियं दानपतिं प्रसिद्धं निर्मुक्तदोषं स्वकुलप्रधानम् ॥ १६२ ॥
नवांशवीर्येण विवर्जितस्तु शुक्रः प्रसूतेऽतिकठोरचित्तम् ।
भयातुरं सत्यधनैर्विहीनं विद्वेषशीलं गतसौहृदञ्च ॥ १६३ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां नवांशे शनिफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य नवांशे शनिफलम्

सूर्यस्य भागे नवमेऽर्कसूनुः करोति मर्त्यं बहुतीव्रकोपम् ।
हिंस्रप्रनष्टैः सुजनैर्वियुक्तं प्रद्वेषशीलं परिभूतमन्यैः ॥ १६४ ॥

चन्द्रस्य नवांशे शनिफलम्

चन्द्रस्य भागे नवमेऽर्कसूनुः नरं प्रसूते सुकलत्रयुक्तम् ।
शास्त्रानुरक्तं क्रतुदानशीलं जितेन्द्रियं मंत्रविदां वरिष्ठम् ॥ १६५ ॥

भौमस्य नवांशे शनिफलम्

शनैश्चरो भौमनवांशसंस्थो नरं प्रसूते वचनस्वभावम् ।
पराङ्गनासंगरतं विधर्ममित्रैर्विहीनं सततं कुचैलम् ॥ १६६ ॥

बुधस्य नवांशे शनिफलम्

शनैश्चरः सौम्यनवांशसंस्थः करोति मर्त्यं सुखभोगतृप्तम् ।
कान्तं शुभं लाभपरं विधिज्ञं प्रियातिथिं यज्ञरतं प्रधानम् ॥ १६७ ॥

गुरोर्नवांशे शनिफलम्

शनिर्नवांशे सुरपूजितस्य नरं प्रसूते सुरविप्रभक्तम् ।
विवेकविद्यागमसत्ययुक्तं प्रसन्नवक्त्रं प्रचुरान्नपानम् ॥ १६८ ॥

शुक्रस्य नवांशे शनिफलम्

मार्त्तण्डजः शुक्रनवांशसंस्थः करोति तीर्थाश्रयमिष्टधर्मम् ।
प्राज्ञं कृतज्ञं बुधलोकसेव्यं जितेन्द्रियं शुभ्रमतिं मनोज्ञम् ॥ १६९ ॥

शनेर्नवांशे शनिफलम्

नवांशके स्वे प्रकरोति सौरो नरं सुदातारतरं विरोगम् ।
सुयोषिताभोगप्रवृद्धसौख्यं जितारिपक्षं स्थिरमुग्रवीर्यम् ॥ १७० ॥

विशेषः—

नवांशवीर्येण विवर्जितोऽर्किः करोति नित्यं बहुशास्त्रयुक्तम् ।
पूर्वं सुहिंस्रं धनधान्यहीनं प्रमादिनं पार्थिवपीडितञ्च ॥ १७१ ॥

अथ लग्नकुण्डल्यां पञ्चमादिस्थानेषु ग्रहफलम्

एकत्र पञ्चपुत्राणि धीस्थे तुर्ये कुजे गुरौ ।
द्विचतुःषट्सप्तमैश्च पुत्रदो ज्ञासिते शनिः ॥ १७२ ॥

सहजे च सिंहे सुतजीवकेतू षष्ठे शनिः सूर्यकलत्रसंस्थः ।
गर्भे च राहुर्दशमे च भौमः, सन्तानहानिश्च भवेन्नराणाम् ॥ १७३ ॥

ग्रहः क्रूरो व्ययाधीशो धर्मारिसहजे व्यये ।
दग्धे चक्री सुतस्थाने जातको म्रियते सुतः ॥ १७४ ॥

यावत्संख्या ग्रहाणां सुतभवनगता पूर्णदृष्टिर्यदा वा,
यावत्संख्या प्रसूतिर्भवति बलयुता पुंग्रहा पुत्रकथ्यम् ।

कन्या चन्द्रस्य शुक्रे हिमसुतरविजो गर्भहानिं करोति
केचिच्चन्द्राद्विचार्यं मुनिगणकथितं तद्विचिन्त्यं नवांशे ॥ १७५ ॥

नवांशलग्नात्सुतपस्तु सौम्यः शुभाऽशुभैर्युक्तविलोकितो वा ।
शुभैः सुताः स्युःप्रचुरा नरस्य क्रूरैर्न सन्तानसुखं तदा भवेत् ॥ १७६ ॥

नीचस्त्रीकं च नीचस्थे भावेशे तुङ्ग उच्चगः ।
कुर्याद्राजा नवांशे तु स्वनवांशे तदाधिपम् ॥ १७७ ॥

सेनानीर्मित्रनवांशे भोगगुणसंयुतश्च ।
शत्रुनवांशे दुःखितमल्पं तमलीनमसम् ॥ १७८ ॥

नीचांशेदास्यत्वं दशां प्राप्य फलं भवेत् ।
सर्वमेवं खगैश्चिन्त्यं फलं वाच्यं विचक्षणैः ॥ १७९ ॥

अथ स्त्रीजन्मसमये विशेषः

परस्परांशोपगतौ भवेतां महीजशुक्रौ जननेऽङ्गनायाः ।
स्वयं मृगाक्षीत्यभिसारिकेव प्रयाति कामाकुलितान्यगेहे ॥ १८० ॥

अथ लग्नगत द्वादशांश फलम्

जातो मेषः द्वादशांशे खलात्मा चौरः पापाचारधर्मानुरक्तः ।
स्त्रीवित्ताढ्यो रोगवानुक्षभांशे युग्मांशे तु द्यूतकृत्यः सुशीलः ॥ १ ॥

दुष्टाचारः कर्कटांशे तपस्वी सिंहे भागे राजकृत्यः सुशूरः ।
द्यूताचारः स्त्रीरतः कन्यकांशे व्यापारी स्यात्तौलिभांशे धनाढ्यः ॥ २ ॥

कीटांशके वधरुचिर्विटचोरनाथश्चापांशके पितृमही सुरदेवभक्तः ।
सस्याधिपो मृगमुखांशभवः सुभृत्यः कुम्भे खलस्त्वनिमिषे धनिकश्च विद्वान् ॥३॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां लग्नगतद्वादशांशफलमाह

मलिनश्चपलः क्रूरः स्वल्पायुरधनोऽलसः ।
कामी नरोऽल्पधर्मः स्याद् द्वादशांशे विवस्वतः ॥ ४ ॥

अन्यच्च

सूर्यांशको वासरपस्य लग्ने नरं प्रसूते बहुमानवश्यम् ।
लौल्यान्वितं धर्ममुखैर्विहीनं निस्त्रिंशमुग्रं चपलस्वभावम् ॥ ५ ॥

वन्धुनामाश्रयः प्राज्ञो धनाढ्यः प्रियदर्शनः।
शिल्पज्ञो बहुधर्मः स्याद् द्वादशांशे भवेन्नरः ॥ ६ ॥

सूर्यांशको रात्रिपत्तेर्विलग्ने करोति मर्त्यं बहुरत्नभाजम्।
नानार्थलाभैः सहितं सुशीलं कुलप्रधानं बहुमित्रयुक्तम् ॥ ७ ॥

पिशुनो मलिनो मूर्खः पापात्मा सुरतप्रियः।
अल्पधर्मो **महीजस्य** द्वादशांशे भवेन्नरः ॥ ८ ॥

अन्यच्च

सूर्यांशको **भूमिसुतस्य** लग्ने नरं प्रसूते रुधिरामयाढ्यम्।
पामादिरोगैर्व्यसनैः समेतं प्रचण्डयुक्तं रणकातरञ्च ॥ ९ ॥

सूर्यांशको **सोमसुतस्य** लग्ने नरं प्रसूते सुभगं सुशीलम्।
विद्यासु रक्तं गुरुदेवभक्तं परैरधृष्यं रसलालसञ्च ॥ १० ॥

अन्यच्च

सूर्यांशकश्चन्द्रसुतस्य लग्ने नरं सुवाते सुभगं मनुष्यम्।
विद्यासु रक्तं गुरुदेवभक्तं परैरधृष्यं रतिलालसञ्च ॥ ११ ॥

शुचिः शास्त्रार्थविद्वक्ता सुखी दीर्घायुरीश्वरः।
सुहृदामाश्रयीभूतो द्वादशांशे **बृहस्पतेः** ॥ १२ ॥

अन्यच्च

सूर्यांशको **देवगुरोर्विलग्ने** करोति मर्त्यं बहुशास्त्रयुक्तम्।
जनानुगं गीतयुतं विलग्नं प्रभूतमित्रं रणकोविदञ्च ॥ १३ ॥

शूरो बहुधनो भागी नृत्यगीतप्रियः सदा।
शुचिर्दाता क्षमी वक्ता द्वादशांशे **भृगोरभूत्** ॥ १४ ॥

अन्यच्च

सूर्यांशको **भार्गवनन्दनस्य** लग्ने प्रसूते सुभगं मनुष्यम्।
रूपान्वितं पार्थिवमानयुक्तं प्रियातिथिं मानधनैः समेतम् ॥ १५ ॥

पिशुनश्चपलो धूर्तः कामी परार्थलुब्धकः।
मलिनो हीनधर्मा स्याद् द्वादशांशे भवेन्नरः ॥ १६ ॥

सूर्यांशको **काश्यपनन्दनस्य** लग्ने प्रसूते रणरोगयुक्तम्।
नरं कुशीलं निजबन्धुहीनं शोकार्दितं दानयुतं सदैव ॥ १७ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां द्वादशांशे सूर्यफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य द्वादशांशे सूर्यफलम्

सूर्यांशके स्वे सविता प्रसूते नरं सुतीक्ष्णं परिभीतिचित्तम् ।
प्रभूतरोषं गत्तवीर्यमर्थं परं सुदक्षं, मतिऋद्धिहीनम् ॥ १८ ॥

चन्द्रस्य द्वादशांशे सूर्यफलम्

सूर्यांशके रात्रिपतेर्विवस्वान् करोति सौम्यं शुभकर्मयुक्तम् ।
विद्याविनीतं सततं सुखाढ्यं प्रसन्नचित्तं विभवैः समेतम् ॥ १९ ॥

भौमस्य द्वादशांशे सूर्यफलम्

प्रियैर्विमुक्तं वधबन्धयुक्तं पापानुरक्तं पुरुषं प्रसूते ।
सूर्यांशके भूतनयस्य भानुर्विहीनसत्यं परतर्ककञ्च ॥ २० ॥

बुधस्य द्वादशांशे सूर्यफलम्

सत्याधिकं सर्वसुखैः समेतं प्रियातिथिं ब्राह्मणसम्मतञ्च ।
सूर्यांशके सोमसुतस्य भानुस्तिष्ठन् प्रसूते मनुजं सनाथम् ॥ २१ ॥

गुरोर्द्वादशांशे सूर्यफलम्

स्त्रीवल्लभं गीतकलासु दक्षं भोगान्वितं वस्त्रविलेपनाढ्यम् ।
सूर्यांशके देवगुरो विवस्वान् करोति मर्त्यं विनयप्रधानम् ॥ २२ ॥

शुक्रस्य द्वादशांशे सूर्यफलम्

सुशिल्पिनं धर्मरतं सुदान्तं प्रियातिथिं सर्वसहं सुशूरम् ।
सूर्यांशके दैत्यगुरोः प्रसूते भानुर्नरं पार्थिवमानयुक्तम् ॥ २३ ॥

शनेर्द्वादशांशे सूर्यफलम्

क्लीबं कृशं पापरतं कृतघ्नं श्रिया विहीनं सततं कुचैलम् ।
करोति भानुर्बहुदुःखयुक्तं सूर्यांशकस्थस्तु शनैश्चरस्य ॥ २४ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां द्वादशांशे चन्द्रफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य द्वादशांशे चन्द्रफलम्

सूर्यांशकेऽर्कस्य निशाधिनाथो भयाधिकं दुःखयुतं मनुष्यम् ।
प्रमादिनं मित्रजनैर्विहीनं, सुदीर्घसूत्रं सततं कृतघ्नम् ॥ २५ ॥

चन्द्रस्य द्वादशांशे चन्द्रफलम्

सूर्यांशके स्वे प्रकरोति चन्द्रो धनान्वितं वाग्मिनमल्पशत्रुम् ।
नरं नितान्तं शुभपुत्रयुक्तं सुवाहनाढ्यं परपक्षहीनम् ॥ २६ ॥

भौमस्य द्वादशांशे चन्द्रफलम्

सूर्यांशके भूमिसुतस्य चन्द्रः करोति नित्यं बहुसौख्ययुक्तम् ।
विचक्षणं भोगयुतं सुवेषं, स्वधर्मरक्तं सततं सुशीलम् ॥ २७ ॥

बुधस्य द्वादशांशे चन्द्रफलम्

सूर्यांशके सोमसुतस्य सोमः सौम्यं प्रसूते सुखिनं मनुष्यम् ।
शिल्पज्ञमत्यद्भुतकर्मयुक्तं प्रियातिथिं विश्रुतमेव नित्यम् ॥ २८ ॥

गुरोर्द्वादशांशे चन्द्रफलम्

सूर्यांशके देवपुरोहितस्य नरं सुवेषं प्रकरोति चन्द्रः ।
नृपप्रसादं विनयैः समेतं सुचित्रयानं बहुमित्रयुक्तम् ॥ २९ ॥

शुक्रस्य द्वादशांशे चन्द्रफलम्

सूर्यांशके भार्गवनन्दनस्य नरं विनीतं प्रकरोति चन्द्रः ।
नृपप्रसादैः प्रचुरं समृद्धं हस्त्यश्वयुक्तं प्रचुरान्नपानम् ॥ ३० ॥

शनेर्द्वादशांशे चन्द्रफलम्

शनैश्चरस्यार्कविभागसंस्थो विधुर्विधत्ते चलसत्ययुक्तम् ।
कीनाशमालस्यतमं नितान्तं स्वबन्धुवर्गैः परिवर्जितञ्च ॥ ३१ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां द्वादशांशे भौमफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य द्वादशांशे भौमफलम्

रतिप्रियं कूटरतं कुशिल्पं चरं स्थिरं वा व्रणबन्धनञ्च ।
सूर्यांशके वासरपस्य भौमो नरं प्रसूते विटधूर्तचेष्टम् ॥ ३२ ॥

चन्द्रस्य द्वादशांशे भौमफलम्

सूर्यांशके रात्रिचरस्य भौमो नरं प्रसूते सुवपुः सुकान्तम् ।
उदारशीलं बहुसौख्यभाजं प्राज्ञं बहुभ्रातरमर्जितञ्च ॥ ३३ ॥

भौमस्य द्वादशांशे भौमफलम्

स्वद्वादशांशे विचरन्महीजो स्त्रीदुर्भगं प्रेष्यकमस्वतंत्रम् ।
स्त्रीरूपतुल्याकृति कर्मयुक्तं मसृग्मृगार्तव्यसनैः समेतम् ॥ ३४ ॥

बुधस्य द्वादशांशे भौमफलम्

व्यायामरामाम्बरभूषणाढ्यं ख्यातं स्थिरं स्फीतवराङ्गनाञ्च ।
सूर्यांशके सोमसुतस्य भौमो नरं प्रसूते नृपपीडितस्वम् ॥ ३५ ॥

गुरोर्द्वादशांशे भौमफलम्

प्रख्यातबुद्धिं सुखिनं स्वतन्त्रं कविं विवादेष्वनिवारतञ्च ।
सूर्यांशके देवगुरोः कुजस्तु प्रभूतवित्तं शुभगं प्रसूतौ ॥ ३६ ॥

शुक्रस्य द्वादशांशे भौमफलम्

स्त्रीणामभिष्टं मधुरं विनीतं दानोपचारादरमानयुक्तम् ।
सूर्यांशके भूमिसुतो भृगोश्च करोति नित्यं प्रणतारिपक्षम् ॥ ३७ ॥

शनेर्द्वादशांशे भौमफलम्

स्वबन्धुविद्वेषविवादशीलं बहुप्रलापं चपलं कुशीलम् ।
सूर्यांशकस्थो रविजस्य भौमः करोति मर्त्यं कलहानुरक्तम् ॥ ३८ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां द्वादशांशे बुधफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य द्वादशांशे बुधफलम्

सूर्यांशकस्थो विदधाति सौम्यो नृणां रवेः पापमतिं न सौख्यम् ।
कुमित्रसंगं रिपुपक्षवृद्धिं यशोविनाशं सुतसञ्चयञ्च ॥ ३९ ॥

चन्द्रस्य द्वादशांशे बुधफलम्

सूर्यांशके शीतकरस्य सौम्यो नरं विधत्ते विविधप्रतापम् ।
सुतार्थयुक्तं रतिसौख्यभाजं विशिष्टशीलं विनयैः समेतम् ॥ ४० ॥

भौमस्य द्वादशांशे बुधफलम्

सूर्यांशके भूमिसुतस्य सौम्यो नरं विधत्तेऽतिशठं विशीलम् ।
गतश्रियं वन्धुजनेन नित्यं पापात्मकं रोगसमन्वितञ्च ॥ ४१ ॥

बुधस्य द्वादशांशे बुधफलम्

सूर्यांशके स्वे प्रकरोति सौम्यो नरं प्रभुं शाश्वरतं सदैव।
कलासु दक्षं प्रणतारिपक्षं जितेन्द्रियं श्लाघ्यतमं सदैव ॥ ४२ ॥

गुरोर्द्वादशांशे बुधफलम्

सूर्यांशके देवपुरोहितस्य सौम्यः प्रसूते सुतरां सुशीलम्।
मर्त्यं महावृत्तसमृद्धियुक्तं प्रियातिथिं धर्मपरं सदैव ॥ ४३ ॥

शुक्रस्य द्वादशांशे बुधफलम्

सूर्यांशके चापि भृगोस्तु सौम्यः करोति मर्त्यं प्रचुरान्नकोशम्।
नृपप्रियं साधुजनानुरक्तं सद्धर्मशीलं बहुपुण्यसौख्यम् ॥ ४४ ॥

शनेर्द्वादशांशे बुधफलम्

सूर्यांशके सूर्यसुतस्य सौम्यः करोति दीनं कृपणं मनुष्यम्।
व्ययेन शीलं बहुरोगयुक्तं मायापटुं निर्दयनिष्ठुरञ्च ॥ ४५ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां द्वादशांशे गुरुफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य द्वादशांशे गुरुफलम्

सूर्यांशके वासरपस्य जीवो नरं प्रसूते निधनं विरूपम्।
अकीर्तिमन्तं बहुशत्रुपक्षं मित्रैर्वियुक्तं विसुखं विशीलम् ॥ ४६ ॥

चन्द्रस्य द्वादशांशे गुरुफलम्

सूर्यांशके देवगुरुः प्रसूते चन्द्रस्य तिष्ठन् धनिनं मनुष्यम्।
प्रियातिथिं पुत्रसुखार्थयुक्तं भूपालपूज्यं दयितं जनानाम् ॥ ४७ ॥

भौमस्य द्वादशांशे गुरुफलम्

वृहस्पतिर्द्वादशभागसंस्थो भौमस्य सूते प्रखलं मनुष्यम्।
विधर्मशीलं व्यसनैरुपेतं रोगार्दितं बन्धनभागिनञ्च ॥ ४८ ॥

बुधस्य द्वादशांशे गुरुफलम्

अर्कांशकस्थः शशिजस्य जीवो नरं प्रसूते प्रथितं नृलोके।
सत्याधिकं सर्वगुणैरुपेतं प्रभुप्रियं बन्धुजनस्य नित्यम् ॥ ४९ ॥

गुरोर्द्वादशांशे गुरुफलम्

स्वार्कांशकस्थः प्रकरोति जीवस्तिष्ठन्नरं सर्वसमृद्धिवन्तम् ।
पुष्टं जितारिं भयरोगमुक्तं रामास्वभिष्टं सततं सुशीलम् ॥ ५० ॥

शुक्रस्य द्वादशांशे गुरुफलम्

जीवो भृगोर्द्वादशभागसंस्थो नरं प्रसूते हयकाञ्चनाढ्यम् ।
प्रियातिथिं भोगिनमार्यशीलं प्रमादिनं वैरिजनस्य नित्यम् ॥ ५१ ॥

शनेर्द्वादशांशे गुरुफलम्

सूर्यांशके चेद्रविनन्दनस्य जीवः कुचैलं कुरुते मनुष्यम् ।
दीनं कुरूपं बहुदुःखभाजं प्रपीडितं दस्युभिरेवभूपैः ॥ ५२॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां द्वादशांशे शुक्रफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य द्वादशांशे शुक्रफलम्

सूर्यांशके तिग्मकरस्य शुक्रो नरं प्रसूते कुधिया समेतम् ।
प्रपीडितं नीचजनैर्विमुक्तं क्रोधात्मकं वादरतं नृशंसम् ॥ ५३ ॥

चन्द्रस्य द्वादशांशे शुक्रफलम्

शुक्रोर्कभागे शशलाञ्छनस्य नरं प्रसूते वरयानभाजम् ।
नृपप्रियं भोगिनमर्थवन्तं विहारवापीकरणेषु रक्तम् ॥ ५४ ॥

भौमस्य द्वादशांशे शुक्रफलम्

सूर्यांशके भूतनयस्य शुक्रो विदेशरक्तं मनुजं प्रसूते ।
द्यूतप्रियं युद्धरतं कृतघ्नं विवेकहीनं परदारभाजम् ॥ ५५ ॥

बुधस्य द्वादशांशे शुक्रफलम्

सूर्यांशके सोमसुतस्य शुक्रो नरं प्रसूते शुभगं मनोज्ञम् ।
स्थानार्थमानैः सहितं प्रसिद्धं विद्यार्जने तत्परमल्पदोषम् ॥ ५६ ॥

गुरोर्द्वादशांशे शुक्रफलम्

सूर्यांशकस्थ सुरपूजितस्य शुक्रः करोत्यार्यमतिं सुदीनम् ।
सन्मानसौहार्दसुतार्थयुक्तं विचित्रभोगं द्रविणोपपन्नम् ॥ ५७ ॥

शुक्रस्य द्वादशांशे शुक्रफलम्

सूर्यांशके स्वे च भृगुः प्रसूते विचित्रवाक्यं रतिगेयरक्तम् ।
धर्मार्थकामैः सहितं सुविज्ञं नृपप्रधानं निजबन्धुमान्यम् ॥ ५८ ॥

शनेर्द्वादशांशे शुक्रफलम्

अर्कांशके सूर्यसुतस्य शुक्रस्तिष्ठन्प्रसूते सुखभाग्यहीनम् ।
पापात्मकं शत्रुविवर्जितञ्च प्रवासिनं व्याधिभिरर्दितञ्च ॥ ५९ ॥

अथ सर्वेषां ग्रहाणां द्वादशांशे शनिफलमाह

तत्रादौ सूर्यस्य द्वादशांशे शनिफलम्

सूर्यांशके वासरपस्य शौरो नरं प्रसूते गतधर्मबुद्धिम् ।
सुनिष्ठुरालापपरं सुदुष्टं नीचानुरक्तविगतप्रभावम् ॥ ६० ॥

चन्द्रस्य द्वादशांशे शनिफलम्

सूर्यांशके ऋक्षपतेः प्रयातः सौरः प्रसूते सुमतिं मनुष्यम् ।
लाभान्वितं पार्थिवमानपुष्टं गान्धर्वशिल्पादिषु सक्तचित्तम् ॥ ६१ ॥

भौमस्य द्वादशांशे शनिफलम्

मार्त्तण्डजो द्वादशभागसंस्थो नरं प्रसूते क्षितिजस्य जिह्मम् ।
प्रपीडितं पित्तविकारदोषैर्भीरुं सदानिन्द्यतमं नराणाम् ॥ ६२ ॥

बुधस्य द्वादशांशे शनिफलम्

शनैश्चरो द्वादशभागसंस्थो बुधस्य सूते प्रतिभं मनुष्यम् ।
वित्तान्वितं धर्मरतं सलज्जं कीर्त्यान्वितं ब्राह्मणसम्मतञ्च ॥ ६३ ॥

गुरोर्द्वादशांशे शनिफलम्

आदित्यजो द्वादशभागसंस्थो जीवस्यसूतेऽर्थपरं मनुष्यम् ।
पुत्रान्वितं बान्धवमानयुक्तं लज्जान्वितं ब्राह्मणसम्मतञ्च ॥ ६४ ॥

शुक्रस्य द्वादशांशे शनिफलम्

अर्कांशके भार्गवजस्य संस्थः करोति मर्त्यं प्रचुरान्नपानम् ।
विशिष्टदाराम्बररत्नभाजं भाग्याधिकं प्राणभृतां वरिष्ठम् ॥ ६५ ॥

शनेर्द्वादशांशे शनिफलम्

सूर्यांशके स्वे दिनपस्य पुत्रो नरं प्रसूते स्थिरबुद्धियुक्तम् ।
व्रतोपवासान्वितमिष्टमित्रं कुलप्रधानं सततं कुशीलम् ॥ ६६ ॥

विशेषः

अर्कांशपेऽङ्गे पितृतुल्यभाग्यस्त्रिकस्थिते नात्मसुखं न पित्रोः ।
लाभस्थिते तातधनं सुगुप्तं नीचास्तपापारिखलेष्वभद्रम् ॥ ६७ ॥

स्याद् द्वादशांशादशुभाः शुभावा जायाधिपः क्रूरयुतेक्षिते वा ।
भार्याशुभैः पुत्रयुता तथैका स्त्रीदुःखमेवाप्यपरैर्नरस्य ॥ ६८ ॥

गृहस्थाद् द्वादशे भागे मित्रोच्चसमवस्थिताः ।
बहुस्त्रीष्वधिकारी स्यान्नानाऋद्धिसमन्वितः ॥ ६९ ॥

द्वादशांशे वलयुते कलत्राणि बहूनि च ।
सौम्यैर्जाया शुभा पापैः कुरूपा निर्बले तथा ॥ ७० ॥

अथ लग्नगतराशिवशेन प्रत्येकत्रिंशांशफलानि

त्रिंशांशे धरणीसुतस्य चपलः काठिन्यवाक् क्रूरधीः ।
मन्दस्याटनतत्परो मलिनधीर्जीवांशके वित्तवान् ॥ १ ॥

सौम्यांशे गुरुदेवभक्तिनिरतः साधुप्रियो वन्धुमान् ।
कामी कान्तवपुःसुखी च भृगुजः स्त्रिशांशके जायते ॥ २ ॥

अथ ग्रन्थान्तरात् पृथक् पृथक् फलानि

तत्रादौ कुजस्य राशेः

मूर्खः कुमूर्त कुशलो मलिनो विरूपः क्रूरःखलोर्थरहितः परदारगामी ।
पापश्च वृद्धहृदयोरिधनोल्पबुद्धिः त्रिंशांशके क्षितिसुतस्य भवेत्प्रसूतः ॥३॥

अन्यच्च

त्रिंशांशके भूमीसुतस्य लग्ने करोति मर्त्यं व्यसनाभिभूतम् ।
व्ययेन हीनं बहुवैरियुक्तं प्रपूजितं भूपतिना सदैव ॥४॥

शनिराशौ

विद्यासुखार्थरहिताः पिशुनाः कुरूपाः
स्त्रीभीर्जिताः सकलहाः परीपूर्णलुब्धाः।
प्रेष्याः कुकर्मनिरताः मलिना कृतघ्नाः
स्त्रिंशांशकेऽर्कतनयस्य नरा भवन्ति ॥ ५ ॥

अन्यच्च

त्रिंशल्लवः सूर्यसुतस्य लग्ने करोति मर्त्यं परदेशरक्तम्।
क्षुद्रं श्रमार्तं बहुरोगयुक्तं स्त्रीणामभिष्टं प्रणतारिपक्षम् ॥ ६ ॥

गुरुराशौ

आचारवर्णनयविक्रमकर्मयुक्ता-
स्तेजस्विनः कृतविदः स्वपराधनाढ्याः।
दीर्घायुषो बहुसुताः शिथिलार्थवन्त-
स्त्रिंशांशके सुरगुरोः पुरुषा भवन्ति ॥ ७ ॥

अन्यच्च

त्रिंशांशके देवगुरोर्विलग्ने नरं सुवाते बहुशास्त्ररक्तम्।
क्षुद्रं श्रमार्त्तं बहुरोगयुक्तम् सत्यात्मकं देवगुरुप्रसक्तम् ॥ ८ ॥

बुधराशौ

धर्मार्थकामसुतकीर्तिजयप्रयुक्ता-
स्तेजस्विनः कृतविदः स्वपराधनाढ्याः।
दिव्याङ्गनाभरणपुष्पसुगन्धसक्ता-
स्त्रिंशांशके शशिसुतस्य भवन्ति पुंसः ॥ ९ ॥

अन्यच्च

त्रिंशांशकः सोमसुतस्य लग्ने नरं प्रसूते गुणिनं समृद्धम्।
सद्धर्मयुक्तं गुरुबन्धुमान्यं विद्यान्वितं धर्मपरं कृतज्ञम् ॥ १० ॥

शुक्रराशौ

बहुतरगुणपूर्णः सुन्दरश्चारुदृष्टि-
र्युवतिजनविलासी सर्वशास्त्रेष्वभिज्ञः।
द्विजवरगुरुभक्तो दानशीलः कृपालु-
र्दनुजगणगुरो स्यान्मानवस्त्रिंशकांशे ॥ ११ ॥

अन्यच्च

त्रिंशांशको भार्गवनन्दनस्य लग्ने प्रसूते सदयं मनुष्यम् ।
लज्जान्वितं सत्यपरं कृतज्ञं उदारचेष्टं सुखिनं सुरूपम् ॥ १२ ॥

अथ त्रिंशांशे सूर्यफलमाह

तत्रादौ भौमस्य त्रिंशांशे सूर्यफलम्

त्रिंशल्लवस्थो धरणीसुतस्य भानुर्विधत्ते धनमल्पपुण्यम् ।
वित्ताधिवासं भृतकं सुशीलं रोगाधिकं स्वस्य जनैः समेतम् ॥ १३ ॥

शनेस्त्रिंशांशे सूर्यफलम्

त्रिंशल्लवे सूर्यसुतस्य भानुर्नरं विधत्ते वृजनानुरक्तम् ।
विहीनवित्तं पुरुषं कृतघ्नं विद्वेषशीलं गतसौहृदञ्च ॥ १४ ॥

गुरोस्त्रिंशांशे सूर्यफलम्

त्रिंशल्लवे देवपुरोहितस्य करोति भानुः प्रणयं प्रधानम् ।
यशस्करं शौर्यगुणैः समेतं महाधनं शास्त्ररतं मनुष्यम् ॥ १५ ॥

बुधस्य त्रिंशांशे सूर्यफलम्

हिरण्यमुक्तामणी वस्त्रभाजं स्त्रीणामभीष्टं सुरभक्तियुक्तम् ।
त्रिंशल्लवस्थः शशिजस्य भानुः करोति मर्त्यं विगतारिपक्षम् ॥ १६ ॥

शुक्रस्य त्रिंशांशे सूर्यफलम्

त्रिंशल्लवे दैत्यपुरोहितस्य करोति सूर्यः शुभगं मनुष्यम् ।
नानार्थयुक्तं वरवाजिभाजं नीरोगकायं व्रतिनामभीष्टम् ॥ १७ ॥

अथ त्रिंशांशे चन्द्रफलमाह

तत्रादौ भौमस्य त्रिंशांशे चन्द्रफलम्

त्रिंशल्लवे भूमिसुतस्य चन्द्रः शुद्धैर्विहीनं कुरुतेऽतिकौलम् ।
मलिम्लुचं नीचजनानुरक्तं रक्तार्दितं कोपपरं सुजिह्मम् ॥ १८ ॥

शनेस्त्रिंशांशे चन्द्रफलम्

त्रिंशद्विभागेऽर्कसुतस्य चन्द्रो विरूपदेहं मुखरं करोति ।
विकाशिनं स्थूलकचं सुजिह्मं परापवादे निरतं सदैव ॥ १९ ॥

गुरोस्त्रिशांशे चन्द्रफलम्

त्रिंशल्लवे रात्रिपतिर्यदा स्यान्मेधाविनं चैव तदा प्रसूते ।
जीवस्य मर्त्यं भुवि लब्धकीर्तिं श्रियाधिकं पार्थिववल्लभञ्च ॥ २० ॥

बुधस्य त्रिंशांशे चन्द्रफलम्

त्रिंशांशके सोमसुतस्य चन्द्रो नरं विधत्ते शुचिमप्रसन्नम् ।
स्त्रीवल्लभं गीतकलासु दक्षं प्रियातिथिं नित्यमुदारचेष्टम् ॥ २१ ॥

शुक्रस्य त्रिंशांशे चन्द्रफलम्

त्रिंशांशकस्थो विधुरा विधत्ते शुक्रस्य मर्त्यं बहुवीर्ययुक्तम् ।
सुपुण्यशीलं हययानयुक्तं दयारतं सत्सु सदानुरक्तम् ॥ २२ ॥

अथ त्रिंशांशे भौमफलमाह

तत्रादौ भौमस्य त्रिंशांशे भौमफलम्

अनेकद्रव्याद्युद्धनवेष्टचेष्टं बहुव्ययानर्थपरं सदैव ।
त्रिंशल्लवे स्वे प्रकरोति भौमो नरं कुरूपं व्यसनैः सुतप्तम् ॥ २३ ॥

शनेस्त्रिशांशे भौमफलम्

लुब्धं परस्त्रीनिरतं सदैव विद्वेषणं दुर्वनितापतिञ्च ।
त्रिंशांशके सूर्यसुतस्य भौमस्तिष्ठन् विधत्ते सुखदं प्रसूतौ ॥ २४ ॥

गुरोस्त्रिशांशे भौमफलम्

यज्ञव्रताध्यापनदानशीलं पुरोहितं पार्थिवमन्त्रिणञ्च ।
त्रिंशांशके देवगुरोर्महीजः करोति मर्त्यं बहुधर्मयुक्तम् ॥ २५ ॥

बुधस्य त्रिंशांशे भौमफलम्

दातारमिष्टाम्बरगन्धमाल्यबहुप्रजं बन्धुहितं सदैव ।
त्रिंशल्लवे सोमसुतस्य तिष्ठन् कुजो विधत्ते सुखदं प्रसूतौ ॥ २६ ॥

शुक्रस्य त्रिंशांशे भौमफलम्

आलेख्यविद्यानिपुणं सुशीलं वाद्यप्रियं गीतविशारदञ्च ।
त्रिंशल्लवे चेद्भृगुजस्य भौमो नरं प्रसूते बहुवित्तयुक्तम् ॥ २७ ॥

अथ त्रिंशांशे बुधफलम्

तत्रादौ भौमस्य त्रिंशांशे बुधफलम्

त्रिंशल्लवस्थो वनिजस्य सौम्यो नरं प्रसूते कठिनं कुरूपम् ।
सुतार्थहीनं व्यसनैरुपेतं पराङ्मुखं देवगुरुर्द्विजानाम् ॥ २८ ॥

शनेस्त्रिंशांशे बुधफलम्

त्रिंशल्लवस्थोऽर्कसुतस्य सौम्यः करोति तिष्ठन् परतर्ककञ्च ।
रौद्रं क्रियासक्तमतिं प्रचण्डं द्यूतप्रियं व्याधिभिरर्दिताङ्गम् ॥ २९ ॥

गुरोस्त्रिंशांशे बुधफलम्

चन्द्रात्मजो देवपुरोहितस्य त्रिंशांशकस्थः प्रकरोति धीरम् ।
सदा विनीतं गुणिनामभीष्टं स्वबन्धुपूज्यं कुलसत्तमञ्च ॥ ३० ॥

बुधस्य त्रिंशांशे बुधफलम्

त्रिंशांशके स्वे शशिसूनुरेव सुतार्थयुक्तं मनुजं प्रसूते ।
गुणेर्भुवि ख्यातमलङ्घ्यवीर्यं प्रसन्नमूर्तिं सततं सुशीलम् ॥ ३१ ॥

शुक्रय त्रिंशांशे बुधफलम्

त्रिंशल्लवे दानवपूजितस्य सौम्यो विधत्ते प्रचुरं प्रतापम् ।
प्रभुं परक्षेत्र तथा धनानां प्रदानशीलं सुकलत्रयुक्तम् ॥ ३२ ॥

अथ त्रिंशांशे गुरुफलमाह

तत्रादौ भौमस्य त्रिंशांशे गुरुफलम्

त्रिंशांशके भूतनयस्य जीवो नरं प्रसूते कुटिलं मनुष्यम् ।
ईर्षापरं पीडितलोकवर्गं विहीनशीलं परिवादरक्तम् ॥ ३३ ॥

शनेस्त्रिशांशे गुरुफलम्

त्रिंशल्लवे सूर्यसुतस्य जीवस्तिष्ठन् प्रसूते विधनं मनुष्यम् ।
पापानुरक्तं परदारशीलं स्वबन्धुहीनं कुटिलस्वभावम् ॥ ३४ ॥

गुरोस्त्रिशांशे गुरुफलम्

त्रिंशांशके स्वे प्रकरोति जीवः कुलीनवित्तं सततं मनुष्यम् ।
अध्यात्मविद्यागमसक्तचित्तं क्षमान्वितं ब्रह्मविदां वरिष्ठम् ॥ ३५ ॥

बुधस्य त्रिशांशे गुरुफलम्

त्रिशांशके सोमसुतस्य मंत्री मनीषिणं वाक्चतुरं करोति ।
मर्त्यं विरक्तं द्विजदेवभक्तं सन्तुष्टचित्तं सततं सुशीलम् ॥ ३६ ॥

शुक्रस्य त्रिशांशे गुरुफलम्

त्रिशांशके भार्गवनन्दनस्य जीवश्चरन् वित्तयुतं विधत्ते ।
नरं विनीतं सुतलाभयुक्तम् स्त्रीणामभीष्टं नृपलोकमान्यम् ॥ ३७ ॥

अथ त्रिशांशे शुक्रफलमाह

तत्रादौ भौमस्य त्रिशांशे शुक्रफलम्

त्रिशांशके भूमिसुतस्य शुक्रस्तिष्ठन् प्रसूते सरुजं मनुष्यम् ।
पित्तार्दितं रुग्ज्वरमल्पवीर्यं सुनीचयुक्तं प्रसभं यशोघ्नम् ॥ ३८ ॥

शनेस्त्रिशांशे शुक्रफलम्

त्रिंशल्लवे सूर्यसुतस्य शुक्रस्तिष्ठन् प्रसूते बहुशोकखिन्नम् ।
हतात्मकं बन्धुवियोगयुक्तं प्रपञ्चशीलं गतसत्यशौचम् ॥ ३९ ॥

गुरोस्त्रिशांशे शुक्रफलम्

त्रिशांशके देवपुरोहितस्य शुक्रश्चरन् देवरतं प्रसूते ।
सुधर्मशीलं स्वजनाप्ततोषं नरेन्द्रपूज्यं व्रतचारिणञ्च ॥ ४० ॥

बुधस्य त्रिशांशे शुक्रफलम्

त्रिशांशके सोमसुतस्य शुक्रस्तिष्ठन् प्रसूते सुवपुर्मनुष्यम् ।
सौम्यं धनाढ्यं वरदाररक्तं हस्त्यश्वभाजं नृपवल्लभञ्च ॥ ४१ ॥

शुक्रस्य त्रिशांशे शुक्रफलम्

त्रिंशल्लवे स्वे भृगुजः प्रसूते नरं विनीतं धनधान्ययुक्तम् ।
कुलाधिकं कीर्तिकरं सुविज्ञं हास्ये रतं केलिकरं प्रसह्यम् ॥ ४२ ॥

अथ त्रिशांशे शनिफलमाह

तत्रादौ भौमस्य त्रिशांशे शनिफलम्

त्रिशांशके भूमिसुतस्य सौरः करोति पापात्मकमुग्रचेष्टम् ।
नरं नरेन्द्रैः परिभूतदेहं रोगोपतप्तं प्रखलस्वभावम् ॥ ४३ ॥

शनेस्त्रिंशांशे शनिफलम्

त्रिंशांशके स्वे रविजः प्रसूते नरं विनीतं विगतारिपक्षम् ।
पित्रार्चने तत्परमिष्टमित्रं महाबलं सत्यरतं नयज्ञम् ॥ ४४ ॥

गुरोस्त्रिंशांशे शनिफलम्

त्रिंशांशके देवगुरोः प्रयातः शनिः प्रसूते शुभगं मनुष्यम् ।
व्रतोपवासार्जितधर्मवृद्धिं प्रियंवदं सत्ययुतं प्रगल्भम् ॥ ४५ ॥

बुधस्य त्रिंशांशे शनिफलम्

त्रिंशल्लवे सोमसुतस्य सौरिर्नरं प्रसूते प्रवरं कुलस्य ।
सौम्याकृतिं पण्डितमिष्टधर्मं नृपप्रियं शास्त्ररतं सदैव ॥ ४६ ॥

शुक्रस्य त्रिंशांशे शनिफलम्

त्रिंशांशके भार्गवनन्दनस्य करोति सौरः सुतसौख्ययुक्तम् ।
प्रियातिथिं बुद्धियुतं कृतज्ञं नारीप्रियं पूज्यतमं नृलोके ॥ ४७ ॥

त्रिंशांशफलं स्त्रीपुरुषयोस्तुल्यं विशेषस्तु ग्रहराशिवशेन स्त्रीणां प्रत्येकस्त्रिंशांशफलानि

तत्रादौ कुजस्य राशेः

यदाङ्गचन्द्रौ कुजभे कुजस्य त्रिंशांशके दुष्टतमैव कन्या ।
मन्दस्य दासी हि गुरोस्तु साध्वी मायाविनी ज्ञस्य कवेः कुवृत्ता ॥ ४८ ॥

शुक्रराशौ

शुक्रभे भौमत्रिंशांशे दुष्टा सौरेः पुनर्भवा ।
गुरोर्गुणमयी विज्ञा बुधे कामातुरा कवेः ॥ ४९ ॥

बुधराशौ

बुधभे भूमिपुत्रस्य कापटी क्लीबवच्छनेः ।
गुरोः सती विदो विज्ञा कवेः कामातुरा भवेत् ॥ ५० ॥

चन्द्रराशौ

कुलीरभे भूमिसुतस्य वेश्या शनेः, पतिप्राणविघातकर्त्री ।
गुरोर्गुणव्रातवती बुधस्य शिल्पक्रियाज्ञा कुलटा भृगोः स्यात् ॥ ५१ ॥

सूर्यराशौ

सिंहे नराकारधरा कुजस्य वराङ्गना भानुसुतस्य नारी ।
गुरोरिलाधीशवधूर्बुधस्य दुष्टा कवेरङ्गजगामिनी स्यात् ॥ ५२ ॥

गुरुराशौ

गुरोर्विचित्रा गुरुभे कुजस्य मन्दस्य मन्दा गुणतत्त्वविज्ञा ।
जीवस्य विज्ञा शशिनन्दनस्य शुक्रस्य रम्यापि भवेदरम्या ॥ ५३ ॥

शनिराशौ

मन्दालये भूमिसुतस्य दासी शनेरसाध्वी भवतीति साध्वी ।
गुरोर्निशानाथसुतस्य दुष्टा शुक्रस्य वन्ध्या क्रमतः प्रदिष्टाः ॥ ५४ ॥

अथ सत्त्वादिगुणविचारः

रवीन्दुदेवेशपुरोहितास्तु सत्वाः सितज्ञौ तु रजोगुणौ स्तः ।
तमोगुणौ भौमशनैश्चरौ यत् त्र्यंशांशगोऽर्कस्य गुणी नरः स्यात् ॥५५॥
शीतगुर्यस्य त्रिंशांशे कन्यकायास्तु तद्गुणम् ॥ ऽ ॥
यः सात्विकस्तस्य दयास्थिरत्वं सत्यार्जवं ब्राह्मणदेवभक्तिः ।
रजोधिकः काव्यकलाक्रतुस्त्रीसंसक्तचित्तः पुरुषोऽतिशूरः ॥ ५६ ॥
तमोधिको वञ्चयिता परेषां मूर्खोलसः क्रोधपरोऽतिनिद्रः ।
मिश्रैर्गुणः सत्वरजस्तमोभिमिश्रोच्यते स सहस्रभेदतः ॥ ५७ ॥

त्रिंशांशफलविचारे विशेषः

त्रिंशांशपो सौम्यखगोऽस्तनीचो यदा तदा बन्धुभिराशुवैरम् ।
त्रिकस्थितश्चेन्नृपभीतिभाक् स्यात् सदन्वितः सन् यदि सौख्यशाली ॥५८॥
त्रिंशांशादष्टमस्थानाधिपे सौम्यशुभेक्षिते ।
शुभे त्रिंशांशकेः मृत्युः शोभनो नो विपर्यये ॥ ५९ ॥
त्रिंशांशके चये खेटा मित्रोच्चसमवस्थिताः ।
सर्वकार्यकृतोत्साही धर्मिष्ठः कृतपूजितः ॥ ६० ॥

अथ लग्नगतसप्तांशफलम्

शूरः प्रचण्डः स्थिरसभ्यकर्मा सप्तांशकेऽर्कस्य वली प्रसिद्धः ।
शुचिर्मृदुर्धर्मपरो विनीतो रतिप्रियः स्याच्छशिनः सुधीश्च ॥ १ ॥

दुर्मर्षणः सत्वबलाभिमानी स्यात्सप्तभागे क्षितिनन्दनस्य ।
कविर्मृदुः शिल्पकलाभिरामो विद्वान्सुवाक्यो निपुणो बुधस्य ॥ २ ॥
विशारदस्स्यात्स्थिरसत्त्वबुद्धिर्गुरोर्मतो ज्ञानवतां वरिष्ठः ।
कामी विलासी रतिहास्यलीला गान्धर्वगीताभिरतिर्भृगोःस्यात् ॥ ३ ॥
मूर्खोऽलसो जिह्ममतिर्विकर्मा सौरस्य पापाभिरतो नरः स्यात् ।
स्वक्षेत्रनोचोच्चविधानि यानि ज्ञेयानि चैषान्तु फलानि तानि ॥ ४ ॥

अथ पृथक् पृथक् सप्तांशफलानि

गृहे गृहे चन्द्रविलग्नयुक्तैः सप्तांशकेराकृतिलक्षणानि ।
यानि प्रसूतौ यवनैः पुराणैः स्मृतानि पुंसां कथयामि तानि ॥ ५ ॥

अथ मेषस्य

तनुमुखकूर्चश्चण्डो रक्तान्ताक्षः कलिक्षतार्यश्च ।
रणकर्मचौर्यनिरतः कृशः क्रिये **पूर्वसप्तांशे** ॥ ६ ॥

पृथुभालगण्डमुखो ह्रस्वललाटः सुजत्रुकः शुभदृक् ।
पृथुपीनांशनतपूर्वो **द्वितीयभागे** कृशांशसन्धिश्च ॥ ७ ॥

दाक्षिण्यशौर्यविग्रहः पापाढ्यो विलेख्यः शास्त्रवित् ।
कृशः कामी कान्तोटनः प्रवक्ताः श्यामो मेष **तृतीय सप्तमांशे** ॥ ८ ॥

पृथुनयनकपोलोदरः पाणिर्गौरो गुरुश्च धर्मरतः ।
माल्यस्नानविभूषणरतः क्रिये **तुर्यसप्तांशे** ॥ ९ ॥
ताम्रद्युतिः प्रचण्डो वृहद्भुजभ्रूशिरो ललाटनसः ।
अजपञ्चम सप्तांशे शूरस्ताम्रान्तमध्वक्षः ॥ १० ॥
आयतमूर्तिर्गौरः कान्तपृथुविलोचनो धनवान् ।
शुभवाग्वुद्धिर्ज्ञानित्वधीत विद्योऽज**षष्ठसप्तांशे** ॥ ११ ॥
पृथुदीर्घासितमूर्तिः कलिप्रयो भिन्ननखरदाश्च ।
केशाग्रः निष्ठुरवाक् प्रगल्भो पिशुनोऽजे **सप्तमे भागे** ॥ १२ ॥

इति मेषः

अथ वृषस्य

पृथुभालगण्डवक्षः स्कन्धकपोलो ह्रस्वः बाहुकः श्यामः ।
अतिसूक्ष्मकचो व्यस्तेक्षणो वृषे **प्रथमसप्तांशे** ॥ १३ ॥

स्निग्धद्युतिरायतदृङ् मधुरवचनः चारुलोचनः सुतनुः।
कामी विज्ञानकलानिरतो वृषे **द्वितीयसप्तांशे** ॥ १४ ॥

प्राज्ञश्च पीतगौरो मृग्दृक् शुभगो रतिप्रियो दाता।
मृदुतनुकचो वचस्वी **वृषतृतीये** च सप्तांशे ॥ १५ ॥

उच्चमुखो गण्डघोणो धनभाक् स्फुटदृक् पृथुवचो गौरः।
रक्तनखो भिन्नकटिः खरो वृषभस्य **तूर्यसप्तांशे** ॥ १६ ॥

ताम्राभ्रपिङ्गलाक्षः सुकुमारस्तीक्ष्णवाक् परस्वेच्छुः।
मृतदारो रोगी गवि सप्तांशे **पञ्चमे** भवति ॥ १७ ॥

पृथुकर्णायततनुरसितदृगुन्नतसत्क्रियादक्षः।
अभिमानी गवि **षष्ठे** सप्तांशे ह्यापदार्तश्च ॥ १८ ॥

गोन्त्यांशे भ्रान्तमुखः सितान्तदृक् श्यामकृशतनुः शूरः।
लुब्धो क्रोधी वक्ता चलोऽल्पसत्त्वोऽटनश्च शठः ॥ १९ ॥

इति वृषः ॥

अथ मिथुनस्य

ज्ञानी कविर्वचस्वी श्यामः कान्तः शुचिर्विलासी च।
रतिगीतरतः ख्यातो **मिथुनादिमसप्तांशे** स्यात् ॥ २० ॥

धनवान् पृथुगौरतनुः पृथुदृक् प्राज्ञः प्रियालसश्च मृदुः।
सङ्गीतधर्मनिरतो **द्वितीयसप्तांशके** मिथुने ॥ २१ ॥

पृथुदृक् ताम्रविदारितमुखो महाहनुरुदारकर्मा च।
शूरो हर्ता वक्ता प्रहसो **मिथुनतृतीयसप्तांशे** ॥ २२ ॥

आयततनु सुदृक् श्यामः पण्ये प्रयोगमार्गपटुः।
शूरः सुभगः सम्मितवाग् मिथुने **चतुर्थसप्तांशे** ॥ २३ ॥

रक्तनखाधरनेत्रश्चण्डो वक्ता कृशो विभक्तभुजः।
रतिचौर्यकुटिलकृत् **पञ्चमसप्तांशके** मिथुने ॥ २४ ॥

गुर्वायतगौरतनुः स्वक्षनसः शास्त्रकाव्यधर्मरतः।
मधुरसुधीर्विशिष्टः **षष्ठे** सप्तांशके मिथुने ॥ २५ ॥

स्त्रीशस्त्यकथाद्यूताल्पसत्त्वरोगाध्वभाक् चपलो मिथुने।
पुतसस्निग्धसमासितदीर्घाङ्गोन्त्यसप्तांशे ॥ २६ ॥

इति मिथुनः।

अथ कर्कस्य

उपविततकुचोरुवक्षाः श्यामः प्रांशुः सुवृत्तधीरश्च ।
वस्त्यायतदृक्कर्किणि दीर्घभुजः **प्रथम**सप्तांशे ॥ २७ ॥

स्थूलोष्ठगण्डकण्ठः शूरस्ताम्रद्युतिकृशः ।
प्रांशुः प्रहसाजास्यः पिङ्गाक्षः कुलीरराशेर्**द्वितीय**सप्तांशे ॥ २८ ॥

विद्वांस्तनुरायतदृक् सङ्गीतार्थविदः कविश्च तुरः ।
कर्किणि मृदुस्तृ**तीय**ससप्तांशे भवति सुकुमारः ॥ २९ ॥

पृथुदृक् मृदुसूक्ष्मकचः स्वतोलसः सुघोणश्च ।
गीतज्ञो लम्बभुजः कर्किणि सप्तांशके **चतुर्थे** च ॥ ३० ॥

उद्गण्डघोणस्ताम्रकृशतनुः पिङ्गदृक् शूरः ।
अन्यस्त्रीच्छुः कर्किणि **पञ्चम**सप्तांशके लग्नात् ॥ ३१ ॥

दीर्घास्याक्षिनसः पृथुकर्णो मान्यश्च बन्धुभिर्गौरः ।
सुतनुर्मतिवचनकर्मा कर्किणि सप्तांशके **षष्ठे** ॥ ३२ ॥

खरवाक्क्लेशक्लेशो दीर्घः कृशासिततनुः खलस्त्वटनः ।
तीव्रदृगुन्नतनसः कर्किणि सप्तांशके **प्रान्त्ये** ॥ ३३ ॥

इति कर्कटः ।

अथ सिंहस्य

रक्ताङ्गाक्षो दीर्घश्चण्डः सुपटुः प्रवृद्धघोणश्च ।
सिंहादिमेस्थिसारः सप्तांशे तुङ्गखरो रोमाः ॥ ३४ ॥

अभ्युद्गतः तीक्ष्णनखो दीर्घो वक्ता **द्वितीयसप्तांशे** ।
धृष्टोर्थशास्त्रास्त्रोपचारनयविद् भवेत् सिंहे ॥ ३५ ॥

पृथुपीनायतदेहः पृथुभालाक्षशिरोर्थसञ्चयकः ।
धृतिसत्त्वदारसहितो **हरेस्तृतीये** च सप्तांशे ॥ ३६ ॥

कलिः दुःशीलश्चण्डः केकरदृक्क्वविमुखो नात्युच्चः ।
रक्तघनतनुरसत्वः सिंहस्य **तुरीयस**प्तांशे ॥ ३७ ॥

सोत्साहवाक् स्थिरयशो मानप्रतापयुक् सुदृशः ।
हरि **पञ्चमस**प्तांशे गौरो ना पृथुशिरालश्च ॥ ३८ ॥

शिशिरायतवृत्ततनुर्भ्रान्त्यल्पदृगो नरोत्यटनः ।
हरिषष्ठे सप्तांशे न्यासे विहितसुदीर्घघोणश्च ॥ ३९ ॥

मृदुरुन्नतगौराङ्गः प्राज्ञोऽल्पनसोऽल्पवाक् सुवेषश्च ।
सिंहान्त्ये सप्तांशे गीतज्ञोरतः कान्तः ॥ ४० ॥
इति सिंहः ।

अथ कन्यायाः

कन्यादिमसप्तांशे वाग्मी प्राज्ञः सुधीर्विनीतश्च ।
स्वायत्तनुदृक् श्यामो निभृतः समवंशघोणसंस्यात् ॥ ४१ ॥
पीनोरुवंशभुजो वचस्वी मृदुस्तु पूर्णमुखः ।
सुकुमारो रतिसक्तोऽङ्गना द्वितीये च सप्तांशे ॥ ४२ ॥
अभिमानकूटवादस्तेयरतो रक्तगात्रदृक् चपलः ।
तनुरोमोच्चकमुखोऽल्पकचित्तः कन्यातृतीयसप्तांशे ॥ ४३ ॥
शिल्पः श्रुतिमुखकर्मा महाहनुस्कन्धदृक्शिरः ।
प्राज्ञः दानरुचिः स्फुट धनवान् कन्यासप्तांशके तुर्य्ये ॥ ४४ ॥
कन्यापञ्चमसप्तांशे नरोऽलसो भीरुवाक् क्रोधी ।
पीनहनुदीर्घमुखः स्नायुततोऽसिततनुमृगदृक ॥ ४५ ॥
पूर्णैश्वर्यसमेतो दृढश्रुतिवचने रतो धर्मी ।
कन्याषष्ठेसप्तांशे कृष्णाक्षो वक्रनासायतभ्रूः स्यात् ॥ ४६ ॥
तनुपिंगकचो मध्यायतदृक् स्थूलोष्ठगण्डगलदंष्ट्रः ।
उग्रः क्रुधाताम्ररुचिः कन्यायाः सप्तमांशेन्त्ये ॥ ४७ ॥
इति कन्या ।

अथ तुलायाः

पद्माक्ष उच्चघोणस्तरुणाङ्कुरसन्निभः सुदृक् सुतनुः ।
वक्ताधनार्जनज्ञस्तुलादिमे सुधार्नृभृत् ॥ ४८ ॥
वृत्तास्यकृषिकर्माध्वनिरतोन्नतनसोष्ठः ।
हिंस्रो रक्तश्यामस्तुलाद्वितीये च सप्तांशे ॥ ४९ ॥
धर्मार्थशास्त्रकृत्यवित्तुङ्गनसः शिरालश्च महान् ।
पृथुवदननयनमूर्तीस्तुलातृतीये च सप्तांशे ॥ ५० ॥
कृष्णखरस्वराङ्गो दीर्घमुखः पीनकण्ठवक्षोष्टः ।
जिह्मश्चलाग्रकर्मा वक्रनखस्तुलाचतुर्थसप्तांशे ॥ ५१ ॥

शुभ्रवाननाक्षिनेत्रः श्यामः सुतनुः कला क्रियानुंपटुः ।
दीर्घमुखः सत्सेव्यः सप्तांशे **पञ्चमे** तुलिनी ॥ ५२ ॥
नतपक्ष्माऽसितनेत्रः सममूर्तिः स्त्रीवल्लभः सुवाक्चतुरः ।
तुलषष्ठे सप्तांशे भवति नरः सुमुखः घोणकोष्ठश्च ॥ ५३ ॥
स्थूलोष्ठः स्थिरदोर्मधुपिङ्गलकेशः सुरक्तदृक् शूरः ।
बालाब्जकोमलाङ्गः **सप्तमसप्तांशे** तुलिनी ॥ ५४ ॥
इति तुला ।

अथ वृश्चिकस्य

घातानृतभेदाहवरतोन्नतश्च पिङ्गरक्ताक्षः ।
अलिपूर्वसप्तमांशे खरपिंगकचश्च पलदेहः ॥ ५५ ॥
पृथुदृग्भ्रूस्तनुरन्ध्रिः सुनसः **कौर्पे द्वितीयसप्तांशे** ।
धृतपीतारुणकान्तिः शास्त्रविधिज्ञः कलाज्ञश्च ॥ ५६ ॥
पटुवाक् निरुद्धपूर्वार्द्धः वृद्धकायो सितांगविकृतमूर्तिः ।
कठिनो घृणो गुरुणा मलिनि **तृतीयसप्तांशे** ॥ ५७ ॥
पृथुगण्डघोणजठरो वक्रकचः **कौर्प्यंतूर्य्यसप्तांशे** ।
उद्धतवचनो मानी चात्माहितभाषमिहा बाहूः ॥ ५८ ॥
कृशजठरपृथुवक्षा वक्ता द्यूतप्रियः सुमुखबाहूः ।
सेवायुक्तोऽल्पपटुः सप्तांशे **पञ्चमेऽष्टमभे** ॥ ५९ ॥
वालोत्पलदृग्मतिमांस्तनुतुंगनसोऽल्पवाग्मृदुर्धर्मी ।
अलिषष्ठे सप्तांशे सुकोमलोदारसत्त्वतनुः ॥ ६० ॥
समरेच्छुः प्रांशुनसः पृथुशीर्षस्फिक्क पिंगरोमाक्षः ।
अलिसप्तांशे **प्रान्त्येख्यातः** स्थिरधीरसत्वश्च ॥ ६१ ॥
इति वृश्चिकः ।

अथ धनुषः

स्थूलोष्ठगण्डनसः पृथूदरांसश्च सत्ववाग्मधुदृक् ।
तुंगशिरः पीताक्षः स्थूलपादश्**चापादिम** सप्तांशे ॥ ६२ ॥
मृगदृक्सुवृत्तजङ्घोऽन्यार्थंहृत् विशेषविषमज्ञः ।
दीर्घकरः पृथुश्रुतिघोणश्**चापद्वितीयसप्तांशे** ॥ ६३ ॥

क्रोधी वक्ता त्यागी कृशसारवपुः प्रियासुकलिरीर्ष्यः ।
ताम्रांगाक्षो ह्रस्वो वहिरवो धनुषि तृतीयसप्तांशे ॥ ६४ ॥

उन्नतसुनसस्कन्धः स्थूलतनुहनुर्मृगेक्षणः ।
कपी तुंगशिरा गीतप्रियश्चतुर्थे धनुषि सप्तांशे ॥ ६५ ॥

तनुकठिनायतमूर्तिः सुनसोदारितदृक् प्रसमश्च ।
स्थितिकाव्यादिकलाज्ञः सप्तांशे पञ्चमे धनुषि ॥ ६६ ॥

हयषष्ठे सप्तमांशे तपोऽभिरामो मृदुवचः सुकर्मा च ।
पृथुमुखनयनो गुणघनो मृणालगौरोऽपालतशीर्षः ॥ ६७ ॥

दीर्घोष्ठनासिकाक्षः सुसत्यवाग्यतितनुर्धनुषि शूरः ।
सप्तांशेऽन्त्ये त्यागी महाललाटश्रवणदन्तः ॥ ६८ ॥

इति धनुः ।

अथ मकरस्य

तनुवंशघोणो जिह्मः दीर्घास्यकीर्तिभाक् श्यामः ।
खरकृष्णवर्णवासो भीरुर्मकरादिसप्तांशे ॥ ६९ ॥

गौरोपचितोरुतनुः सुमुखो धनी समदचेष्टः ।
दक्षश्चलो युयुत्सुः द्वितीयसप्तांशके मकरे ॥ ७० ॥

रक्तांगाश्च चण्डः कृशः परस्त्रीधनः समदचेष्टः ।
विषमस्वभावः कान्तः तृतीयसप्तांशके मकरे ॥ ७१ ॥

स्मितमृदुभाषी मतिमान् वृहच्छिरो गण्डघोणनेत्रश्च ।
मृगतूर्यसप्तांशे स्त्रीच्छु पद्मोदरः श्यामः ॥ ७२ ॥

संगीतशिल्पविग्रहसेवानिरतो विशेषतो मान्यः ।
मृगपञ्चमसप्तांशे दीर्घासितमूर्तिरुरुगण्डः ॥ ७३ ॥

हेमप्रभो विशालः श्रेष्ठः जनानां प्रियः कुवलयाक्षः ।
मृगषष्ठे सप्तांशे तपःश्रुतिज्ञानवांश्च मृदुः ॥ ७४ ॥

वृद्धोरुतनुश्चण्डोऽनपत्यो रक्तचक्षुरभिमानी ।
पृथुकण्ठास्यनसाभ्रूरदनोऽन्त्येमकरसप्तांशे ॥७५ ॥

इति मकरः ।

अथ कुम्भस्य

निकृतिरबलो सत्त्वः खरकेकरदृग्वृहच्छिरालः ।
दीर्घश्चादिमसप्तांशे घटस्य विनतघोणः ॥ ७६ ॥

पक्वामलकनिभः पृथुरल्पकथो दारितास्यनासाक्षः ।
कुम्भद्वितीयसप्तांशे पिपासुः सुमनस्वी च ॥ ७७ ॥

मार्ज्जारदृक् चलमनस्ताम्रांगः स्वल्पधीर्घटतृतीये ।
भेदाहवचौर्यानृतकृत् सप्तांशे सधूम्रकपिलकचः ॥ ७८ ॥

मृद्वल्पवाक् पिपासुस्तुंगनसो रक्तगौर एणाक्षः ।
नीलाम्बरश्चतुर्थे घटसप्तांशे च पटुर्विनीतः ॥ ७९ ॥

रूक्षकचो वितताङ्गो गौरश्यामः सुरुक् सुमुखवचनः ।
घटपञ्चमसप्तांशे प्रवासरुचिः शिल्पपानरुचिः ॥ ८० ॥

गौरोऽच्छछविः पृथुदृक् सुमुखाक्षिर्विनीतश्च ।
घटषष्ठे सप्तांशे व्रतदेवार्चनपरोऽल्पकथः ॥ ८१ ॥

दीर्घताम्राक्षतनुः ख्यातः सत्वाधिकपृथुनसोष्ठः ।
उद्धतवाग्वपुष्मान् पिंगकेशो घटान्त्यसप्तांशे ॥ ८२ ॥

इति कुम्भः ।

अथ मीनस्य

स्वक्षः सुघोणदशनः कुवलयदलप्रभः ।
सुमतिश्रुतिसत्वरतः स्वच्छो मीनादिसप्तमे भागे ॥ ८३ ॥

चूताङ्कुरारुणतनुस्तनुरोममुखश्च करकञ्जौ ।
युधि वैरिहा द्वितीये झषसप्तांशे सुदृढसत्वः ॥ ८४ ॥

पृथु सुमुखाख्यो वृद्धो पचितांगो गीतविद्विनीतश्च ।
सुभ्रूनासाकेशाङ्घ्रिझषतृतीये च सप्तांशे ॥ ८५ ॥

मन्त्री सुनिश्चितार्थः पूर्णास्यो वल्गुवाक् सुबुद्धिश्च ।
झषतूर्ये सप्तांशे पालशदलवद्विभक्ताङ्गः ॥ ८६ ॥

गौरप्रभारुणवर्णे नीलोत्पलदृङ्मृदुः शुचिर्दक्षः ।
मांसलवक्त्रतनुर्झषपञ्चमसप्तांशके क्षान्तः ॥ ८७ ॥

धर्मयुग्दक्षो वारिजदलवर्णनिभो विवृत्तदेहः ।
पृथुसुदृगंसदशनो मीनर्क्षे षष्ठसप्तांशे ॥ ८८ ॥

रूक्षाङ्गो मलिनरूपः भग्ननसो विविक्तदृष्टिश्च ।
जिह्मोनशुद्धवेशो झषराशी चान्त्ये सप्तांशे ॥ ८९ ॥

इति मीनः ।

विशेषः

यन्मित्रस्वगृहे फलं निगदितं तुङ्गे त्रिकोणेऽपि वा ।
तत्सर्वं विदधाति जन्मसमये षड्वर्गशुद्धो ग्रहः ॥ १ ॥

एकश्छत्रपसार्वभौमनृपतिर्हस्त्यश्वकोशान्वितः ।
द्व्याद्यैः किन्नरशक्रदेवपतयो मर्त्या भवन्ति ग्रहैः ॥ २ ॥

शुभाः स्वमित्रसौम्योच्चे निन्द्या नीचारिपापजाः ।
एवं पापशुभं वीक्ष्य तद्विशोध्य परस्परम् ॥ ३ ॥

वर्गे शुभाधिके क्रूरः शुभः सौम्योऽतिशोभनः ।
निन्द्याधिके शुभः क्रूरः क्रूरोतिक्रूरतां व्रजेत् ॥ ४ ॥

उपसंहार

प्रविचार्य यथा पथं निवन्धान् ग्रथितो मिश्रमुकुन्दवल्लभेन ।
वितनोतु मुदं नु पण्डितानां हृदि षड्वर्गफलप्रकाश एषः ॥ ६ ॥

अष्टाष्टनन्दभू (१९८८) माने वैक्रमे माधवे सिते ।
ग्रन्थः समापितः सोऽयं द्वादश्यां बुधवासरे ॥ ७ ॥

इति श्रीमत्पण्डितप्रवररामचन्द्रसुतेन श्री शिवदेव्यागर्भजेन पञ्चापदेशान्तर्गत "कुराली" ग्रामवास्तव्येन मिश्रोपाह्व श्रीपण्डितमुकुन्दवल्लभज्यौतिषाचार्य्येण संकलिते षड्वर्गफलप्रकाशे द्वितीयो विभागः ॥

॥ समाप्तश्चायं ग्रंथः ॥

श्री बटुकेशार्पणमस्तु





फलितमार्तण्डः

वंश-परम्परा (heredity), परिवेष (environment), प्रयत्न (effort) एवं ग्रहयोग का समुदित फल व्यक्तित्व है। फलित ज्योतिष के ग्रह-योगों की उपपत्ति दैवज्ञ भले ही न दे सकें, तथापि उनके द्वारा उपलब्ध युक्त परिणामों द्वारा उनकी वैज्ञानिकता प्रमाणित है। वैसे तो उस महान् प्रभु की माया के सम्मुख कोई भी विज्ञान शत प्रतिशत पूर्ण होने का दावा नहीं कर सकता, तो भी यदि इष्ट काल शुद्ध होगा और ग्रह भी सूक्ष्म, स्पष्ट रेखाष्टक सहित होंगे और प्रस्तुत ग्रन्थ के संज्ञाध्याय, भावाध्याय, भावचिन्ताध्याय और दशाध्याय बुद्धिस्थ होंगे तो पूर्वापर विचारपूर्वक कहा गया फलादेश गोली की चोट की तरह ठीक बैठेगा, इसमें सन्देह नहीं।

द्वितीय संशोधित संस्करण : दिल्ली 1975 मूल्य रु० 16.00

राश्यभिधानकल्पलताः

इस पुस्तिका की भूमिका में इस तथ्य के महत्त्व पर बल दिया गया है कि किसी व्यक्ति के नाम का क्या महत्त्व होता है। इसमें लेखक नाम रखने की विधि राशि के अनुसार सविस्तार बताते हैं और इस बात को भी स्पष्ट कर देते हैं कि राशियों का क्या प्रभाव होता है और उनके प्रभाव-स्वरूप मनुष्य किन-किन गुणों से सम्पन्न होता है। द्वितीय संस्करण : 1970 मूल्य रु० 5.00

उडुदाय-प्रदीपः

महर्षि पाराशर के ग्रहयोगों तथा दशान्तर्दशाओं पर फल-कथन के अपने बड़े ही अनोखे बहुमूल्य सिद्धान्त हैं और उन्हें समझे बिना फलित-ज्ञान अधूरा ही माना जाता है। भविष्य ज्ञान के लिए इस ग्रन्थ में तो ग्रहों के परस्पर सम्बन्ध से ही ग्रहों का शुभाशुभत्व योगकारकत्व माना है। अतः यह लघु ग्रन्थ सूक्ष्म फलादेश कथन के लिए सर्वाङ्ग परिपूर्ण अन्यनिरपेक्ष बन गया है, जिसके फलस्वरूप अनेक गूढ़ ग्रन्थियों के खुलने से फल-कथन में विशेष ज्ञान वृद्धि होती है।

प्रथम संस्करण : 1974 मूल्य रु० 6.00

कर्मठगुरुः

इस शरीर की प्राप्ति जन्मजन्मान्तर के संचित पुण्यों के फलस्वरूप होती है। अतः इसका पूर्णरूपेण उपयोग इस शरीर व आत्मा की उन्नति तथा प्रकर्ष के लिए होना आवश्यक है, अन्ततः इसी के द्वारा ही मनुष्य मुक्तिपथ पर अग्रसर होता है। इस ग्रन्थ के चार भागों में इसी उद्देश्य को लेकर लेखक ने अपने उच्च उद्गार रखे हैं। नित्यकर्म प्रकरण, नैमित्तिककर्म प्रकरण, पूजा होम प्रकरण, तथा काम्यकर्म प्रकरणों द्वारा पूर्णरूपेण प्राचीन ग्रन्थों के निचोड़ हमारे सम्मुख प्रस्तुत किये हैं। प्रत्येक कर्म की विधि से हमें अवगत किया गया है। इन्हीं विधियों के फलस्वरूप मनुष्यमात्र को शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने का निमन्त्रण दिया है। मूल्य रु० 16.00

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली :: वाराणसी :: पटना

जन्मपत्रदीपक

Buyer's Order No..attached

or Photo copy of L/C

GRI Form No...Triplicate

Declarations Forms

....

....

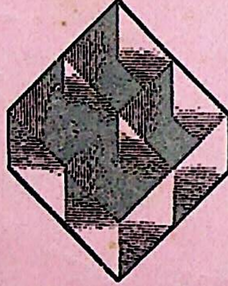
....

SHIPPING Marks & Nos.

Shipper's Signature...

Name & Address of Shipper

No shipments will be accepted if packages are not stencilled with shipping Marks & Nos, and Port of Discharge.



HEP-SHIPPING & TRAVEL AGENTS

Ck. 16/64 suriya, bulanala, Varanasi-221001.

Tel : 55964, Telex : 0545-262, Cable : "Polytrade"

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

११७



(ज्यौतिषविभागे पञ्चमं (५) पुष्पम्)

॥ श्रीः ॥

जन्मपत्रदीपकः

सोदाहरणसटिप्पणहिन्दीटीकापरिष्कृतः

रचयिता

आजमगढ़मण्डलान्तर्गतब्रह्मपुराभिजनश्रीधर्मदत्तद्विवेदिसूनुः

श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदो ज्यौतिषाचार्यः

चौखम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी (भारत)

Publishers :—
CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN
Publishers and Book Sellers
Jadau Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandir Lane
VARANASI-221001 (INDIA)

Fifth Edition 1975
Price : Rs. 3–50

Sole Distributors :—
CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
P. O. Chaukhambha, Post Box No. 32
Gokul Bhawan, K. 37/109, Gopal Mandir Lane,
VARANASI–221001 (India)

प्राक्कथन

यत्पादकञ्जयुगलस्मरणात्खलु शङ्करः ।
सकुटुम्बः समर्थोऽभूच्छङ्कर्तुं किल तं नुमः ॥

भारत के कोने-कोने तक जन्मपत्रनिर्माण का प्रचुर प्रचार होते हुए भी ऐसी छोटी कोई पुस्तक नहीं मिलती जिससे थोड़े ही में उसके सारे सार ज्ञात हो जायँ। मानसागरी, होरारत्न, जातकपद्धति प्रभृति पुस्तकें जो आजकल बाजारों में अधिकता से उपलब्ध होती हैं, विस्तृतरूप में और दुरूह होने के कारण प्रत्येक पण्डित के लिये उपकारक नहीं हैं। अतः मैंने अपने कई छात्रों और वैयाकरण मित्रों के वार-वार अनुरोध करने पर आजकल साधारणतः जिन-जिन विषयों का सन्निवेश जन्मपत्रिकाओं में होता है, उन्हीं के बनाने के प्रकारों को यथासाध्य सरल पद्यों द्वारा इसमें लिखा है। जिन विषयों में कोई विशेषता नहीं उनको प्राचीनाचार्य्योक्त पद्यों में ही रख दिया है। प्रत्येक विषयों का झटिति परिज्ञान हो जाने के लिये सोदाहरण सरल हिन्दी टीका और जगह-जगह पर आवश्यक टिप्पणी भी कर दी है।

पुस्तक का आकार वढ़ जाने के भय से फलितभाग का विशेष सन्निवेश इसमें नहीं किया गया है। यथासम्भव अवकाश मिलने पर दूसरे भाग के रूप में (यदि प्रथम भाग पण्डितों के हृदय को कुछ भी आकर्षित कर सका तो) उसके प्रकाशन का प्रयत्न किया जायगा।

इसमें लिखित प्रत्येक विषय के वारे में किसी प्रकार की खींचातानी नहीं की गई है। इसको विज्ञजन अपनी सारासार-परिशीलिनी बुद्धि से पक्षपातविहीन होकर स्वयं विचार कर लें।

अनेन चेत्सज्जनमानसेषु हर्षोद्गमः स्याल्लवमात्रमेव।
तदाल्पमेधोत्थमपि स्वकीयं परिश्रमं धन्यतमं हि मन्ये ॥
दृग्दोषजा यास्त्रुटयो ममेह याश्चैव सम्मुद्रणयन्त्रदोषात्।
तास्तास्समस्ताः स्वधिया सुधीभिः संशोधनीयाः स्वकृपालवेन ॥

शमिति।

शारदासदनविद्यालय, ब्रह्मपुर
२४-१२-१९३५ ई०

सज्जनों का सेवक—
विन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदी

ग्रन्थकृद्वंशपरिचयः—

काश्या उदीच्यां दिशि तर्कराम (३६) क्रोशे सुदूरे विदुषां निवासे ।
आजमगढप्रान्तगते सुरम्ये ग्रामे शुभे ब्रह्मपुराभिधाने ॥ १ ॥
आसीद् द्विवेदी द्विजवर्यपूज्यः श्रीमद्भरद्वाजकुलावतंसः ।
मान्यो वदान्यः प्रपितामहो मे भोलेतिनाम्ना जगति प्रसिद्धः ॥ २ ॥
तस्याऽभवन्वह्निमितास्तनूजास्तेष्वग्रजो वालकरामशर्मा ।
तस्यानुजः कृष्ण इति प्रसिद्धो विद्वद्वरः सद्धिषणाधनाढ्यः ॥ ३ ॥
श्रीमाँस्ततो रामहितो महात्मा पितामहो मे मतिमानुदारः ।
विद्यानयोदारतया स्ववंशं स्वजन्मनालङ्करणं चकार ॥ ४ ॥
पुत्रास्तदीया बहवो विनष्टा अन्ते वयस्येव ततो बभूव ।
धीरो ह्युदारो विदुषां वरिष्ठः श्रीधर्मदत्तो जनको मदीयः ॥ ५ ॥
विंशत्यब्दवयस्कस्य तस्य पुत्रोऽभवं किल ।
विन्ध्येश्वरीप्रसादेति नाम्ना लोकेतिविश्रुतः ॥ ६ ॥
एकाकिनं मां जनको मदीयः सार्धैकवर्षीयमितोऽसहायम् ।
हा मेऽसहायां जननीं तथा च दुःखाम्बुराशौ नितरां निमग्नाम् ॥ ७ ॥
कृत्वा च मातापितरौ स्वकीयौ घोरान्धकारेऽतितरां विलीनौ ।
चित्तं स्वकीयं कठिनं विधाय यातो दिवं भूमितलं विहाय ॥ ८ ॥
श्रीविश्वनाथकृपया नगरीं तदीयां सम्प्राप्य मातृजनकस्य कृपावलम्बात् ।
रामाभिलाष इति सुप्रथितस्य नाम्ना ज्ञानं ह्यवाप्य सुलिपेस्तत एव सम्यक् ॥ ९ ॥
ततः श्रीप्रभुदत्ताख्यमहामहिमशालिनः ।
विज्ञवर्य्यस्य सविधे यजुर्वेदमपीपठम् ॥ १० ॥
श्रीपूज्यपादगुरुवर्य्यरिसालदत्ताज्ज्योतिर्विदः सुधिषणाधनिनस्तथा च ।
लोकोत्तरोत्तमगुणैर्ग्रथितस्य श्रीमत्पूज्याङ्घ्रिपद्मयुगलस्य सुधाकरस्य ॥ ११ ॥
सूनोः समस्तगणितार्णवपारगश्रीपद्माकरस्य शरणागतवत्सलस्य ।
ज्योतिर्विदः सकलकाव्यकलाप्रवीणश्रीचन्द्रशेखरसुधीप्रवरस्य तद्वत् ॥ १२ ॥
प्राप्यान्तेवासित्वं तेभ्यः समवाप्य बोधकलिकां च ।
दत्त्वाचार्यपरीक्षां ज्योतिःशास्त्रे समुत्तीर्णः ॥ १३ ॥
लघुजातकस्य सरलां टीकां श्रीवालबोधनीनाम्नीम् ।
संस्कृतभाषाबद्धां विधाय पूर्वं ततः पश्चात् ॥ १४ ॥
जातकालङ्कृतेः स्पष्टां हिन्दीटीकां सभूमिकाम् ।
हौरिकाणां मनस्तुष्ट्यै (विनोदाय) विधाय तदनन्तरम् ॥ १५ ॥
अखिलव्यवहृतिसिद्ध्यै सु'फलितनवरत्नसंग्रहं' दिव्यम् ।
हिन्दीटीकोपेतं सोदाहरणं प्रकाशयित्वा च ॥ १६ ॥
दूरस्थत्वाद्धिदिवा शिथिलितमखिलं स्वीयगेहप्रबन्धं
ह्येतद्भागस्य काश्याः सुनिवसनविधिं संविधास्यन् स्वगेहे ।
शुभ्रे संवत्सरे भूमिखगखगधरा १९९१ संमिते वैक्रमीये
ग्रन्थं चेमं सटीकं सुसमुचितचितं पूर्णतां प्रापयामि ॥ १७ ॥

विषयानुक्रमणिका

श्रीजानकीजानये नमः

जन्मपत्रदीपकः

सोदाहरण-सटिप्पण-हिन्दीव्याख्योपेतः



मङ्गलाचरण—

यत्कृपालेशतः सर्वे केन्द्रेशाद्या दिवौकसः ।
इष्टं दातुं समर्थाः स्युस्तं रामं शिरसा नुमः ॥ १ ॥

जिसकी कृपा के लेश से ब्रह्मा, इन्द्र, महेश इत्यादि देववृन्द अथवा केन्द्रेश इत्यादि (केन्द्र स्थान १।४।७।१० के स्वामी, त्रिकोण स्थान ५।९ के स्वामी इत्यादि) ग्रह अपना-अपना अभीष्ट फल देने में समर्थ होते हैं, उस भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को मैं शिरसे प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

पञ्चाङ्ग पर से ग्रह स्पष्ट करने की रीति—

सूर्योदयाद्यातकालं सावनेष्टं प्रकीर्तितम् ।
पञ्चाङ्गस्थं मिश्रमानं पङ्क्तिसंज्ञं बुधैः स्मृतम् ॥ २ ॥
अनयोरन्तरं कार्य्यमवशिष्टं दिनादिकम् ।
पङ्क्त्याधिक्ये यातसंज्ञमैष्यमिष्टाधिके भवेत् ॥ ३ ॥

यातैष्यकालेन दिनादिकेन
निघ्नी गतिः खाङ्ग(६०)हृताप्तभागाः ।
शोध्याश्च योज्याः स्फुटखेचरेषु
पाते तथा वक्रखगे प्रतीपम् ॥ ४ ॥

सूर्य के बिम्बार्धोदयकाल से जन्मसमय तक जितना घटी-पल बीता हो उस को सावन इष्टकाल और तिथिपत्र (पञ्चाङ्ग) में लिखे मिश्रमानकाल को पंक्ति कहते हैं (ग्रहलाघवीयपञ्चाङ्ग में सूर्योदय काल का ही स्पष्टग्रह बना रहता है, अतः उस में उदयकाल को ही पंक्ति समझना चाहिये) ।

इन दोनों ([1]इष्टकाल और पंक्ति) का अन्तर करने (जिसमें जो घट जाय घटा देने) से जो शेष दिनादिक बचे, वह पंक्ति अधिक हो (अर्थात् पंक्ति में इष्ट घटाने से शेष बचा हो) तो यातदिवस (या ऋण चालन), इष्टकाल, अधिक हो (अर्थात् इष्टकाल में पंक्ति घटाने से शेष बचा हो) तो ऐष्यदिवस (या धनचालन) कहलाता है।

गत (ऋण) अथवा ऐष्य (धन) दिवसादि से पञ्चाङ्ग में लिखे स्पष्ट-ग्रह की गति को गोमूत्रिकागणितद्वारा गुणा करके ६० का भाग देने से जो लब्ध अंश, कला, विकलादि मिले उस कोक्र मसे पञ्चाङ्गस्थित स्पष्टग्रह की राश्यादि में घटाने और जोड़ने (अर्थात् यदि यातदिवसादि हो तो लब्ध अंशादि को पञ्चाङ्गस्थ स्पष्टग्रह की राश्यादि में घटाने और ऐष्यदिवसादि हो तो लब्ध अंशादि को पञ्चाङ्गस्थ स्पष्टग्रह के राश्यादि में जोड़ने) से तात्कालिक स्पष्टग्रह बन जाता है। वक्र ग्रह और राहु-केतु में उलटी क्रिया करने से (अर्थात् ऋण चालन हो तो वक्री-राहु-केतु में जोड़ने से तथा धन चालन हो तो वक्री-राहु-केतु-में घटाने से) स्पष्ट होता है ॥ २-३ ॥

उदाहरण—

श्रीविक्रमार्कसंवत् १९९१ श्रीशालिवाहनशकाब्द १८५६ शुद्धवैशाख कृष्ण पञ्चमी ४५। ४४ बुधवार अनुराधानक्षत्र २५। १४ सिद्धियोग ७। १८ इसके बाद व्यतिपात योग सामयिक कौलवकरण १८।१२ में किसी का जन्म हुआ। उस समय सूर्योदयकाल से गत १३। ५५ सावनेष्टकाल, अनुराधानक्षत्र का भयात ४५। ५५ और भभोग ५७।१४ है और उस दिन दिनमान ३०।५० रात्रिमान २९।१० तथा उसके समीप गुरुवार को ४५।५८ मिश्रमान है।

यहाँ वारादि सावनेष्टकाल ४।१३।५५ से वारादि पंक्ति ५।४५।५८ आगे है इस लिये वारादि पंक्ति में वारादि सावनेष्टकाल को घटाया तो शेष

---

१. घण्टादि से घट्यादि इष्टकाल बनाने की रीति—

सूर्य्योबिम्बार्धोदय से मध्याह्न के भीतर का जन्म हो तो जन्मकालीन घण्टा-मिनट में सूर्योदय-घण्टा-मिनट को घटा कर जो शेष बचे उसको ५ से गुणा करके २ का भाग देने से लब्ध घटी-पल सावन इष्टकाल होता है।

मध्याह्नोत्तर निशीथ (आधीरात) के भीतर का जन्म हो तो जन्मकालीन होरादि समय को ५ से गुणा करके २ का भाग देने पर जो लब्ध घटी-पल आवे उसको दिनार्ध में जोड़ देने से घट्यादिक सावनेष्टकाल हो जाता है।

निशीथ (आधीरात) के बाद सूर्य्यबिम्बार्धोदय के भीतर का इष्टघट्यादि जानना हो तो जन्मसमय के घण्टा-मिनट का पूर्ववत् घटी-पल बनाके उसको दिनमान और रात्रिदल के योग में (अथवा दिनार्धघटी तथा ३० घटी के योग में) जोड़ देने से पूर्वसूर्यबिम्बार्धोदय से जन्म-समय तक सावन इष्टकाल होता है।

=(५।४५।५८)-(४।१३।५५) = १।३२।३ वारादि ऋण चालन हुआ। इस ऋण चालन १।३२।३ से पंक्तिस्थ सूर्य की स्पष्टा गति ५९।० को गुणन करने के लिये न्यास—

गुणनफल = (१ । ३२ । ३) (५९ । ०)
= ५९ । १८८८ । १७७
= ९० । ३० । ५७ हुआ। इसमें ६० का भाग दिया तो स्वल्पान्तर से १ । ३० । ३१ अंशादि ऋण फल हुआ। इसको पंक्तिस्थ सूर्य के राश्यादि ११।२२।२८।३१ में घटाया तो तात्कालिक स्पष्टार्क—

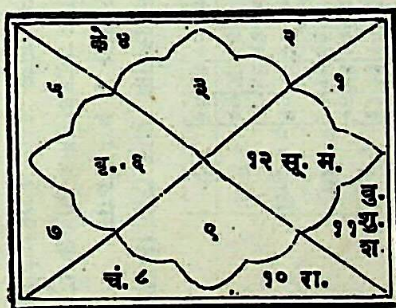
= ११। २२°। २८′। ३१″—(१°।३०′।३१″) = ११। २०°। ५८′।०″ हुआ। ऐसे ही भौमादि ग्रहों का भी साधन करना चाहिये।

५२ प. ६ गुरौ मि.मा. ४५।५८ दि.मा. ३०।५० जन्मेष्ट ४।१३।५५ कालिकस्पष्टग्रहाः

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	रा.	के.
११		११	१०	५	१०	१०	९	३
२२		२३	२६	२७	५	०	२५	२५
२८		८	२३	२०	३९	१०	३८	३८
३१		३	१६	८	२१	२७	५६	५६
५९		४५	८२	८व	५७	५	३	३
०		१७	३७	९	७	४३	११	११

सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	रा.	के.
११	७	११	१०	५	१०	१०	९	३
२०	१४	२१	२४	२७	४	०	२५	२५
५८	१	५८	१६	३२	११	१	४३	४३
०	४९	३५	३१	३८	४४	४१	२२	२२
५९	८३८	४५	८२	८व	५७	५	३	३
०	४०	१७	३७	२	७	४३	११	११

जन्मलग्नम् २।२१।४१।१०



क्रान्तिसाधन की सारणी। परमा क्रान्ति २३°'२७'।

मेषादि छ राशियों में सायनार्क हो तो उत्तरा क्रान्ति अन्यथा दक्षिणा क्रान्ति होती है।

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	अंश
मेष०	०	०	०	१	१	१	२	२	३	३	३	४	४	५	५	५	६	६	७	७	७	८	८	८	९	९	१०	१०	१०	११	११	कन्या ५
	०	२३	४७	११	३५	५९	२३	४६	१०	३४	५७	२१	४४	८	३१	५४	१८	५०	३	२६	४९	११	३४	५६	१८	४०	२	२४	४६	७	२८	
तुला ६	०	५३	४५	३६	२७	१६	३	४७	३०	९	४५	१७	४५	१०	२८	४२	५१	५३	४९	३९	२१	५७	२४	४३	५४	५५	४८	३१	३	२५	३७	मीन ११
वृष १	११	११	१२	१२	१२	१३	१३	१३	१४	१४	१४	१५	१५	१५	१६	१६	१६	१६	१७	१७	१७	१८	१८	१८	१८	१९	१९	१९	१९	१९	२०	सिंह ४
	२८	४८	१०	३१	५१	११	३१	५१	१०	३०	४९	८	२६	४४	२	२०	३८	५५	१२	२८	४४	०	१६	३१	४६	१	१५	२९	४३	५६	९	
वृश्चिक ७	३७	१७	२६	३	२७	३९	३८	२४	५५	१२	१५	२	३५	५२	५२	३६	३	१३	६	४०	५६	५३	३२	५१	५१	३०	४९	४७	२४	२३	२४	कुम्भ १०
मिथुन २	२०	२०	२०	२०	२०	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२३	कर्क ३
	९	२२	३४	४६	५७	८	१९	२९	३९	४८	५७	६	१४	२२	२९	३६	४२	४८	५४	५९	४	८	१२	१५	१८	२१	२३	२४	२६	२६	२७	
धनु ८	२४	६	१६	२	२७	२८	५	१८	८	३३	३४	१०	२०	६	२६	२१	५०	५२	२९	३९	२२	४०	३०	५४	५१	२०	२२	५८	६	४६	०	मकर ९
अंश	३०	२९	२८	२७	२६	२५	२४	२३	२२	२१	२०	१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९	८	७	६	५	४	३	२	१	०	अंश

सारणी द्वारा स्पष्ट क्रान्ति जानने की रीति—

सायन सूर्य के राशि और अंश के सामने वाले कोष्ठ में जो अंशादि क्रान्ति हो उसको अलग स्थापन करे। फिर सायन सूर्य के शेष कला विकला गतांश और ऐष्यांश सम्बन्धी क्रान्तियों के अन्तर से गुणा करके ६० का भाग देने पर जो कलादि क्रान्ति आवे उसको अलग स्थापित क्रान्त्यंश में यथास्थान जोड़ देवे तो सायन सूर्य की स्पष्ट क्रान्ति होती है।

उदाहरण—सायन रवि ०।१२°।२९'।२९" है तो ० राशि १२° के सामने की अंशादिक्रान्ति ४°।४४'।४५" हुई। फिर सायन रवि के कला विकला २९'।२९" को १२° और १३° सम्बन्धि क्रान्तियों के अन्तर से गुणा करके ६० का भाग दिया तो—

लब्धि = $\frac{(२९'।२९")[(५°।८'।१०")-(४°।४४'।४५")]}{६०} = \frac{(२९'।२९")(०°।२३'।२५")}{६०} = \frac{११।३०।२४।५}{६०}$ = ०'।१२" (स्वल्पान्तर से) मिली। इस को १२° के सामने की अंशादि क्रान्ति में जोड़ दिया तो स्पष्ट क्रान्ति = ४°।४४'।४५" + ०'।१२" = ४°।४४'।५७" हुई। सायनरवि मेष राशि में है अतः यह ४°।४४'।५७" उत्तरा क्रान्ति हुई।

क्रान्त्यंश और अक्षांश पर से पलादि चर जानने की सारणी—

	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६
१	१ ३	१ १४	१ २४	१ ३५	१ ४६	१ ५६	२ ७	२ १८	२ ३०	२ ४१	२ ५२	३ ३	३ १५	३ २७	३ ३८	३ ५०	४ २	४ १५	४ २७	४ ४०	४ ५३	५ ६	५ १९	५ ३३	५ ४६	६ १	६ १५	६ ३०	६ ४५	७ ०	७ १६
२	२ ६	२ २७	२ ४९	३ १०	३ ३२	३ ५३	४ १५	४ ३७	४ ५९	५ २२	५ ४४	६ ७	६ ३८	६ ५३	७ १७	७ ४१	८ ५	८ ३०	८ ५४	९ २०	९ ४५	१० १२	१० ३८	११ ५	११ ३३	१२ १	१२ ३०	१३ ०	१३ ३०	१४ १	१४ ३२
३	३ ९	३ ४१	४ १३	४ ४५	५ १८	५ २०	६ २३	६ ५६	७ २९	८ ३	८ ३६	९ ११	९ ४५	१० २०	१० ५६	११ ३२	१२ ८	१२ ४५	१३ २२	१४ ०	१४ ३६	१५ १८	१५ ५८	१६ ३९	१७ २०	१८ ३	१८ ४६	१९ ३०	२० ४५	२१ २	२१ ४९
४	४ १३	४ ५५	५ ३८	६ २१	७ ४	७ ४७	८ ३१	९ १५	९ ५९	१० ४४	११ २९	१२ १५	१३ १	१३ ४८	१४ ३५	१५ २३	१६ ११	१७ ०	१७ ५०	१८ ४१	१९ ३३	२० २५	२१ १८	२२ १३	२३ ८	२४ ५	२५ ३	२६ १	२७ २	२८ ४	२९ ७
५	५ १६	६ ९	७ ३	७ ५६	८ ४८	९ ४५	१० ३९	११ ३४	१२ ३	१३ २६	१४ २२	१५ १९	१६ १७	१७ १६	१८ १५	१९ १५	२० १५	२१ १७	२१ १९	२३ २३	२४ २७	२५ ३३	२५ ४०	२७ ४८	२८ ५७	३० ८	३१ २०	३२ ३४	३३ ४९	३५ ७	३६ २६
६	६ २०	७ २४	८ २८	९ ३२	१० ३६	११ ४२	१२ ४८	१३ ५४	१५ १	१६ ८	१७ १६	१८ २५	१९ ३४	२० ४४	२१ ५५	२३ ७	२४ २०	२५ ३४	२६ ४९	२८ ५	२९ २३	३० ४२	३२ २	३३ २४	३४ ४७	३६ १२	३७ २९	३९ ८	४० ३९	४२ १२	४३ ४७
७	७ २४	८ ३८	९ ५३	११ ८	१२ २४	१३ ४०	१४ ५७	१६ १५	१७ ३३	१८ ५१	२० ११	२१ ३१	२२ ५२	२४ १४	२५ ३७	२७ १	२८ ३६	२९ ५२	३१ २०	३२ ४९	३४ २०	३५ ५२	३७ २६	३९ १	४० ३९	४२ १८	४४ ०	४५ ४४	४७ ३०	४९ १९	५१ ११
८	८ २८	९ २३	११ १९	१२ ४५	१४ १२	१५ ३९	१७ ७	१८ ३६	२० ५	२१ ३५	२३ ६	२४ ३८	२६ १०	२७ ४४	२९ १९	३० ५५	३२ ३३	३४ १२	३५ ५२	३७ ३५	३९ १८	४१ ४	४२ ५१	४४ ४१	४६ ३२	४८ २६	५० २३	५२ २२	५४ २४	५६ २८	५८ ३६
९	९ ३२	११ ८	१२ ४५	१४ २२	१६ ०	१७ ३९	१९ १७	२० ५७	२२ ३८	२४ १९	२६ २	२७ ४५	२९ ३०	३१ १	३३ ३	३४ ५१	३६ ४१	३८ ३३	४० २६	४२ २१	४४ १८	४६ १७	४७ १९	५० २२	५२ २८	५४ ३६	५६ ४८	५९ २	६१ १९	६३ ४०	६६ ५
१०	१० ३६	१२ २४	१४ १२	१६ ०	१७ ४९	१९ ३८	२१ २९	२३ २०	२५ १२	२७ ५	२८ ५९	३० ५४	३२ ५०	३४ ४८	३६ ४८	३८ ४९	४० ५१	४२ ५५	४५ १	४७ ९	४९ २०	५१ ३३	५३ ४८	५६ ५	५८ २६	६० ४९	६३ १५	६५ ४५	६८ १८	७० ५५	७३ ३६
११	११ ४२	१३ ४०	१५ ३९	१७ ३८	१९ ३८	२१ ३९	२३ ४१	२५ ४३	२७ ४७	२९ ५१	३१ ५७	३४ ४	३६ १३	३८ २३	४० ३४	४२ ४७	४५ ३	४७ २०	४९ ३९	५२ ०	५४ २४	५६ ५०	५९ १९	६१ ५१	६४ २६	६७ ४	६९ ४६	७२ ३१	७५ २०	७८ १३	८१ ११
१२	१२ ४८	१४ ५७	१७ ७	१९ १७	२१ २९	२३ ४१	२५ ५४	२८ ८	३० २३	३२ ३९	३३ १७	३७ १६	३९ ३६	४१ ५१	४४ २२	४६ ४८	४९ १६	५१ ४६	५४ १८	५६ ५३	५९ ३०	६२ १०	६४ ५३	६७ ३९	७० २९	७३ ३२	७६ १९	७९ २०	८२ २६	८५ ३६	८८ ५०

क्रान्त्यंश और अक्षांश पर से पलादि चर जानने की सारणी—

	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६
१३	१३	१६	१८	२०	२३	२५	२८	३०	३३	३५	३७	४०	४३	४५	४८	५०	५३	५६	५९	६१	६४	६७	७०	७३	७६	७९	८२	८६	८९	९३	९६
	५४	१५	३६	५७	२०	४३	८	३३	०	२८	५८	२९	१	३६	१२	५१	३१	१४	०	४८	३९	३३	३१	३१	३६	४४	५७	१५	३५	२	३४
१४	१५	१७	२०	२२	२५	२७	३०	३३	३५	३८	४०	४३	४६	४९	५२	५४	५४	६०	६३	६६	६९	७२	७६	७९	८२	८६	८९	९३	९६	१००	१०४
	१	३३	३	३८	१२	४७	२३	०	३८	१८	५९	४३	२८	१३	४	५५	४९	४५	४४	४६	५१	५९	११	२६	४६	१०	३८	११	४९	३२	२२
१५	१६	१८	२१	२४	२७	२९	३२	३५	३८	४१	४४	४६	४९	५२	५५	५९	६२	६५	६८	७१	७५	७८	८१	८५	८८	९२	९६	१००	१०४	१०८	११२
	८	५१	३५	१९	५	५१	३९	२८	१८	१०	४	५९	५७	५६	५८	२	९	१८	३१	४७	२	२८	५४	२५	५९	३९	२३	१२	७	८	२५
१६	१७	२०	२३	२६	२८	३१	३४	३७	४०	४४	४७	५०	५३	५६	५९	६३	६६	६९	७३	७६	८०	८४	८७	९१	९५	९९	१०३	१०७	१११	११५	१२०
	१६	११	६	२	५९	५७	१७	५८	५९	४	९	१८	२८	३९	५४	११	३२	५५	२१	५०	२४	१	४२	२७	१८	१३	१३	१९	३१	४९	१५
१७	१८	२१	२४	२७	३०	३४	३७	४०	४३	४६	५०	५३	५७	६०	६३	६७	७०	७४	७८	८१	८५	८९	९३	९७	१०१	१०५	११०	११४	११९	१२३	१२८
	२५	३१	३८	४५	५४	४	१६	२९	४३	५९	१८	१८	१	६	५४	४२	५७	३४	१८	५८	४५	३७	३३	३४	४०	५१	८	३१	०	३७	२०
१८	१९	२२	२६	२९	३२	३६	३९	४३	४६	४९	५३	५७	६०	६४	६७	७१	७५	७९	८३	८७	९१	९५	९९	१०३	१०८	११२	११७	१२१	१२६	१३१	१३६
	३४	५२	१०	३०	५०	१३	३६	१	२८	५७	२८	१	२६	१४	५१	२८	२६	१६	११	९	११	१८	२९	४५	७	३५	९	४९	३६	३०	३३
१९	२०	२४	२७	३१	३४	३८	४१	४५	४९	५२	५६	६०	६४	६७	७०	७५	७९	८४	८८	९२	९६	१०१	१०५	११०	११४	११९	१२४	१२९	१३४	१३९	१४४
	४४	१४	४४	१६	२८	२३	५८	३६	१३	२६	३९	६	१४	३७	५९	५०	५८	३	११	२४	४१	३	२९	२	४०	२४	१५	१३	१८	३१	५२
२०	२१	२५	२९	३३	३६	४४	४४	४८	५२	५५	५९	६३	६७	७१	७६	८०	८४	८८	९३	९७	१०२	१०६	११३	११६	१२१	१२६	१३१	१३६	१४२	१४७	१५३
	१५	३८	१९	३	४८	३४	२२	१२	४	५८	५४	५४	५१	५९	८	१९	३४	५२	१५	४२	१६	५२	३५	२४	१८	२९	२८	४३	७	३७	२०
२१	२३	२७	३०	३४	३८	४०	४६	५०	५४	५९	६३	६७	७१	७५	८०	८४	८९	९३	९८	१०३	१०८	११२	११७	१२२	१२८	१३३	१३८	१४४	१५०	१५५	१६१
	७	१	५५	५१	४९	७	४८	५१	५५	२	१८	४७	२७	५०	१९	४४	१३	४६	२४	७	३	४७	४६	५१	३	२१	४७	२१	१३	५५	५६
२२	२४	२८	३२	३६	४०	४५	५०	५३	५७	६२	६६	७०	७५	७९	८४	८९	९३	९८	१०३	१०८	११३	११८	१२४	१२९	१३४	१४०	१४६	१५२	१५८	१६४	१७०
	२०	२६	३३	४१	५१	३	१०	३१	४०	९	३२	५७	२६	५८	३४	१३	५७	४५	३८	३६	३९	४८	३	२५	५४	३०	१४	३	८	२०	४२
२३	२५	२९	३४	३८	४७	४७	५१	५६	६०	६५	६९	७४	७९	८४	८८	९३	९८	१०३	१०८	११४	११९	१२४	१३०	१३६	१४२	१४७	१५३	१६०	१६६	१७२	१७९
	३४	५२	१२	३३	५५	२०	४६	१४	४५	१८	५५	३४	१६	३	५२	४६	४५	४८	५७	१०	२९	५४	२६	५	२	४	४९	१	२२	५४	३८
२४	२६	३१	३५	४०	४५	४९	५४	५९	६३	६८	७३	७८	८३	८८	९३	९८	१०३	१०८	११४	११९	१२५	१३१	१३६	१४२	१४८	१५५	१६१	१६८	१७४	१८१	१८८
	४९	२०	५२	२६	१	३९	१८	०	४४	३१	२१	१८	११	११	१५	२४	३८	५७	२०	४९	२५	७	१६	५३	५७	१०	३७	४	४६	३९	१४

यदि काशी से अन्यत्र का तिथि-नक्षत्र-योगों का मान, दिनमान इष्टकाल और स्पष्टग्रह जानना हो तो देशान्तरसारणी, क्रान्तिसारणी और चरसारणी की सहायता से चाहे जहाँ का तिथ्यादि का मान निकाला जा सकता है।

उदाहरण—

यदि कलकत्ते का तिथ्यादिमानानयन जानना है तो देशान्तर सारणी से कलकत्ते का अक्षांश २२°।३५′ और काशी से पूर्व पलात्मक ५५।० देशान्तर जान कर अलग रख लिया। फिर सायनसूर्य ०।१२°।२९′।२९″ पर से क्रान्तिसारणी की सहायता से स्पष्टा उत्तरा क्रान्ति का ४°।४४′।५७ का ज्ञान कर लिया। अब इस उत्तराक्रान्ति ४°।४४′।५७″ और अक्षांश २२°।३५′ पर से चरसारणी द्वारा चर का ज्ञान करने के लिये पहले—

२२° अक्षांश में ४° क्रांत्यंश का चर = १५।११
" ५° क्रांत्यंश का चर = २०।१५
६° कला में अन्तर = ४। ४

इस पर से (स्वल्पान्तर से) ४५′ कला क्रान्ति में
त्रैराशिक गणित द्वारा अन्तर = ३।३
इसको ४° क्रान्ति के चर में जोड़ देने से २२° अक्षांश
में ४°।४५′ क्रान्ति का चर = १९।१४

फिर—

२३° अक्षांश में ४° क्रांत्यंश का चर = १७।०
" ५° क्रांत्यंश का चर = २१।१७
६० कला में अन्तर = ४।१७

इस पर पूर्ववत् त्रैराशिक द्वारा ४५′
क्रान्ति में अन्तर = ३।१२
इसको ४° क्रान्ति में जोड़ने से २३° अक्षांश मे ४°।४५ क्रान्ति का
चर = २०।१७

उसके बाद—

२२° अक्षांश में चर = १९।१४
२३° अक्षांश में चर = २०।१७
६० कला में अन्तर = १।३

फिर त्रैराशिक से ३५′ अक्षांश में
अन्तर = ०।३७ (स्वल्पान्तर से)
इसको २२° अक्षांश के चर में जोड़ देने से कलकत्ते में उस दिन का स्पष्ट चर
फल = १९।५१ हुआ

उत्तरा क्रान्ति है अतः १५ घटी में चर पल १९।५१ को

जोड़ देने से उसदिन कलकत्ते का दिनार्ध = १५।१९।५१

उस दिन पञ्चाङ्ग से काशीका दिनार्ध = १५।२५।०

दोनों का अन्तर = ०।५।९

काशी के दिनार्द्ध से कलकत्ते का दिनार्द्ध छोटा है इस लिये यह अन्तर ऋण हुआ। यदि कलकत्ते का दिनार्द्ध बड़ा होता तो यही अन्तर धन आता और कलकत्ता काशी से पूर्व है इसलिये देशान्तर पल ५५।० धन हुआ। काशी से पश्चिम देशों का देशान्तर ऋण होता है।

अब पञ्चाङ्गस्थ तिथ्यादिमान से संस्कार करने से कलकत्ते का तिथ्यादि मान—

पञ्चाङ्गस्थ तिथि = ४५।४४।०	नक्षत्र = २५।१४।०	योग = ७।१८।०
दिनार्द्धान्तर = —०।५।९	= —०।५।९	= —०।५।९
देशान्तर = + ०।५५।०	= + ०।५५।०	= + ०।५५।०
कलकत्तेकी तिथि=४६।३३।५१	= २६।३।५१	= ८।७।५१

यहाँ ५१ विपल के स्थान में १ पल मान लिया तो कलकत्ते में पञ्चमी=४६।३४ अनुराधानक्षत्र = २६।४ व्यतिपात योग = ८।८ हुआ।

अन्यदेशीय स्पष्टग्रह बनाने की रीति—

यदि काशी से अन्यत्र का ग्रहस्पष्ट बनाना हो तो काशी के धन ऋण वारादि चालन में देशान्तर और चरान्तर का विपरीत संस्कार करने से (तथा ग्रह जो वक्री हो तो यथावत् संस्कार करने से) तत्तद्देशीय धन ऋण चालन होता है। उस पर से उपर्युक्त विधि से तत्तद्देशीय स्पष्ट ग्रह बन जाता है।

भयात-भभोगानयन—

गतर्क्षघटिका खाङ्ग६०शुद्धा स्वेष्टघटीयुता।
भयातं स्याद्भभोगस्तु निजर्क्षघटिकायुता ॥ ५ ॥
चेद्यातर्क्षघटी स्वेष्टात्पूर्वमेव समाप्यते।
तदेष्टकालात्सा शोध्याऽवशिष्टं भगतं भवेत् ॥ ६ ॥
गतर्क्षं क्षयसंज्ञं चेत्कार्यैतर्क्षघटी तदा।
तत्पूर्वर्क्षघटीयुक्ता शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥
एवं भर्क्षौ भयातादि विज्ञेयं स्वधिया बुधैः ॥ ७ ॥

यदि गतनक्षत्र का अन्त पूर्वदिन में होता हो तो गतनक्षत्र के मान (घटी-पल) को ६० घटी में घटा कर जो शेष बचे उसमें इष्टकाल जोड़ देने से भयात होता है और उसी शेष में वर्तमान नक्षत्र के घटी-पल को जोड़ देने से भभोग हो जाता है।

यदि गतनक्षत्र का अन्त उसी दिन इष्टकाल के पूर्व होता हो तो गत-नक्षत्र के घटी-पल को ही इष्टकाल में घटा देने से शेष भयात हो जाता है। यहाँ भी भभोग बनाने की क्रिया पूर्ववत् ही है :

यदि गतनक्षत्र की हानि हुई हो तो क्षयनक्षत्र के पूर्वनक्षत्र और क्षय-नक्षत्र इन दोनों के घटीपल को जोड़ कर जितना घटिकादि हो उसको गतर्क्षमान, मान के उस पर से पूर्वविधि के अनुसार भयात-भभोग बनाना चाहिये।

एवं यदि वर्तमान नक्षत्र की वृद्धि हुई हो और तीसरे दिन नक्षत्रान्त से पूर्वका इष्टकाल हो तो प्रथमविधि के अनुसार भयात-भभोग बना के दोनों में ६० घटी जोड़ देने से वास्तविक भयात-भभोग होता है ॥ ५-७ ॥

उदाहरण—

गत नक्षत्र विशाखा के घटी-पल २८।० को ६० घटी में घटाया तो ६०-(२८।०) = ३२।० शेष घट्यादि हुआ। इस ३२।० में सावनेष्टकाल १३।५५ को जोड़ दिया तो ३२।० + (१३।५५) = ४५।५५ भयात हुआ। और उसी शेष ३२।० में अनुराधा के घटी-पल २५।१४ को जोड़ दिया तो ३२।०+(२५।१४) = ५७।१४ भभोग हो गया।

सं० १९९१ शुद्धवैशाखकृष्ण १० सोमवार श्रवण ५।४३ को १०।४८ इष्ट काल पर जन्म है तो यहाँ इष्ट काल से पूर्वही गत नक्षत्र श्रवण की समाप्ति होती है अतः इष्टकाल १०।४८ में श्रवण के घटी पल ५।४३ को घटा दिया तो धनिष्ठा का ५।५ भयात हो गया और पूर्वविधि से धनिष्ठा का भभोग ५६।२४ हुआ।

शुद्ध वैशाखवदी १२ बुधवार पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र ५६।५२ के दिन सूर्योदय से २३।३६ इष्टकाल पर जन्म है तो यहाँ पूर्वदिन शततारकानक्षत्र की हानि है। इस लिये उससे पूर्व धनिष्ठा नक्षत्र के मान २।७ को गतनक्षत्र शतभिषा के मान ५६।५७ में जोड़ कर ५६।५७+(२।७) = ५९।४ गतनक्षत्र का मान कल्पना कर के पूर्वोदित विधि के अनुसार पूर्वाभाद्रपदा का भयात २४।३२ और भभोग ५७।४९ हुआ।

अधिक वैशाख सुदी ४ चतुर्थी भौमवार को १।५ इष्टकाल पर जन्म है। उस दिन कृत्तिका नक्षत्र का १।४२ घटी-पल पर अन्त है तो यहाँ नक्षत्र वृद्धि के कारण दूसरे पूर्वदिन (द्वितीया रविवार) को रात्रिमें ५८।१५ घट्यादि पर भरणी का अन्त है। अतः भरण्यन्त ५८।१५ को ६० में घटाया तो १।४५ शेष हुआ इसमें इष्टकाल १।५ और ६० जोड़ दिया तो कृत्तिका का भयात १।४५+६०+१।५ = ६२।५० हुआ। उसी शेष १।४५ में कृत्तिकान्त १।४२ घटी-पल और ६० को जोड़ दिया तो—१।४५+६०+१।४२ = ६३।२७ भभोग हुआ। एवं सर्वत्र पूर्वापर दिन के नक्षत्रान्त को देख कर भयात-भभोग का आनयन करना चाहि

चन्द्रमा स्पष्ट करने की रीति—

भयातं भभोगाद् धृतं तद्गतर्क्षैर्युतं खाब्धि४०निघ्नं विभक्तं क्रमेण ३।
फलं भागपूर्वः शशी तद्गतिः खाभ्रखाभ्रेभनागाश्विनो भोगभक्ता ॥८॥

पलात्मक भयात में पलात्मक भभोग का भाग देने पर जो लब्धि आवे उसको गतनक्षत्र की संख्या में जोड़ देना। फिर योग फल को ४० से गुणा करके ३ से भाग देने पर लब्धि अंशादि स्पष्ट चन्द्रमा होता है। यहाँ अंश संख्या में ३० का भाग देकर लब्धि राशि और शेष अंश बना लेने पर राश्यादि चन्द्रमा स्पष्ट हो जाता है और २८८०००० में पलात्मक भभोग का भाग देने से लब्धि चन्द्रमा की स्पष्टा गति होती है ॥ ८ ॥

उदाहरण—

अनुराधा नक्षत्रके भयात ४५।५५ और भभोग ५७।१४को ६० से गुणा कर दिया तो पलात्मक भयात २७५५ और ३४३४ भभोग हुआ। इस पलात्मक भयात २७५५ में पलात्मक ३४३४ भभोग का भाग दिया तो लब्धि = $\frac{२७५५}{३४३४}$ = ०।४८।८।११ आई। इसमें गतनक्षत्र विशाखाकी संख्या १६ को जोड़ दिया तो योग १६।४८।८।११ हुआ। इसको ४० से गुणा कर के ३ से भाग दिया तो—
$\frac{(१६।४८।८।११)४०}{३}$ = $\frac{६७२।५।२७।२०}{३}$ = २२४°। १' ४९"—लब्धि अंशादि स्पष्ट चन्द्रमा हुआ। यहाँ प्रथम स्थान २२४ में ३० का भाग देने से लब्धि ७ राशि और शेष १४ अंश हुए। अत एव ७।१४°।१'। ४९" राश्यादि स्पष्ट चन्द्रमा हुआ।

अट्ठाइस लाख अस्सी हजार २८८०००० में पलात्मक भभोग ३४३४ से भाग दिया तो लब्धि = $\frac{२८८००००}{३४३४}$ = ८३८'। ४०" चन्द्रमा की स्पष्टा गति हुई ॥

चन्द्रमा स्पष्ट करने की दूसरी रीति—

भाङ्घ्रिभुक्तघटी खाभ्राश्विघ्नी भाङ्घ्रिघटीहृता।
लब्धं कलाद्यं चन्द्रस्य गतराश्यादिना युतम् ॥
स्फुटः स चन्द्रो विज्ञेयो गतिः पूर्वोदिता मता ॥ ९ ॥

नक्षत्रचरणभुक्तघटी को २०० से गुणा करके चरणभोगघटी से भाग देने पर जो लब्धि कलादि प्राप्त हो उसको चन्द्रमा की गतराशिसंख्या और वर्तमान चन्द्रराशि के गतनवांशांशादि के योग में जोड़ देने से स्पष्ट राश्यादि चन्द्रमा होता है ॥ ९ ॥

उदाहरण—

भयात में ४ का भाग दिया तो चरणभोग = $\frac{५७।१४}{४}$ = १४।१८।३० हुआ त्रिगुणितचरणभोग को भयातघटी में घटाया तो नक्षत्र चरणका भुक्त घट्यादि
= ४५।५५—३ (१४।१८।३०) = २।५९।३० हुआ।

चरणभुक्तघटी को २०० से गुणा करके चरणघटी से भाग दिया तो

लब्धि कलादि $= \frac{(२।५९।३०)२००}{६४।१८।३०}$

$= \frac{१०७७०\times२००}{२३१५१०}$

$= \frac{२१५४०००}{२३१५१०} =$ ४१′।४९″ आई।

और १४१ शेष बचा इस को त्याग दिया। लब्ध कलादि को चन्द्रमा की गत-राशि संख्या ७ और वर्तमान चन्द्रराशि वृश्चिक के गतनवांशसंख्या ४ के अंशादि १३°।२०′ के योग ७।१३°।२०′ में जोड़ दिया तो राश्यादि स्पष्ट चन्द्रमा = ७।१३°।२०′ + ४१′।४९″ = ७।१४°।१′।४९″ हो गया।

पलभा-चरखण्डज्ञान—

दिनार्धकालेऽजमुखस्थिते या भा सायनार्के पलभा भवेत्सा।
दिग्भिर्गजैर्दिग्गुणितैर्गुणांशैस्त्रिष्ठा हताः स्युश्चरखण्डकानि ॥ १० ॥

जब मध्याह्नकाल में सायन सूर्य मेषादि में हो उस दिन मध्याह्नकालमें १२ अंगुल शंकु की छाया को पलभा कहते हैं। पलभा को ३ स्थानों में रख के क्रम से १०, ८, $\frac{१०}{३}$ से गुणा कर देने पर मेषादि राशियों के ३ चरखण्ड होते हैं ॥ १० ॥

उदाहरण—

आजमगढ़ की पलभा ५।५१ को ३ स्थानों में ५।५१, ५।५१, ५।५१ रख से क्रम से १०, ८, $\frac{१०}{३}$ से गुणा कर दिया तो गुणन फल ५८।३०, ४६।४८, $\frac{५८।३०}{३}$ हुए। सर्वत्र 'अर्धाधिके रूपं ग्राह्यमर्धाल्पे त्याज्यम्' इस नियम के अनुसार दूसरे अंको का त्याग दिया तो क्रमसे ५८।४७।१९ मेषादि के चरखण्ड हो गये।

यहाँ जो पलभाज्ञान प्रकार दिया है उस से सर्वत्र की पलभा का ज्ञान हो जाना सुलभ नहीं है। अतः इस कठिनाई को दूर करने के अभिप्राय से कतिपय देशों के अक्षांश और उस पर से पलभाज्ञान की सारणी नीचे दी जाती है—

काशी से पूर्व देशों के अक्षांशादि—

देशनाम	अक्षांश	देशान्तरघ०	देशनाम	अक्षांश	देशान्तरघ०
अकयाव (वर्मा)	२९।०	१।४०।०	आराकान (वर्मा)	२०।५०	१।४४।४०
अगरतला (बंगाल)	२३।५०	१।२३।५०	आवा (वर्मा)	२२।०	२।३०।१०
अंगलस्टेट (बिहार)	२०।४८	०।२०।१०	आसनसोल (बंगाल)	२३।४२	०।४०।१०
अमरपुर (वर्मा)	२१।५५	२।११।१०	आसाम	२६।०	१।४०।०
अमावा राज्य	२५।९	०।२८।२०	इंग्लिशबाजार (बंगाल)	२५।०	०।५१।५०
अलन (वर्मा)	२२।११	२।१।२०	इच्छागढ़	२३।५	
अलीगंज हथुआ	२६।५०	०।१४।०	उडीसा	२१।१०	०।२९।४०
अलीपुर (बंगाल)	२२।३२	०।५४।०	ऐजल (आसाम)	२३।४४	१।४५।०
आजमगढ (यू०पी०)	२६।०	०।२।३०	कछार (बिहार)	२५।३०	०।४६।४०
आरा (बिहार)	२५।३४	०।१७।१०	कटक (बिहार)	२०।२८	०।३०।०

देशनाम	अक्षांश	देशान्तरघ०
कलकत्ता	२२।३५	०।५५।०
कलिङ्गपट्टम्(मद्रास)	१८।२०	०।११।४१
काठमण्डू (नैपाल)	२७।४२	०।२२।०
कृष्णगढ़ (बंगाल)	२३।२४	०।५५।३०
कुदरा	२५।५६	०। ६।१०
कुमिल्ला (बंगाल)	२३।२५	१।२३।२०
कूचविहार (बंगाल)	२६।२०	१। ४।५०
कोचीन (वर्मा)	२६।०	२।२०
खण्डपारा (बिहार)	२०।१६	०।२२।०
खल्लारस्टेट ,,	२१।३७	०।२६।२०
खुरदा ,,	२०।११	०।२६।४०
गञ्जाम (मद्रास)	१९।२२	०।२१।०
गया	२४।४९	०।२०।०
गरवा (बिहार)	२४।१०	०। ८।४०
गाजीपुर (यू० पी)	२५।३४	०। ४।०
ग्वालन्दो (बंगाल)	२३।५०	१। ७।४०
ग्वालपाडा (आसाम)	२६।११	१।१६।१०
गिद्धौर	२४।५१	०।३३।०
गुरला (नैपाल)	२७।५५	०।१५।०
गोपालपुर (मद्रास)	१९।१६	०।१९।३०
गोरखपुर (यू० पी)	२६।४५	०। २।२०
गोलाघाट (आसाम)	२६।३०	१।४९।०
गोहाटी ,,	२६।११	१।२७।०
चन्द्रपुर (बंगाल)	२३।१३	०।१६।४०
चन्दर नगर ,,	२२।५२	०।५४।१०
चेरापंजी (आसाम)	२५।१७	१।२७।५०
चैवासा (बिहार)	२२।३३	०।२८।०
छत्तरपुर (मद्रास)	१९।२१	०। २।१०
छपरा (बिहार)	२५।४७	०।१७।०
छयगाव (आसाम)	२६।५	१।२३।०
छोटानागपुर(बिहार)	२३।०	०।२०।०
जगन्नाथगंज(बंगाल)	२४।३९	१। ८।२०
जगन्नाथपुरी(बिहार)	१९।४५	०।३०।०
जनकपुर	२३।४३	०।१२।०
जमालपुर (बिहार)	२५।१९	१।१०।०
जयपुर ,,	२०।५१	०।३३।५०
जलपाईगुरी(बंगाल)	२६।३२	०।५७
टाटानगर (बिहार)	२२।५०	०।३१।४
टेकारी	२४।४८	०।१७।३०
डालटनगंज(बिहार)	२४।२	०। ९।०

देशनाम	अक्षांश	देशान्तरघ०
डिबरुगढ़ (आसाम)	२७।२९	१।५९।०
डीमापुर ,,	२५।५१	१।४८।०
डुमराँव	२५।३२	०।१२।०
डुमरिया इस्टेट	२७।२९	०।१५।६
ढाका (बंगाल)	२३।४३	१।१५।८
दमदम ,,	२२।३८	०।५४।४०
दरभङ्गा (बिहार)	२६।१०	०।३०।०
दार्जिलिङ्ग(बंगाल)	२७।३	०।५२।४०
दिनाजपुर	२५।२७	०।५७।३०
दुमका (बिहार)	२४।३०	०।४३।४०
देवगढ़ ,,	२१।३२	०।१७।४०
देवगढ़ ,,	२४।३०	०।३७।३०
धवलागिरि (नैपाल)	२९।११	०।२०।०
धानकुटा ,,	२६।५५	०।४३।२०
धुबरी (आसाम)	२६।२	१।१०।०
नदिया (बंगाल)	२३।२४	०।५९।२०
नरायनगंज(बंगाल)	२२।२७	१।१५।१०
नालगिरिराज्य(बिहार)	२१।२७	०।३७।५०
नेवालपुर(नैपाल)	२७।४५	०।१२।०
नैपालराज्य(हिमालय)	२७।५९	०। ९।४०
पटना (उड़ीसा)	२०।२४	०।१२।१०
पबना (बंगाल)	२४।१	१।३।०
पलासी	२५।३५	०।४९।४०
पलामू	२३।५२	०।१३।०
पुर्निया (बिहार)	२५।४९	०।४५।०
पेगू (वर्मा)	१७।१५	२।१५।०
प्रोम (वर्मा)	१८।४७	२। २।३०
फरीदपुर (बंगाल)	२३।३६	१। ७।४०
बकसर (बिहार)	२५।३४	०।१०।१०
बरदमान (बंगाल)	२३।१६	०।४८।०
बरहमपुर (मद्रास)	१९।१८	०।१८।३०
बलिया (यू० पी०)	२५।४४	०।१२।०
ब्रह्मपुर (बङ्गाल)	२४।६	०।५१।०
बाकुड़ा (बङ्गाल)	२३।१४	०।४१।१०
बाकरगंज(बङ्गाल)	२२।२९	१।१३।१
बालासोर (बिहार)	२१।३०	०।३२।०
बांकीपुर (बिहार)	२५।४०	०।२२।०
बांसी (बिहार)	२४।४०	०।३९।४०
बैरीसाल (बङ्गाल)	२२।४३	१।१४।०
बोगरा (बङ्गाल)	२४।५१	१। ४।२०

देशनाम	अक्षांश	देशान्तरघ०
भटगान (नैपाल)	२७।४२	०।२३।४०
भभुआ	२५।५	०। ५।५०
भागलपुर (बिहार)	२५।१५	०।४०।०
भामू (वर्मा)	२४।१६	२।२०।०
भूटान (हिमालय)	२७।३०	१।२०।०
भैरवबाजार(बंगाल)	२४।२	१।१९।५०
मकसूदावाद	२४।११	०।५३।०
मदारीपुर (बङ्गाल)	२३।१४	१।१२।३०
मधुवनी (बिहार)	२६।२१	०।३१।१०
मनीपुरराज्य(आसाम)	२४।४४	१।४९।४०
माडले (वर्मा)	२२।०	२।१०।०
मानेचौक	२६।७	०।२७।३०
मालदह (बङ्गाल)	२५।२	०।५१।२०
मुर्शिदाबाद	२४।११	०।५३।१०
मुंगेर (बिहार)	२५।२३	०।३५।०
मुजफ्फरपुर(बिहार)	२६।७	०।२४।०
मेदिनीपुर	२२।२९	०।४४।०
मैमनसिंह (वंगाल)	२४।४६	१।१४।०
मोतिहारी	२६।४०	०।१६।४०
मोकामा	२५।२४	०।२९।१०
मौलमीन (वर्मा)	१६।३०	२।२६।०
रंगून "	१६।४५	२।१४।०
रङ्गपुर (बङ्गाल)	२५।४५	१। ५।०
रांची (बिहार)	२३।२३	०।२३।४५
राजमहल	२५।२	०।४८।३०
रामपुर (बिहार)	२१।५	०।१३।४०
रानीगंज (बङ्गाल)	२३।३५	०।४१।०
लक्खीसराय	२५।१०	०।३६।१०
लखीमपुर (आसाम)	२७।१४	१।५१।१०
लासो (वर्मा)	२२।५८	१।२९।४०
लोहरदग्गा (बिहार)	२३।२६	०।४२।३५
वंकोक (श्याम)	१४।०	१।५५।०
वारपेटा (आसाम)	२६।०	१।२०।३०
वारकपुर (बङ्गाल)	२२।४६	०।५४।०
वाराहभूमि	२३।१०	०।३४।०
वारीपद (बिहार)	२१।५६	०।३७।४०
बिहार	२५।११	०।२५।०
वेतिया (बिहार)	२६।४८	०।१५।१०
वैद्यनाथ धाम	२४।३०	०।३७।१०
शक्तिगढ़	२२।१	०।५०।०
शान्तिपुर (बङ्गाल)	२३।१४	०।५४।५०
श्याम	१४।०	२।५०।०
शिवसागर(आसाम)	२६।५९	१।५६।०
सदिया "	२७।५०	२। ७।०
सम्बलपुर (बिहार)	२१।२८	०। ९।०
सरगूजा	२३।५	०।५०।०
समस्तीपुर	२१।३५	०।१०।०
ससराम (बिहार)	२४।५७	०।१५।०
सिलहट (आसाम)	२४।५३	१।३९।०
" "	२६।३०	१।४०।०
सिलचर "	२४।५०	१।४४।४०
सिंहभूमि	२२।१५	०।२३।०
सिंगापुर	२१।०	३।२०।०
सीतामढ़ी	२६।३४	०।२४।०
सुन्दरगढ़ (बिहार)	२२।६	०।२०।०
सेहडा	२५।२८	०।१७।३०
सोनपुर	२१।५	०।१७।०
हजारीबाग (बिहार)	२३।५९	०।२४।०
हाबीगंज (आसाम)	२४।२४	१।२५।०
हाकू (वर्मा)	२२।४०	१।४६।५०

काशी से पश्चिम देशों के अक्षांशदेशान्तर—

देशनाम	अक्षांश	देशान्तरघ०
अकालकोट (वंबई)	१७।३१	१। ७।३०
अकोला (बरार)	२०।४२	०।५९।२०
अजन्ता (हैदराबाद)	२०।३३	०।१२।०
अजमेर(राजपुताना)	२६।२७	१।२३।०
अजयगढ़ (सी०आई)	२४।५३	०।२७।५०
अञ्जार	२३।४	२। ७।२०
अटक (पञ्जाब)	३३।५३	१।४७।१०
अनन्तपुर (मैसूर)	१४।५	१।१७।१०
अनुरुद्धपुर (लङ्का)	८।२२	०।२६।१०
अनूपशहर	२८।२१	०।४६।४०
अमरावती (बरार)	२०।५६	०।५२।१०
अमरेली (बड़ोदा)	२१।३६	१।५७।३०
अमरोहा (यू०पी०)	२८।४४	०।४४।५०
अमृतसर (पञ्जाब)	३१।३७	१।२२।०

देशनाम	अक्षांश	देशान्तरघ०
अमेठी	२६।७	०।१२।०
अंबर (राजपुताना)	२६।५९	१। ७।१०
अम्बा (हैदराबाद)	१८।४४	१। ६।१०
अम्बाला (पञ्जाब)	३०।२१	१। १।२०
अयोध्या	२६।४८	०। ७।३०
अरन्तजी (मद्रास)	१०।११	०।२९।४०
अरवी (सी०पी०)	२०।५९	०।४७।२०
अलमोडा	२९।३७	०।३३।१०
अलवर	२७।३४	१। ३।२०
अल्पी (ट्रावंकोर)	९।३०	१। ६।१०
अलीगढ़ (यू०पी०)	२७।५४	०।४९।०
अलीबाग (बम्बई)	१८।३९	१।४०।५०
अलीराजपुर	२२।११	१।२६।०
अस्तूर (काश्मीर)	३५।२०	१।२१ ४०
अहमदनगर (बम्बई)	२२।३८	१।४०।०
,, ,,	१९।५	१।२०।२०
अहमदपुर (पञ्जाब)	२९।६	१।५७।२०
अहमदाबाद (बम्बई)	२३।२	१।४३।२०
आगरा (यू० पी०)	२७।१०	०।४७।३०
आबू (राजपुताना)	२४।३६	१।४२।३०
आरकोट (मद्रास)	१२।५५	०।३६।०
आरनी ,,	१२।४०	०।३६।५०
आसकोल (काश्मीर)	३५।५०	१।११।३०
आरकोनम् (मद्रास)	१३।५	०।३२।५०
इटावा (यू० पी०)	२६।४७	०।४०।३०
इन्दौर	२२।४४	१।१०।०
इम्फाल (मनीपुर)	२४।४४	१।४९।२०
इलोरा (हैदराबाद)	२०।२	२।१७।५०
उज्जैन (ग्वालियर)	२३।९	१। ९।०
उन्नाव (यू० पी०)	२६।२०	०।२७।०
उटकमण्ड (मद्रास)	११।२४	१।१३।२०
उदयपुर (राजपुताना)	२४।३५	१।३२।२०
उमरकोट (बम्बई)	२५।२२	२।१२।१०
उसका (यू० पी०)	२७।१४	०। २।१०
एटा ,,	२७।३५	०।४२।२०
औरङ्गाबाद	१९।५३	१।१७।५०
कच्छ (स्टेट)	२३।३०	२।२८।०
कटनी (सी० पी०)	२३।४०	०।२५।३०
कपूरथला (पञ्जाब)	३१।२३	१।१६।०
करौली (राजपुताना)	२६।३०	०।५९।२०

देशनाम	अक्षांश	देशान्तरघ०
कराची (बम्बई)	२४।५१	२।३८।४०
करीमनगर (हैदराबाद)	१८।२८	०।३९।०
कन्नौज (यू० पी०)	२७।३	०।२०।२०
कर्नाटक	१३।०	०।४०।०
कर्नौल (पञ्जाब)	२९।४२	१।१०।४०
कंकर (सी०पी)	२०।१५	१।१४।४०
कसौली (पञ्जाब)	३०।५३	१।५५।५०
काँकरौली	२५।०	१।३०।०
काञ्चीवरम् (मद्रास)	१२।५०	०।३२।३०
काठगोदाम (यू०पी)	२९।१६	०।३६।०
काठियावाड़ (बम्बई)	२०।०	२। ०।०
कानपुर (यू० पी०)	२४।२८	०।२७।३०
कालाबाग (पञ्जाब)	३२।४८	१।५४।०
कालीकोट (मद्रास)	११।१५	१।११।५०
काल्पी	२६।८	०।३२।०
किशनगढ़ (राजपुताना)	२६।३५	१। ८।०
कुण्डापुर (मद्रास)	२३।३८	१।२२।४०
कुनूर ,,	११।२०	१। १।४०
कुमाऊँ (यू० पी०)	२९।५५	०।३७।०
कुम्भकोणम्	१०।५८	०।३७।०
कुरुक्षेत्र	३०।०	१। ९।०
कोकनद (मद्रास)	१६।५७	०। ७।३०
कोचीनराज्य ,,	९।५८	१। ८।१०
कोटाराज्य (राजपुताना)	२५।१०	१।११।५०
कोलम्बो (लङ्का)	६।५६	०।३०।३०
कोलाचल (ट्रावंकोर)	८।१०	०।५८।२०
कोल्हापुरराज्य (बम्बई)	१६।४२	१।२८।०
खीरी (यू० पी०)	२७।५४	०।२२।०
खुरजा (यू० पी०)	२८।१५	०।५१।४०
खान्देश (बम्बई)	२०।४५	१।२०।०
खैरगढ़ (सी० पी०)	२१।२६	०।१९।४०
गढ़वाल (यू० पी०)	३०।१५	०।४३।४०
गाजियाबाद	२८।४०	०।५५।२०
गुरगांव (पञ्जाब)	२८।३७	०।५९।२०
गुरदासपुर ,,	३२।३	१।१५।३०
गुजरावाला ,,	३२।१०	१।२७।४०
गुजरात जि० (बम्बई)	२३।०	१।४५।०
गुजरात (पञ्जाब)	३२।३६	१।२९।१०
गोलकुण्डा (हैदराबाद)	१७।२३	०। ५।२०
गोलगोंडा (मद्रास)	१७।४१	०। ४।५०

देशनाम	अक्षांश	देशान्तरघ०
गोंडा (यू० पी०)	२७।२८	०।१०।०
ग्वालियर	२६।१४	०।४९।२०
चतुरपुर (मद्रास)	१९।२१	०।३४।३०
चँदौसी	२८।२८	०।४२।०
चन्दा (सी० पी०)	१९।५७	०।३६।३०
चम्बाराज्य (पञ्जाब)	३२।२९	१। ६।०
चिटार (राजपुताना)	२४।५४	१।२३।०
चित्तौड़ (मद्रास)	१३।१३	१।२५।२०
चित्रकूट	२५।१२	०।२१।०
चिनाव	३१।०	२। ५।०
चैनपुर	२०।२८	
छत्तीसगढ़स्टेट(सी.पी.)	२१।३०	०।१०।०
छत्तरपुरस्टेट(सी.आई.)	२५।५८	०।३३।४०
छिन्दवारा(सी०पी०)	२२।३	०।४०।१०
जगदलपुर(सी०पी०)	१९।५	०। ९।१६
जनकपुर ,,	२३।४३	०।१२।०
जफराबाद (बम्बई)	२०।५२	१। ८।४०
जवरा (सी०आई०)	२३।३५	१।२८।३०
जबलपुर (सी०पी०)	२३।१०	०।३०।२८
जम्बूराज्य(काश्मीर)	३२।४४	१।२१।
जयपुर (झाडी)	१८।५७	०। ३।४०
जयपुरराज्य(राजपु०)	२६।५५	१।१३।४०
जलालपुर	३२।४०	१।३७।५०
जलन्धर (पञ्जाब)	३१।१९	१।२०।०
जहाजपुर (राजपु०)	२५।३८	१।१६।५०
जामनगर	२२।२७	२।१०।०
जालौन (यू० पी०)	२६।८	०।४९।०
जींदराज्य (पञ्जाब)	२९।१९	१। ६।०
जूनागढ़राज्य(बम्बई)	२१।३१	२। ४।०
जैसलमेरराज्य(राजपु०)	२६।५५	१।५९।०
जोधपुरराज्य (राजपु०)	२६।१८	१।३९।२०
जौनपुर (यू० पी०)	२५।४६	०। ३।०
जौहरस्टेट (बम्बई)	१९।५२	१।३६।५०
झालरापाटन (राजपु०)	२४।३२	१। ८।०
झांसी (यू० पी०)	२५।२७	०।४५।२०
झुनझुन (राजपुताना)	२८।९	१।१६।०
टोंकराज्य (राजपु०)	२६।११	१।१२।३०
ट्रावङ्कोरराज्य(मद्रास)	९।०	१। ०।०
डेराइस्माइलखां(पञ्जाब)	३१।५१	२।१।२०
डूंगरपुरस्टेट(राजपु०)	२३।५०	१।३१।४०

देशनाम	अक्षांश	देशान्तरघ०
डिडवना (राजपु०)	२७।१७	१।२५।५०
डूगरगढ़ (सी०पी०)	२१।१२	०।२८।२०
तञ्जोर (मद्रास)	१०।४७	०।३१।०
तारागढ़ (अजमेर)	२६ ०	१।२६।४०
त्रिचनापल्ली(मद्रास)	१०।५०	०।४३।१०
त्रिवेन्द्रम् (ट्रवङ्कोर)	८।२९	१। १।१०
द्वारका (बरौदा)	२२।१४	२। २।०
दिलावर	३९।४५	१।५४।२०
देवासस्टेट(सी.आई.)	२२।५८	१। ९।०
देवली (अजमेर)	२५।४६	१।१५।५०
देहरादून (यू०पी०)	३०।१९	०।४९।१०
देहली	२८।३८	०।५७।३०
दौलताबाद(हैदरा०)	१९।५७	१।१७।३०
धारनपुरस्टेट(बम्बई)	२०।३२	१।३७।५०
धरमशाला (पञ्जाब)	३२।१९	१। ६।१०
धवलपुरस्टेट(राजपु०)	२६।४२	०।५१।३०
नरसिंहगढ़ राज्य	२३।४४	०।५८।४०
नरसिंहपुर(सी०पी०)	२२।५७	०।३७।३०
नवानगरराज्य(बंबई)	२२।२७	२। ८।५०
नागपुर (सी०पी०)	२१।९	०।३९।१०
नागपुर	२०।०	०।२०।२०
नागौर	२७।१५	१।३३।४०
नाथद्वार	२४।५२	१।३०।०
नाभाराज्य (पञ्जाब)	३०।२५	१। ८।०
नारनौल (पटियाला)	२८।२	१। ८।४०
नासिक (बम्बई)	२०।२	१।३२।०
निजामाबाद(हैदरा०)	१८।४०	०।४८।२०
नीमच	२४:२७	१।२१।२०
नैनीताल (यू०पी०)	२९।२३	०।३५।०
नैपालगंज (यू०पी०)	२७।५९	०।३४।०
पटियालाराज्य(पञ्जाब)	३०।२०	१। ५।०
पण्ढरपुर (बम्बई)	१७।४१	१।१६।१०
प्रतापगढ़राज्य(राजपु०)	२४।२	१।१२।२०
प्रतापगढ़जि०(यू०पी०)	२५।२७	०।१३।०
प्रयाग ,,	२५।२८	०।११।४०
पठानकोट (पञ्जाब)	२८।१८	१। २।०
पांडीचेरी (मद्रास)	११।५६	०।३२।१०
पन्नास्टेट(सी०आई०)	२४।४४	०।२७।४०
पानीपत (पञ्जाब)	२९।२३	१।१९।३०
पालनपुर	२४।१२	१।४२।५०

देशनाम	अक्षांश	देशान्तरघ०
पीलीभीत(यू०पी०)	२८।४०	०।३।२।०
पूना (बम्बई)	१९।०	१।३०।२०
पोरबन्दर (बम्बई)	२१।३७	२।१३।३०
पेशावर	३४।२	१।५५।०
पुष्कर	२६।२८	१।२५।०
फतेगढ़ (यू०पी०)	२७।२३	०।३३।२०
फतेपुर ,,	२५।५५	०।२२।५०
फतेपुर सिकरी	२७।६	०।५३।०
फतेपुर(राजपुताना)	२८।०	१।१९।४०
फरीदकोट (पञ्जाब)	३०।४०	१।२२।३०
फरुखाबाद(यू०पी०)	२७।२४	१। ०।२०
फिरोजपुर (पञ्जाब)	२७।४७	०।३०।१०
फिरोजपुर ,,	३०।५५	१।२४।०
फिरोजाबाद	१७।१५	१।० ।२०
बङ्कोट (बम्बई)	१७।५७	१।३९।१०
बघेलखण्ड(सी०आई०)	२४।१०	१।१७।०
बङ्गलोर (मैसूर)	१२।१८	०।४३।३०
बण्टवाल (मद्रास)	१२:५३	१।१९।१०
बदायूं	२८।१०	०।४०।०
बम्बई	१८।५५	१।४१।४०
बरवानी(सी०आई०)	२२।३	१।२०।३०
बरसी (बम्बई)	१८।१३	१।१.२।४०
बरार (सी०पी०)	२१।०	१। ०।०
बरढी (सी०आई०)	२४।३०	०। ५।४०
बरोच (बम्बई)	२१।४५	१।४०।०
बरौदा ,,	२२।०	१।३५।०
बरेली (यू० पी०)	२८।२२	०।३५।०
बलतिस्तान(काश्मीर)	२५।३.०	१।१०।०
बलरामपुर	२७।२७	०। ८।०
बलोत्तरा(राजपुताना)	२५।४९	१।४६।३०
बसाहर (पञ्जाब)	३१।३०	०।४५।०
बसीम (बरार)	२०।५	०।५८।२०
बसेन (बम्बई)	१९।२२	१।४०।४०
बस्तर (सी० पी०)	१८।३०	०।२०।०
बस्ती (यू० पी०)	२६।४८	०। ३।०
बहराइच ,,	२७।३४	०। १५।०
बहावलपुर (पञ्जाब)	२९।२४	१।५२।०
बादनूर (सी०पी०)	२१।५४	०।५०।३०
बादुला (लङ्का)	६।५९	०।१९।१०
बांदा (यू० पी०)	२५।२८	०।२७।०
बाराबङ्की ,,	२६।५६	०।१८।०

देशनाम	अक्षांश	देशान्तरघ०
बारीदोआब (पञ्जाब)	३०।३२	१।४०।०
बारां (राजपुताना)	२५।५	१। ४।३०
बालाघाट(सी०पी०)	२१।५५	०।२७।३०
बालुचिस्तांन	२८।०	२। ०।०
बिजनौर	२९।४०	०।४३।०
बीकमपुर (राजपु०)	२७।४५	१।४८।२०
बीकानेर (राजपु०)	२८।१	१।३५।०
बीजापुर (बम्बई)	६९।५०	१।१२।२०
बुरहानपुर(सी०पी०)	२१।१७	०।४६।७
बुलन्दशहर	२८।२४	०।५९।१०
बून्दी (राजपुताना)	२५।२७	१। ३।१०
बेलरी (मद्रास)	१५।९	०।५१।१०
बेला (यू० पी०)	२५।५६	०। ९।४०
ब्यावर (अजमेर)	२६।६	१।२६।३०
बन्सवारा (राजपु०)	२३।३०	१।२६।०
भटिन्दा (पञ्जाब)	३०।११	१।२०।०
भण्डारा (सी० पी०)	२१।९	०।३३।०
भदौरास्टेट(सीआई०)	२४।४८	०।५३।४०
भरतपुर (राजपुताना)	२७।१५	०।५५।०
भावनगर (बम्बई)	२१।४६	१।४८।०
भिलसा (ग्वालियर)	२३।३२	०।५१।३०
भिवानी (पञ्जाब)	२८।४६	१। ६।२०
मीर (हैदराबाद)	१९।०	१।११।४०
भुसावल (बम्बई)	२१।२	१।२२।१०
भूपालस्टेट	२३।१६	०।५५।०
भेरा (पञ्जाब)	३२।२९	१।४०।३०
भोरस्टेट (बम्बई)	१८।९	१।३१।०
मङ्गलोर (मद्रास)	१२।५२	१।२०।०
मण्डीराज्य (पञ्जाब)	३१।४३	०।५९।०
मथुरा	२७।३२	०।५०।०
मदुरा (मद्रास)	६।५८	०।५०।०
मद्रास	१३।४	०।२८।०
मलकापुर (बरार)	२०।५३	१। ७।१०
महावलीपुर(मद्रास)	१२।३७	०।२२।२०
महेवा (यू० पी०)	२०।१८	०।३९।१०
मानिकपुर(यू० पी०)	२४।४	०।११।५०
मालवा (सी०आई०)	२३।४०	०।५५।२०
मांढा (सी० पी०)	२२।४३	०।२०।५०
मिर्जापुर (यू० पी०)	२५।४	०। ४।१०
मुजफरगढ़ (पञ्जाब)	२०।५	१।५७।२०

देशनाम	अक्षांश	देशान्तरघ०
मुजफ़रनगर(यू॰पी॰)	२९।२८	४।५२।४०
मुरादाबाद ,,	२०।५०	०।४२।०
मुलतान (पञ्जाब)	३०।१२	१।५५।०
मेरठ	२९।०	०।५३।०
मैनपुरी (यू॰ पी॰)	२७।१४	०।३९।०
मोरवीराज्य (बम्बई)	३२।४९	२।१०।०
रतनगढ़ (बीकानेर)	२८।५	१।२३।३०
रतलामराज्य (c. i.)	२३।३१	१।२०।०
रत्नागिरि (बम्बई)	१७।८	१।३७।०
राजकोट ,,	२२।१८	२।२।३०
रामनगर(नैनीताल)	२९।१४	०।३८।२०
रानीखेत	२९।४०	०।३४।३०
राजगढ़स्टेट (c. i.)	२४।०	१।२।१०
रामकोला(सी॰पी॰)	२३।४०	०।१।२०
रामपुर (यू॰ पी॰)	२८।४८	०।४१।०
रामेश्वर	९।४८	०।३७।३०
रायगढ (सी॰ पी॰)	२१।७४	०।४।२०
रायपुर (सी॰ पी॰)	२१।१५	०।१३।०
रायबरेली(यू॰ पी॰)	२६।१४	०।१९।२०
रावलपिण्डी(पञ्जाब)	३३।३७	१।४०।०
रींवाराज्य (c. i.)	२४।३१	०।१७।३
रुरकी (यू॰ पी॰)	२९।५२	०।५१।०
रुहेलखण्ड ,,	२८।३२	०।४०।०
रोहतक (पञ्जाब)	२८।५४	१।५।२०
लखनऊ (यू॰ पी॰)	२६।५५	०।२०।०
ललितपुर ,,	२४।२२	०।४५।२०
लश्कर (ग्वालियर)	२६।१०	०।४८।२०
लाहौर (पञ्जाब)	३१।२७	१।२६।०
लोधियाना ,,	३०।५५	१।९।३०
बखसर(राजपुताना)	२४।४३	१।५८।३०
वङ्गनापाली(मद्रास)	१५।१९	०।४७।१०
वजीराबाद (पञ्जाब)	३२।२७	१।३०।२०
वद्रीनाथ (यू॰ पी॰)	३०।४४	
वन्दरवाला (लङ्का)	६।५२	०।२०।२०
वर्धा (सी॰पी॰)	२०।४५	०।४३।३०
विजयानगर(मद्रास)	१५।२०	१।५।०
विजियानगरम्(मद्रास)	१८।७	०।४।३०
विमलीपट्टम्(मद्रास)	१७।५३	०। ५।०
विलासपुर(सी॰पी॰)	२२।५	०। ८।०
,, (शिमला)	३१।१०	१। ३।२०
शाहजहांपुर(यू॰पी॰)	२७।५४	०।३०।४०
शाहाबाद(यू॰पी॰)	२७।३०	०।२९।१०
शिकारपुर	२७।५७	२।२५।०
शिमला सपाटु(पञ्जाब)	३१।६	०।५८।१०
श्रीनगर (यू॰पी॰)	३०।१५	०।४२।०
श्रीनगर (काश्मीर)	३४।६	१।२०।४०
श्रीरङ्गम् (मद्रास)	१०।५२	०।४२।४०
श्रीरङ्गपट्टम् (मैसूर)	१२।२६	१। ३।०
सरदारशहर(बीकानेर)	२८।२७	१।३२।०
सवाईमाधोपुर(जैपुर)	२५।५८	१। ५।०
सहारनपुर(यू॰पी॰)	२९।५८	१।५४।०
सागर (सी॰ पी॰)	२३।५०	१। ०।०
सारनगढ़(सी॰पी॰)	२१।३६	०। ६।१०
सिताराम	१७।५२	१।३०।०
सिकन्दराबाद(हैदरा॰)	१७।२७	०।४५।२०
सियालकोट(पञ्जाब)	३२।३१	१।२४।०
सिरोंज(राजपुताना)	२४।६	०।५३।०
सिलोन	८।०	०।२०।०
सिरोहिराज्य(राज॰)	२५।५३	१।४१।०
सिहोरा	२३।३२	१। ०।०
सीतापुर (यू॰ पी॰)	२७।३२	०।२४।१०
सुल्तांँपुर (यू॰पी॰)	२६।१६	०।१४।०
सूरतगढ़ (बीकानेर)	२९।१९	१। ३।३०
सूरत (बम्बई)	२१।१२	१।४१।०
सैलाना (c. i.)	२३।३१	१।२०।०
सोलापुर (बम्बई)	१७।४०	१।११।०
सोहागपुर(सी॰पी॰)	२२।४२	०।४७।१०
हमीरपुर (यू॰ पी॰)	२५।५८	०।२८।०
हरदी (सी॰ पी॰)	२२।३१	०।५८।०
हरदोई (यू॰ पी॰)	२७।२३	०।२८।०
हरिहर (मैसूर)	१४।३१	१।११।२०
हरिद्वार (यू॰ पी॰)	२९।५८	०।४८।०
हाटा (बम्बई)	२५।४९	२।२१।४०
हातरस (यू॰ पी॰)	२७।३६-	०।४८।०
हिन्दूपुर (मद्रास)	१३।४९	०।३४।४०
हिंगोली (हैदराबाद)	१९।४३	०।५८।१०
हिसार (पञ्जाब)	२९।१०	१।१२।२०
हुबली (बम्बई)	१५।२०	१।४८।९
हैदराबाद दक्षिण	१७।२०	०।४९।३०
हैदराबाद सिन्ध	२५।२५	२।२२।३०
होसंगाबाद(सी॰पी॰)	२२।४६	०।५२।३०
होशियारपुर(पञ्जाब)	३१।३.२	१।१०।३०

अक्षांशपर से सारणी द्वारा पलभाज्ञान की विधि—

पलांशतश्चेदधिकं कलाद्यं व्यतीतभोग्याक्षप्रमान्तरघ्नम् ।
षष्ठ्या हृतं तत्फलयुग्गता याऽक्षभा भवेत्साऽभिमता सुखार्थम् ॥११॥

गत अंश और ऐष्य अंश सम्बन्धि पलभाओं के अन्तर को शेष कला से गुणा कर के ६० का भाग देने पर जो लब्धि आवे उसको गत अक्षांश सम्बन्धी पलभा में यथास्थान जोड़ देने से अभीष्ट पलभा हो जाती है ॥११॥

उदाहरण—

अयोध्या के अक्षांश २६°।४८′ पर से पलभाज्ञान करना है तो आगे दी हुई पलभा सारिणी में २६ अक्षांश का फल ५।५१।७ एवं २७ अक्षांश सम्बन्धी फल ६।६।५० इन दोनों फलों के अन्तर (६।६।५०)—(५।५१।७)=०।१५।४३ को ४८′ से गुणा कर के गुणनफल = ४८ (०।१५।४३)=७५४।२४ में ६० का भाग दिया तो लब्धि = $\frac{७५४।२४}{६०}$ = १२।२४ आई। इसको गतांश सम्बन्धी पलभा ५।५१।७ में जोड़ दिया तो स्वल्पान्तर से (६।३।३१) = ६।४ अयोध्या की अङ्गुलात्मिका पलभा हुई। इसी को अक्षभा या विषुवती भी कहते हैं।

पलभासारिणी—

अंश	पलभा	अंश	पलभा	अंश	पलभा	अंश	पलभा
१	०।१२।३४	१५	३।१२।५४	२९	६।३९। ४	४३	११।११।२४
२	०।२५। ९	१६	३।२६।२४	३०	६।५५।४१	४४	११।३५।२४
३	०।३७।४४	१७	३।४०। ५	३१	७।१२।३६	४५	१२। ०। ०
४	०।५०।२१	१८	३।५३। ६	३२	७।२९।५३	४६	१२।२५।३७
५	१। ३। ०	१९	४। ७।५५	३३	७।४७।३१	४७	१२।५२। ४
६	१।१५।१४	२०	४।२२। १	३४	८। ५।३८	४८	१३।१९।३४
७	१।२८।२३	२१	४।३६।२२	३५	८।२४। ७	४९	१३।४८।१८
८	१।४१।१०	२२	४।५०।५३	३६	८।४३। ५	५०	१४।१८। ३
९	१।५४। ०	२३	५। ५।३८	३७	९। २।२५	५१	१४।४९। ८
१०	२। ६।५४	२४	५।२०।३१	३८	९।२२।३०	५२	१५।२१।३२
११	२।१९।५५	२५	५।३२।४२	३९	९।४३। १	५३	१५।५५।३०
१२	२।३३। ०	२६	५।५१। ७	४०	१०।३।३६	५४	१६।३१। १
१३	२।४६।४१	२७	६। ६।५०	४१	१०।२८।४८	५५	१७। ८।३४
१४	२।५९।२८	२८	६।२२।४८	४२	१०।४८।१८		

लङ्कोदय पर से स्वोदयज्ञान (करणकुतूहले)—

लङ्कोदया नागतुरङ्गदस्रा गोङ्काश्विनो रामरदा विनाड्यः ।
क्रमोत्क्रमस्थाश्चरखण्डकैः स्वैः क्रमोत्क्रमस्थैश्च विहीनयुक्ताः ॥
मेषादिषण्णामुदयाः स्वदेशे तुलादितोऽमी च षडुत्क्रमस्थाः ॥ १२ ॥

२७८ पल मेष का, २९९ पल वृष का, ३२३ पल मिथुन का क्रमसे

लङ्कोदयमान होता है। एवं उत्क्रमसे ३२३ पल कर्क का, २९९ पल सिंह का, २७८ पल कन्या का लङ्कोदय मान होता है। यही उत्क्रम से तुलादि ६ राशियों का मान भी होता है। इन मेषादि के लंकोदय मानों को क्रम तथा उत्क्रम से रखके उनके सामने मेषादि के चरखण्डों को उसी रीति (क्रम तथा उत्क्रम) से रख के पहले ३ स्थानों में घटा देने से फिर ३ स्थानों में जोड़ देने से मेषादि ६ राशियों का स्वोदय मान हो जाता है। उन्हीं को उलटे तुलादि ६ राशियों का मान समझना चाहिये।

आजमगढ़ का उदयमान—

लङ्कोदय चर		
२७८—५८ = २२०	मेष, मीन	
२९९—४७ = २५२	वृष, कुंभ	
३२३—१९ = ३०४	मिथुन, मकर	
३२३ + १९ = ३४२	कर्क धनु	
२९९ + ४७ = ३४६	सिंह, वृश्चिक	
२७८ + ५८ = ३३६	कन्या, तुला	

अत एव मदीयं पद्यम्—

शून्याश्विदस्रा यमबाणदस्रा वेदाभ्ररामा यमवेदरामाः।
तर्काब्धिरामा रसरामरामा मेषादितस्तौलित उत्क्रमात्स्युः॥ १२॥

अयनांश बनाने की रीति—

भूनेत्रवेदो ४२१ नशकः स्वदशांशविहीनितः।
षष्ठ्या भक्तोऽयनांशाः स्युर्वर्षारम्भे स्फुटाः खलु॥ १३॥
त्रिघ्नार्कराशिना स्वार्धयुक्तेन विकलादिना।
युक्तास्तात्कालिकास्ते स्युः स्पष्टा गणितविद्वर॥ १४॥

वर्तमान शकाब्द में ४२१ घटा के जो शेष बचे उस (शेष) का दशवां भाग उसी में घटा कर ६० का भाग देने से लब्धि वर्षारम्भकालीन (मेष-संक्रान्ति के दिन का) स्पष्ट अयनांश होता है।

यदि सूर्य की राशियां भी बीत गयी हों तो राशि संख्या को ३ से गुणा कर के उस में उसी का आधा जोड़ने से जो विकला हो उसको वर्षारम्भ-कालीन स्पष्टायनांश की विकला में जोड़ देने से तात्कालिक स्पष्टायनांश हो जाता है॥ १३-१४॥

उदाहरण—

वर्तमान शकाब्द* १८५५ में ४२१ घटाया तो १४३४ शेष बचा। इस १४३४

---

* सौरात्मक शकाब्द मेषसंक्रान्ति से प्रारम्भ होगा। अतः गत शकाब्द से ही अयनांश का उदाहरण दिया गया है। इसी भाँति सर्वत्र चन्द्रवत्सरारम्भ हो जाने पर सौरवत्सरारम्भ से पूर्व का इष्टकाल हो तो करना चाहिये।

में इसी १४३४ का दशमांश = $\frac{१४३४}{१०}$ = १४३।२४ घटा के ६० का भाग दिया तो लब्धि = $\frac{१४३४-(१४३।२४)}{६०}$ = $\frac{१२९०।३६}{६०}$ = २१°।३०'।३६" शकारम्भकाल का स्पष्ट अयनांश हुआ।

अब स्पष्ट सूर्य ११।२०°।५०'।०" की राशि संख्या ११ को ३ से गुणा कर दिया तो ३ × ११=३३ हुआ। इस ३३ में इसी का आधा $\frac{३३}{२}$=१७ जोड़ दिया तो ५० विकला हुई। इस ५० विकला को वर्षारम्भकालीन स्पष्टायनांश २१°।३०'।३६" में यथा स्थान जोड़ दिया तो तात्कालिकस्पष्टायनांश २१°।३१'।२६" हुआ।

अयनांश बनाने की दूसरी रीति—

भूनेत्रवेदोनशकस्त्रिघ्नः　　खाभ्राश्विभिर्हृतः।
वर्षारम्भेऽयनांशाः स्युः स्फुटा गणितकोविदः॥
भागीकृतो भगो भक्तः खाभ्रवेदैः फलं भवेत्।
कलाद्यं तेन संयुक्ताः स्फुटास्तात्कालिकाः स्मृताः॥

शक संख्या १८५५ में ४२१ घटाया तो १४३४ शेष हुआ। इस १४३४ को ३ से गुणा करके २०० से भाग दिया तो लब्धि = $\frac{१४३४\times३}{२००}$ = २१।°३०'।३६" शकारम्भकाल का स्पष्टायनांश हुआ। अब स्पष्ट सूर्य ११।२०।५० का अंश ३५१ बनाके ४०० का भाग दे दिया तो लब्धि = $\frac{३५१}{४००}$ = ०'।५३" कलादि हुई। इस ०'।५३" को वर्षारम्भकालिकस्पष्टायनांश में यथा स्थान जोड़ दिया तो २१।°३०'।३६" + ०'।५३" = २१°।३१'।२९" तात्कालिकस्पष्टायनांश* हुआ।

लग्न स्पष्ट करने की रीति—

तात्कालिकः सायनभागसूर्यः कार्यस्तथा तद्गतभोग्यभागाः।
स्वीयोदयघ्ना विहृताः खरामैर्लब्धं विशोध्यं घटिकापलेभ्यः॥१५॥
यातैष्यकान् राश्युदयान् ततश्च शेषं वियद्राम ३०गुणं विभक्तम्।
अशुद्धराशेरुदयेन,　　लब्धमशुद्धशुद्धाऽजमुखेषु　　भेषु॥
हीनं युतं तद्धि भवेद्धिलग्नं स्पष्टं स्वदेशेऽयनभागहीनम्॥१६॥

जिस समय लग्न स्पष्ट करना हो उस समय के स्पष्ट सूर्य में तात्कालिक स्पष्टायनांश जोड़ देने से तात्कालिक सायनार्क होता है। उस तात्कालिक सायनार्क के भुक्त या भोग्य अंशादि को स्वदेशीय उदयमान से गुणा करके ३० से भाग देने पर लब्ध पलादि भुक्त या भोग्य काल होता है। (अर्थात् भुक्तांश को स्वोदयमान से गुणा करके ३० से भाग देने पर भुक्तकाल और भोग्यांश को स्वोदय से गुणा करके ३० से भाग देने पर भोग्यकाल होता है। इस भुक्त या भोग्य काल को इष्ट घटी पल में घटा के जो शेष बचे उस में भुक्त या भोग्य राशियों के उदयमानों को (जहाँ तक घट सके)

---

* पहले अयनांश से यह भिन्न इसलिये है कि इसमें अंश सम्बन्धी फल भी ले लिया गया है।

घटाना (अर्थात् यदि भुक्तांश पर से लग्न स्पष्ट करना हो तो सावनेष्ट काल को ६० में घटा के जो शेष घटी पल हो उस में भुक्त काल घटा के शेष में गत राश्युदय मानों को घटाना। यदि भोग्यांश पर से लग्न साधन करना हो तो सावनेष्ट घटी पल में ही भोग्यकाल घटा के शेष में ऐष्य राश्युदय मानों को घटाना) चाहिये। अब शेष को ३० से गुणा करके अशुद्धोदय-मान से भाग देने पर जो लब्धि अंशादिक आवे उसको क्रम से अशुद्धराशि में घटाने और शुद्ध राशि में जोड़ने से (अर्थात् भुक्त क्रिया में अशुद्ध-राशिसंख्या में घटाने और भोग्य क्रिया में शुद्धराशिसंख्या में जोड़ने से) सायन स्पष्ट लग्न होता है। इसमें अयनांश घटा देने से अपने २ देश का स्पष्ट लग्न हो जाता है॥ १५–१६॥

उदाहरण—

तात्कालिक स्पष्टसूर्य = ११।२०°।५८′।१०″

" अयनांश = २१°।३१′।२९″

" सायनार्क = ०।१२°।२९′।२९″

भोग्यांश = १७।३०।३१ इस का मेष के २२० उदयमान से गुणा करके ३० का भाग देने पर।

लब्धि = $\frac{\text{१७।३०।३१ × २२०}}{\text{३०}}$

= $\frac{\text{३७४०।६६००।६८२०}}{\text{३०}}$

= $\frac{\text{३८५१।५३।४०}}{\text{३०}}$ = १२८।२३।४७।२० इस लब्धि को इष्ट घटी पल (१३।५५) ६० = ८३५ में घटाने से

शेष = ८३५—(१२८।२३।४७।२०)

= ७०६।३६।१२।४० इस में वृष और मिथुन का मान (२५२ + ३०४ = ५५६) घटाने पर

शेष = ७०६।३६।१२।४०—५५६

= १५०।३६।१२।४०

इसको ३० से गुणा करके अशुद्धोदयमान ३४२ से भाग देने पर

लब्धि = $\frac{\text{१५०।३६।१२।४० × ३०}}{\text{३४२}}$

= $\frac{\text{४५१८।६।२०}}{\text{३४२}}$ = १३°।१२′।३९″ हुई।

इसकी शुद्धराशिसंख्या ३ में जोड़ दिया तो—

सायन स्पष्ट लग्न = ३।१३।१२।३९ हुआ।

अयनांश घटाया तो स्पष्ट लग्न = ३।१३ ।१२′।३९″–२१°।३१′।२९″

= २।२१°।४१′।१०″ हो गया।

भुक्तांश पर से स्पष्टलग्न बनाने का उदाहरण—

सायनार्क = ०।१२°।२९′।२९″

$$\frac{\text{भुक्तांश} \times \text{स्वोदय}}{\text{३०}} = \frac{(\text{१२°।२९'।२९''})\ \text{२२०}}{\text{३०}}$$

$$= \frac{\text{२६४०।६३८०।६३८०}}{\text{३०}}$$

$$= \frac{\text{२७४८।६।२०}}{\text{३०}} = \text{९१।३६।१२।४०}$$

इष्ट घटी पल६०-(१३।५५) = ४६।५ = २७६५ पल में घटाने से—

शेप = २७६५-(९१।३६।१२।४०)

= २६७३।२३।४७।२० इसमें उलटे मीन से लेकर सिंह तक का मान २४८२ घटाने पर

शेष = २६७३।२३।४७।२०—२४८२

= १९१।२३।४७।२०

इस शेष को ३० से गुणा करके अशुद्धोदयमान ३४२ से भाग देने पर

$$\text{लब्धि} = \frac{(\text{१९१।२३।४७।२०})\ \text{३०}}{\text{३४२}}$$

$$= \frac{\text{५७४१।५३।४०}}{\text{३४२}} = \text{१६°।४७'।२१}$$ इसको

अशुद्धराशिसंख्या ४ में घटा देने पर शेप—

सायनलग्न = ४-(१६°।४७'।२१")

= ३।१३°।१२'।३९"

स्पष्टलग्न = सायनलग्न—अयनांश

= ३।१३°।१२'।३९"—२१°।३१'।२९"

= २।२१°।४१'।१०" हुआ।

भुक्त भोग्याल्पत्व में विशेप—

भुक्तं भोग्यं स्वेष्टकालान्न विशुद्धयेद्यदा तदा।
स्वेष्टं त्रिंशद्गुणं स्वीयोदयाप्तं यल्लवादिकम् ॥
हीनं युक्तं रवौ कार्यं लग्नं तात्कालिकं भवेत् ॥ १७ ॥

यदि भुक्त या भोग्य पलादि इष्ट घटी पल में न घटे तो इष्ट पलादि को ३० से गुणा करके स्वोदय मान से भाग देने से जो लब्धि अंशादि आवे उसको (भुक्तांश पर से लग्न साधन किया जाता हो तो) स्पष्ट सूर्य में घटा देने से (यदि भोग्यांश पर से लग्न स्पष्ट किया जाता हो तो) स्पष्ट सूर्य जोड़ देने से तात्कालिक स्पष्ट लग्न हो जाता है ॥ १७ ॥

उदाहरण—

कल्पित सायन सूर्य = ०।१२°।१७'।३५"

भोग्यांश = १७°।४२'।२५"

$$\text{भोग्यकाल} = \frac{(\text{१७°।४२'।२५''})\ \text{२२०}}{\text{३०}}$$

$$= \frac{\text{३८९५।३१।४०}}{\text{३०}} = \text{१२९।५१।३।२०}$$

यह पलादि भोग्यकाल कल्पित इष्ट घटी पल १।४५ (=१०५ पल) में नहीं घटता

इसलिये इष्ट घटीपल=१०५ को ३० से गुणा करके स्वोदयमान=२२० से भाग देनेपर

लब्धि $= \frac{१०५ \times ३०}{२२०} = \frac{१०५ \times ३}{२२} = \frac{३१५}{२२} =$ १४°।१९'।५" अंशादि हुई।

इस अंशादि को स्पष्ट सूर्य=११।२०।४६।६ में जोड़ दिया तो राश्यादि स्पष्ट लग्न—

११।२०°।४६'।६" + १४°।१९।५" = ०।५°।५'।११" हुआ।

उक्त प्रकार के उदाहरण के लिये २०वें श्लोक के दशम साधन का उदाहरण देखिये।

काशी में तथा २५°।१८' अक्षांशदेशों में केवल सारणी ही पर से पूज्यपाद परमगुरुवर्य म०म०पं० श्रीसुधाकरद्विवेदीकृत स्पष्ट लग्न साधन की रीति—

दृश्यसूर्यवशतो घटीपलं यत्तदिष्टसहितं तदुद्भवम्।
भादिकं त्वयनभागहीनितं चन्द्रचूडनगरे भवेत्तनुः॥ १८॥

सायनार्क के राशि-अंश के सामने के कोठे में जो घटीपल हो एवं कला विकला सारणी में जो पलादि हो उनको यथास्थान (एक एक स्थान हटा कर) जोड़ देने से जो घटी पल विपलादि हो उसमें इष्टकाल के घटीपलादि को जोड़ देने से जितना घटीपलादि हो उतने घट्यादि में अंश सारणी में जिस राशि अंश के सामने का घट्यादि घट जाय उतने अंश लग्न के बीते हुए होते हैं। पुनः घटाने पर जो पलादि शेष बचे उनमें कला सारणी में जिस राशिकला के सामने का पलादि घट जाय उतनी कला लग्न की बीती हुई होती है। एवं विकला का ज्ञान भी करके सबों (अंश, कला, विकलाओं) को अपने २ स्थान में रख के जोड़ देने से राश्यादि सायनस्फुट लग्न होता है। इसमें अयनांश घटा देने से स्पष्ट लग्न काशी में हो जाता है॥ १८॥

उदाहरण—

स्पष्ट सूर्य ११।२०°।५८'।०" और स्पष्ट अयनांश २१°।३१'।२९" दोनों को यथा स्थान जोड़ दिया तो सायन सूर्य हो गया ०।१२°।२९'।२९"। *अब सायन सूर्य के सामनें का

राशिअंश का घट्यादि = १।२९।१२
राशिकला का पलादि = ३।२५।२४
राशिविकला का विपलादि = ३।२५।२४
योग = १।३२।५१।२।२४
इसमें इष्ट घटी = १३।५५
जोड़ दिया तो योग = १५।२७।५१।९।२४ हुआ। अब इस में कर्क के १२° के सामने का घटी पल (१५।१८।०) घट गया तो शेष पलादि ९।५१।९।२४ बचा। फिर इस पलादि में राशिकला सारणी में ५२ कला सम्बन्धी पलादि ९।४९।२० घटाया तो शेप विपलादि १।४९।२४ बचा। फिर इस में राशिविकला सारणी में ९ विकला के सामने का विपलादि १।४२।० घट गया तो शेष ७।२४ प्रतिविपल बचा। इस को स्वल्पान्तर से छोड़ दिया। अब सारणी में १२°।५२'।९" के सामने के फल घट गये हैं इस लिये सायनलग्न ३।१२°।५२'।९" हुआ इसमें अयनांश घटा दिया तो काशी का स्पष्टलग्न ३।१२°।५२'।९" (२१°।३१'।२९')=२।२१°।२०'।४०" हो गया।

* स्वल्पान्तर से यही काशी का स्पष्ट सूर्य मान लिया गया है।

काशी में (अर्थात् २५°।१८' अक्षांश पर) राश्यंशफल—

	राशि	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
०	मेष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	२	२	३	३	३	३	३
७	०	०	७	१४	२२	२९	३७	४४	५२	५९	६	१४	२१	२९	३३	४४	५१	५८	६	१३	२१	२८	३६	४३	५०	५८	५	१३	२०	२८	३५
२६		०	२६	५२	१८	४४	१०	३६	२	२८	५४	२०	४६	१२	३८	४	३०	५६	२२	४८	१४	४०	६	३२	५८	२४	५०	१६	४२	८	३४
०	वृष	३	३	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६	६	७	७	७	७	७	७
८	१	४३	५१	०	८	१७	२५	३४	४	५१	५९	८	१६	२५	३३	४२	५०	५९	७	१६	२४	३३	४१	५०	५८	७	१५	२४	३२	४१	४९
३०		०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०
०	मिथुन	७	८	८	८	८	८	८	९	९	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१२	१२
१०	२	५८	८	१८	२८	३८	४८	५८	८	१९	२९	३९	४९	५९	९	१९	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५१	१	११	२१	३१	४१	५१
८		०	८	१६	२४	३२	४०	४८	५६	४	१२	२०	२८	३६	४४	५२	०	८	१६	२४	३२	४०	४८	५६	४	१२	२०	२८	३६	४८	५२
०	कर्क	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१४	१४	१४	१४	१४	१५	१५	१५	१५	१५	१६	१६	१६	१६	१६	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१८	१८	१८
११	३	२	१३	२४	३६	४७	५८	१०	२१	३२	४४	५५	६	१८	२९	४०	५२	३	१४	२६	३७	४८	०	११	२२	३४	४५	५६	८	१९	३०
२०		०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	३०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०
०	सिंह	१८	१८	१९	१९	१९	१९	१९	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२१	२१	२१	२१	२१	२२	२२	२२	२२	२२	२३	२३	२३	२३	२३	२४	२४
११	४	४२	५३	४	१६	२७	३९	५०	२	१३	२४	३६	४७	५९	१०	२२	३३	४४	५६	७	१९	३०	४२	५३	४	१६	२७	३९	५०	२	१३
२६		०	२६	५२	१८	४४	१०	३६	२	२८	५४	२०	४६	१२	३८	४	३०	५६	२२	४८	१४	४०	६	३२	५८	२४	५०	१६	४२	८	३४
०	कन्या	२४	२४	२४	२४	२५	२५	२५	२५	२५	२६	२६	२६	२६	२६	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२८	२८	२८	२८	२८	२९	२९	२९	२९	२९
११	५	२७	३६	४७	५८	९	०	३२	४३	५४	५	१६	२७	३९	५०	१	१२	२३	३४	४६	५७	८	१९	३०	४१	५३	४	१५	२६	३७	४८
१०		०	१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५०

काशी में (अर्थात् २५°।१८′ अक्षांश पर) राश्यंशफल—

	राशि	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
० ११ १०	तुला ६	३० ० ०	३० ११ १०	३० २२ २०	३० ३३ ३०	३० ४४ ४०	३० ५५ ५०	३१ ७ ०	३१ १८ १०	३१ २९ २०	३१ ४० ३०	३१ ५१ ४०	३२ २ ५०	३२ १४ ०	३२ २५ १०	३२ ३६ २०	३२ ४७ ३०	३२ ५८ ४०	३३ ९ ५०	३३ २१ ०	३३ ३२ १०	३३ ४३ २०	३३ ५४ ३०	३४ ५ ४०	३४ १६ ५०	३४ २८ ०	३४ ३९ १०	३४ ५० २०	३५ १ ३०	३५ १२ ४०	३५ २३ ५०
० ११ २६	वृश्चिक ७	३५ ३५ ०	३५ ४६ २६	३५ ५७ ५२	३६ ९ १८	३६ २० ४४	३६ ३२ १०	३६ ४३ ३६	३६ ५५ २	३७ ६ २८	३७ १७ ५४	३७ २९ २०	३७ ४० ४६	३७ ५२ १२	३८ ३ ३८	३८ १५ ४	३८ २६ ३०	३८ ३७ ५६	३८ ४९ २२	३९ ० ४८	३९ १२ १४	३९ २३ ४०	३९ ३५ ६	३९ ४६ ३२	३९ ५७ ५८	४० ९ २४	४० २० ५०	४० ३२ १६	४० ४३ ४२	४० ५५ ८	४१ ६ ३४
० ११ २०	धनु ८	४१ १८ ०	४१ २९ २०	४१ ४० ४०	४१ ५२ ०	४२ ३ २०	४२ १४ ४०	४२ २६ ०	४२ ३७ २०	४२ ४८ ४०	४३ ० ०	४३ ११ २०	४३ २२ ४०	४३ ३४ ०	४३ ४५ २०	४३ ५६ ४०	४४ ८ ०	४४ १९ २०	४४ ३० ४०	४४ ४२ ०	४४ ५३ २०	४५ ४ ४०	४५ १६ ०	४५ २७ २०	४५ ३८ ४०	४५ ५० ०	४६ १ २०	४६ १२ ४०	४६ २४ ०	४६ ३५ २०	४६ ४६ ४०
० १० ८	मकर ९	४६ ५८ ०	४७ ८ ८	४७ १८ १६	४७ २८ २४	४७ ३८ ३२	४७ ४८ ४०	४७ ५८ ४८	४८ ८ ५६	४८ १९ ४	४८ २९ १२	४८ ३९ २०	४८ ४९ २८	४८ ५९ ३६	४९ ९ ४४	४९ १९ ५२	४९ ३० ०	४९ ४० ८	४९ ५० १६	५० ० २४	५० १० ३२	५० २० ४०	५० ३० ४८	५० ४० ५६	५० ५१ ४	५१ १ १२	५१ ११ २०	५१ २१ २८	५१ ३१ ३६	५१ ४१ ४४	५१ ५१ ५२
० ८ ३०	कुम्भ १०	५२ २ ०	५२ १० ३०	५२ १९ ०	५२ २७ ३०	५२ ३६ ०	५२ ४४ ३०	५२ ५२ ०	५३ १ ३०	५३ १० ०	५३ १८ ३०	५३ २७ ०	५३ ३५ ३०	५३ ४४ ०	५३ ५२ ३०	५४ १ ०	५४ ९ ३०	५४ १८ ०	५४ २६ ३०	५४ ३५ ०	५४ ४३ ३०	५४ ५२ ०	५५ ० ३०	५५ ९ ०	५५ १७ ३०	५५ २६ ०	५५ ३४ ३०	५५ ४३ ०	५५ ५१ ३०	५६ ० ०	५६ ८ ३०
० ७ २६	मीन ११	५६ १७ ०	५६ २४ २६	५६ ३१ ५२	५६ ३९ १८	५६ ४६ ४४	५६ ५४ १०	५७ १ ३६	५७ ९ २	५७ १६ २८	५७ २३ ५४	५७ ३१ २०	५७ ३८ ४६	५७ ४६ १२	५७ ५३ ३८	५८ १ ४	५८ ८ ३०	५८ १५ ५६	५८ २३ २२	५८ ३० ४८	५८ ३८ १४	५८ ४५ ४०	५८ ५३ ६	५९ ० ३२	५९ ७ ५८	५९ १५ २४	५९ २२ ५०	५९ ३० १६	५९ ३७ ४२	५९ ४५ ८	५९ ५२ ३४

कला-विकला फल—

		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०
मेष	मीन	०	०	०	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	२	२	३	३	३	३	३	३
०	११	७	१४	२२	२९	३७	४४	५२	५९	६	१४	२१	२९	३६	४४	५१	५८	६	२३	२१	२८	३६	४३	५०	५८	५	१३	२०	२८	३५	४३
		२६	५२	१८	४४	१०	३६	२	२८	५४	२०	४६	१२	३८	४	३०	५६	२२	४८	१४	४०	६	३२	५८	२४	५०	१६	४२	८	३४	०
वृष	कुम्भ	०	०	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	२	३	३	३	३	३	३	३	४	४
१	१०	८	१७	२५	३४	४२	५१	५९	८	१६	२५	३३	४२	५०	५९	७	१६	२४	३३	४१	५०	५८	७	१५	२४	३२	४१	४९	५८	६	१५
		३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०
मिथुन	मकर	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	३	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	५
२	९	१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२१	३१	४१	५१	१	११	२१	३२	४२	५२	२	१२	२२	३२	४२	५३	३	१३	२३	३३	४३	५३	४
		८	१६	२४	३२	४०	४८	५६	४	१२	२०	२८	३६	४४	५२	०	८	१६	२४	३२	४०	४८	५६	४	१२	२०	२८	३६	४४	५२	०
कर्क	धनु	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	३	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	५	५	५	५
३	८	११	२२	३४	४५	५६	८	१९	३०	४२	५३	४	१६	२७	३८	५०	१	१२	२४	३५	४६	४८	९	२०	३२	४३	५४	६	१७	२८	४०
		२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०
सिंह	वृश्चिक	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५
४	७	११	२२	३४	४५	५७	८	२०	३१	४२	५४	५	१७	२८	४०	५१	२	१४	२५	३७	४८	०	११	२२	३४	४५	५७	८	२०	२१	४३
		२६	५२	१८	४४	१०	३६	२	२८	५४	२०	४६	१२	३८	४	३०	५६	२२	४८	१४	४०	६	३२	५८	२४	५०	१६	४२	८	३४	०
कन्या	तुला	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	५	५	५	५
५	६	११	२२	३३	४४	५५	७	१८	२९	४०	५१	२	१४	२५	३६	४७	५८	९	२१	३२	४३	५४	५	१६	२८	३९	५०	१	१२	२३	३५
		१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५०	०

कला-विकला फल—

		३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०
मेष ०	मीन ११	३	३	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६	६	६	७	७	७	७
		५०	५७	५	१२	२०	२७	३५	४२	४९	५७	४	१२	१९	२७	३४	४१	४९	५६	४	११	१९	२६	३३	४१	४८	५६	३	११	१८	२६
		२६	५२	१८	४४	१०	३६	२	२८	५४	२०	४६	१२	३८	४	३०	५६	२२	४८	१४	४०	६	३२	५८	२४	५०	१६	४१	८	३४	०
वृष १	कुम्भ १०	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६	६	७	७	७	७	७	७	७	८	८	८	८
		२३	३२	४०	४९	५७	६	१४	२३	३१	४०	४८	५७	५	१४	२२	३१	३९	४८	५६	५	१३	२२	३०	३९	४७	५६	४	१३	२१	३०
		३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०	३०	०
मिथुन २	मकर ९	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६	७	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	८	९	९	९	९	९	९	१०
		१४	२४	३४	४४	५४	४	१४	२५	३५	४५	५५	५	१५	२५	३६	४६	५६	६	१६	२६	३६	४६	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	८
		८	१६	२४	३२	४०	४८	५६	४	१२	२०	२८	३६	४४	५२	०	८	१६	२४	३२	४०	४८	५६	४	१२	२०	३२	४०	४८	५६	०
कर्क ३	धनु ८	५	६	६	६	६	६	६	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	९	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	१०	११	११
		५१	२	१४	२५	३६	४७	५९	१०	२२	३३	४४	५६	७	१८	३०	४१	५२	४	१५	२६	३८	४	०	१२	२३	३४	४६	५७	८	२०
		२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०	२०	४०	०
सिंह ४	वृश्चिक ७	५	६	६	६	६	६	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	८	९	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११
		५४	५	१७	२८	४०	५१	३	१४	२५	३७	४८	०	११	२३	३४	४५	५७	८	२०	३१	४३	५४	५	१७	२८	४०	५१	३	१४	२६
		२६	५८	१८	४४	१०	३६	२	२८	५४	२०	४६	१२	३८	४	३०	५६	२२	४८	१४	४०	६	३२	५८	२४	५०	१६	४२	८	३४	०
कन्या ५	तुला ६	५	५	६	६	६	६	६	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	८	९	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	१०	११
		४६	५७	८	१९	३०	४२	५३	४	१५	२६	३७	४९	०	११	२२	३३	४४	४६	७	१८	२९	४०	५१	३	१४	२५	३६	४७	५८	१०
		१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५०	०	१०	२०	३०	४०	५०	०

नतोन्नतज्ञान—

तदुन्नतं यदल्पं स्याद् द्युनिशागतशेषयोः ।
तेनोनितं दिननिशोरर्द्धं तन्नतसंज्ञकम् ॥ १९ ॥

दिन रात्रि दोनों की गतघटी और शेषघटी इन दोनों में जो अल्प (कम) हो उसको उन्नतकाल कहते हैं। उस उन्नतकाल को दिनदल या रात्रिदल में घटा देने से शेष नतकाल होता है ॥ १९ ॥

उदाहरण—

सावन इष्टकाल १३।५५ और दिनमान ३०।५० है। यहाँ दिनशेष १६।५५ से दिनगत १३।५५ कम है। इसलिये दिनगत ही उन्नतकाल हुआ। इसको दिनदल १५।२५ में घटा दिया तो शेष १५।२५–(१३।५५) = १।३० दिन का घट्यादि पूर्वनत काल हुआ।

दशमसाधन की रीति—

पलीकृतात्पूर्वपश्चान्नताल्लङ्कोदयैश्च यत् ।
भुक्तभोग्यप्रकारेण लग्नं तद्दशमाभिधम् ॥
ततश्चतुर्थं विज्ञेयं मध्ये षड्भाधिके कृते ॥ २० ॥

पूर्व नत हो तो लङ्कोदय पर से भुक्त प्रकार द्वारा तथा परनत हो तो लङ्कोदय पर से भोग्य प्रकार द्वारा पूर्ववत् लग्न साधन करना, तो वही दशमलग्न होगा। उसमें ६ राशि जोड़ देने से चतुर्थ भाव हो जाता है। (यदि रात्रि का नतकाल हो तो सूर्य में ६ राशि जोड़ के शेष क्रिया पूर्ववत् करनी चाहिये) ॥ २० ॥

उदाहरण—

सायनसूर्य = ०।१२°।२९'।२९"

भुक्तांश = १२°।२९'।२९"

$$\frac{\text{भुक्तांश × लङ्कोदय}}{\text{३०}} = \frac{\text{(१२।२९।२९) २७८}}{\text{३०}}$$

$$= \frac{\text{३४७२।३६।२२}}{\text{३०}} = \text{११५।४५।१२।४४}$$

यह पलादि भुक्तकाल पूर्वनतपल ९० में नहीं घटता इस लिये १७ वें श्लोक के अनुसार नतपल ९० को ३० से गुणा कर के मेष के लङ्कोदयमान २७८ से भाग देने पर लब्धि = $\frac{\text{९०×३०}}{\text{२७८}}$ = ९।४२।४४। अंशादि हुई। इसको स्पष्ट सूर्य में घटाया तो दशम लग्न स्पष्ट = ११।२०°।५८'।०"—९°।४२'।४४"

= ११।११°।१५'।१६" हुआ।

सब देशों के लिये केवल सारणी पर से दशमलग्न साधन की रीति—

दृश्यार्काद्घटिकाद्यं यत्पूर्वापरनतोनयुक् ।
तज्जं भाद्यं चलांशोन खभं सार्वत्रिकं भवेत् ॥ २१ ॥

दृश्य सूर्य (सायन सूर्य) के राशि-अंश के सामने के कोठे में जितना घटी पल हो उसको एक स्थान में रखके, त्रैराशिक गणित द्वारा कला विकला सम्बन्धी पल का आनयन करके पूर्व स्थापित घटी पल में यथास्थान रख कर जोड़ देवे। उसमें यदि पूर्वनत हो तो नतकाल को घटाके परनत हो तो जोड़ के जो घट्यादि प्राप्त हो उसमें सारणी में लिखित जिस राशि-अंश के सामने का घटी पल घट जाय उतने राशि अंश दशम-लग्न के गत होते हैं। फिर घटाने पर जो शेष बचे उस पर से त्रैराशिक गणित द्वारा कला विकला का आनयन करके यथास्थान पूर्व प्राप्त राशि अंश में जोड़ देने से सायन दशम लग्न होता है। उसमें अयनांश घटा देने पर सब देशों के लिये दशम लग्न स्पष्ट हो जाता है ॥ २१ ॥

उदाहरण—

सायन सूर्य ०।१२°।२९′।२९″ के राशि और अंश के सामने के घट्यादिफल १।५१।१२ में त्रैराशिक गणित द्वारा आनीत कलाविकलासम्बन्धी पलादि फल

$$=\frac{(\text{पलादि} = ९।१६)\,(२९'।२९'')}{६०'}$$

$$=\frac{(९।१६)\,१७६९''}{३६००''}$$

$$=\frac{१६३९२।४४}{३६००''} = ४।३३।१२।४४ \text{ को यथास्थान रख कर जोड़ दिया।}$$

१।५१।१२

तो सायन सूर्य के राश्यादि सम्बन्धी घट्यादि फल $=\frac{४।३३।१२।४४}{१।५५।४५।१२।४४}$ हुआ।

इसमें घट्यादि पूर्वनत को घटाया तो शेष = (१।५५।४५।१२।४४)–(१।३०)

= ०।२५।४५।१२।४४ बचा।

इस में ० राशि २ अंश के सामने का घट्यादि = ०।१८।३२ घटता है। अतः ०राशि २ अंश सायन दशम हुआ। और घटाने पर—

०।२५।४५।१२।४४

०।१८।३२

७।१३।१२।४४ पलादि शेष बचा।

फिर इस पर से त्रैराशिक गणित द्वारा जो कलादि फल $=\frac{६०''(७।१३।१२।४४)''}{९।१६}$

$=\frac{३५९९२।४४}{५५६} = ४६'।४५''$

आया उसको राश्यादि सायन दशम के आगे यथास्थान रख के अयनांश घटा दिया तो राश्यादि स्पष्ट दशम लग्न = ०।२°।४६′।४५″—(२१′।३१।२९″)।

= ११।११°।१५′।१६″ हो गया।

सायनार्कवश से दशम सारणी—

	राशि	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
०	मेष	०	०	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	२	३	३	३	३	३	३	४	४	४	४
९	०	०	९	१८	२७	३७	४६	५५	४	१४	२३	३२	४१	५१	०	९	१९	२८	३७	४६	५६	५	१४	२३	३३	४२	५१	०	१०	१९	२८
१६		०	१६	३२	४८	४	२०	३६	५२	८	२४	४०	५६	१२	२८	४४	०	१६	३२	४८	४	२०	३६	५२	८	२४	४०	५६	१२	२८	४४
०	वृष	४	४	४	५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६	७	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	८	९	९	९
९	१	३८	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७
५८		०	५८	५६	५४	५२	५०	४८	४६	४४	४२	४०	३८	३६	३४	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१४	१२	१०	८	६	४	२
०	मिथुन	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	११	११	१२	१२	१२	१२	१२	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१४	१४	१४	१४	१४
१०	२	३७	४७	५८	९	२०	३०	४१	५२	४	१३	२४	३५	४६	५६	७	१८	२९	४०	५०	१	१२	२३	३३	४४	५५	६	१६	२७	३८	४९
४६		०	४६	३२	१८	४	५०	३६	२२	८	५४	४०	२६	१२	५८	४४	३०	१६	२	४८	३४	२०	६	५२	३८	२४	१०	५६	४२	२८	१४
०	कर्क	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१७	१७	१७	१७	१७	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१९	१९	१९	१९	१९	२०	२०
१०	३	०	१०	२१	३२	४३	५३	४	१५	२६	३६	४७	५८	९	१९	३०	४१	५२	३	१३	२४	३५	४६	५६	७	१८	२९	३९	५०	१	१२
४६		०	४६	३२	१८	४	५०	३६	२२	८	५४	४०	२६	१२	५८	४४	३०	१६	२	४८	३४	२०	६	५२	३८	२४	१०	५६	४२	२८	१४
०	सिंह	२०	२०	२०	२०	२१	२१	२१	२१	२१	२१	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२३	२३	२३	२३	२३	२३	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२५	२५
९	४	२३	३२	४२	५२	२	१२	२२	३२	४२	५२	२	१२	२२	३२	४२	५२	२	१२	२२	३२	४२	५२	२	१२	२२	३२	४२	५२	२	१२
५८		०	५८	५६	५४	५२	५०	४८	४६	४४	४२	४०	३८	३६	३४	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१४	१२	१०	८	६	४	२
०	कन्या	२५	२५	२५	२५	२५	२६	२६	२६	२६	२६	२६	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२७	२८	२८	२८	२८	२८	२८	२९	२९	२९	२९	२९	२९
९	५	२२	३१	४०	४९	५९	८	१७	२६	३६	४५	५४	३	१३	२२	३१	४१	५०	५९	८	१८	२७	३६	४५	५५	४	१२	२२	३२	४१	५०
१६		०	१६	३२	४८	४	२०	३६	५२	८	२४	४०	५६	१२	२८	४४	०	१६	३२	४८	४	२०	३६	५२	८	२४	४०	५६	१२	२८	४७

सायनार्कवश से दशम सारणी—

	राशि	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
०	तुला	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३१	३१	३१	३१	३१	३१	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३२	३३	३३	३३	३३	३३	३३	३४	३४	३४	३४
९	६	०	९	१८	२७	३७	४६	५५	४	१४	२३	३२	४१	५१	०	९	१९	२८	३७	४६	५६	५	१४	२३	३३	४२	५१	०	१०	१९	२८
१६		०	१६	३२	४८	४	२०	३६	५२	८	२४	४०	५६	१२	२८	४४	०	१६	३२	४८	४	२०	३६	५२	८	२४	४०	५६	१२	२८	४४
०	वृश्चिक	३४	३४	३४	३५	३५	३५	३५	३५	३५	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३७	३७	३७	३७	३७	३७	३८	३८	३८	३८	३८	३८	३९	३९	३९
९	७	३८	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७	३७	४७	५७	७	१७	२७
५८		०	५८	५६	५४	५२	५०	४८	४६	४४	४२	४०	३८	३६	३४	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१४	१२	१०	८	६	४	२
०	धनु	३९	३९	३९	४०	४०	४०	४०	४०	४१	४१	४१	३१	४१	४१	४२	४२	४२	४२	४२	४३	४३	४३	४३	४३	४४	४४	४४	४४	४४	४४
१०	८	३७	४७	५८	९	२०	३०	४१	५२	३	१३	२४	३५	४६	५६	७	१८	२९	४०	५०	१	१२	२३	३३	४४	५५	६	१६	२७	३८	४९
४६		०	४६	३२	१८	४	५०	३६	२२	८	५४	४०	२६	१२	५८	४४	३०	१६	२	४८	३४	२०	६	५२	३८	२४	१०	५६	४२	२८	१४
०	मकर	४५	४५	४५	४५	४५	४५	४६	४६	४६	४६	४६	४६	४७	४७	४७	४७	४७	४८	४८	४८	४८	४८	४८	४९	४९	४९	४९	४९	५०	५०
१०	९	०	१०	२१	३२	४३	५३	४	१५	२६	३६	४७	५८	९	१९	३०	४१	५२	३	१३	२४	३५	४६	५६	७	१८	२९	३९	५०	१	१२
४६		०	४६	३२	१८	४	५०	३६	२२	८	५४	४९	२६	१२	५८	४४	३०	१६	२	४८	३४	२०	६	५२	३८	२४	१०	५६	४२	२८	१४
०	कुम्भ	५०	५०	५०	५०	५१	५१	५१	५१	५१	५१	५२	५२	५२	५२	५२	५२	५३	५३	५३	५३	५३	५३	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५५	५५
९	१०	२३	३२	४२	५२	२	१२	२२	३२	४२	५२	२	१२	२२	३२	४२	५२	२	१२	२२	३२	४२	५२	२	१२	२२	३२	४२	५२	२	१२
५८		०	५८	५६	५४	५२	५०	४८	४६	४४	४२	४०	३८	३६	३४	३२	३०	२८	२६	२४	२२	२०	१८	१६	१४	१२	१०	८	६	४	२
०	मीन	५५	५५	५५	५५	५५	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५७	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५९	५९	५९	५९	५९	५९
९	११	२२	३१	४०	४९	५९	८	१७	२६	३६	४५	५४	३	१३	२२	३१	४१	५०	५९	८	१८	२७	३६	४५	५४	४	१३	२२	३२	४१	५०
१६		०	१६	३२	४८	४	२०	३६	५२	८	२४	४०	५६	१२	२८	४४	०	१६	३२	४८	४	२०	३६	५२	८	२४	४०	५६	१२	२८	४४

बिना नतकाल के ही दशमलग्नसाधन का प्रकार—

मेषादिशुद्धोदययुक्शेषाच्छोध्या मृगादिकाः ।
लङ्कोदयास्ततः शेषं वियद्रामैश्च सङ्गुणम् ॥ २२ ॥
अशुद्धलङ्कोदयकैर्भक्तं लब्धं लवादिकम् ।
मेषादिशुद्धभैर्युक्तं चलांशोनं खभं भवेत् ॥ २३ ॥

शेष पलादि में मेष से लेकर शुद्ध राशितक के स्वोदयमानों को जोड़के जितना पलादि हो उसमें मकरादि से लङ्कोदय मानों को जहाँ तक घट जाय घटा देने जो शेष बचे उसको ३० से गुणा कर के अशुद्ध लङ्कोदय मान से भाग देने पर जो अंशादि लब्ध हो उसमें मेषादि शुद्ध लङ्कोदय राशि संख्या को जोड़ के अयनांश घटा देने से स्पष्ट दशमलग्न हो जाता है ॥ २२-२३ ॥

उदाहरण—

१५-१६ वें श्लोक के अनुसार भोग्य प्रकार से आनीत अशुद्ध राशि (कर्क) का शेष = १५०।३६।१२।४०

मेष, वृष और मिथुन के स्वोदय पल = २२० + २५२ + ३०४ = ७७६

∴ शेषपलादि + मेष + वृष + मिथुन = (१५०।३६।१२।४०) + ७७६
= ९२६।३६।१२।४०

इस में मकर, कुम्भ और मीन के लङ्कोदयमानों (३२३ + २९९ + २७८) = ९००
को घटाने पर शेष = (९२६।३६।१२।४०) – ९००
= २६।३६।१२।४०

फिर $\frac{\text{शेष} \times ३०}{\text{अशुद्धलङ्कोदयमान}} = \frac{(२६।३६।१२।४०) ३०}{२७८}$
$= \frac{५९८।६।२१}{२७८}$
= २°।५२'।१५"

फिर शुद्धराशिसंख्या + लब्धांशादि = ०।२°।५२'।१५"
अयनांश = २१°।३१'।२९"
घटाया तो स्पष्टदशम = ११।११°।२०'।४६" हुआ ।

१२ भाव साधन--

अथ लग्नोनतुर्यस्य षष्ठांशेन युतं तनुः ।
सन्धिः स्यादेवमग्रेऽपि षष्ठांशस्यैव योजनात् ॥ २४ ॥
त्रयः ससन्धयो भावाः षष्ठांशोनैकयुक्सुखात् ।
अग्रे त्रयः षडेवं ते भार्धयुक्ताः परेऽपि षट् ॥ २५ ॥

चतुर्थ भाव में लग्न को घटाने पर जो शेष बचे उसमें ६ का भाग देना

लब्ध जो अंशादि आवे उसको लग्न में जोड़ देने से लग्न की सन्धि होती है। एवं षष्ठांश को तनुसन्धि में जोड़ देने से द्वितीयभाव; द्वितीयभाव में उसी षष्ठांश को जोड़ने से द्वितीयभाव की सन्धि होती है। एवं आगे भी इसी क्रम से उसी षष्ठांश को जोड़ देने से सन्धि समेत ३ भाव हो जाते हैं। उसी षष्ठांश को एक राशि में घटा कर जो शेष बचे उसको चतुर्थ भाव से आगे क्रम से जोड़ने से आगे के भी सन्धिसहित ३ भाव बन जाते हैं। एवं इन्हीं ६ भावों में ६, ६ राशि जोड़ देने से शेष भी (सप्तम भाव से लेकर द्वादशभाव पर्यन्त) ६ भाव बन जाते हैं ॥ २४–२५ ॥

उदाहरण—

चतुर्थ भाव । ५ । ११ । १५' । १६" में लग्न २ । २१° । ४१' । १०" को घटा के शेष में ६ का भाग देने से

$$\text{लब्ध अंशादि} = \frac{(५।११°।१५'।१६") - (२।२१°।४१'।१०")}{६}$$

$$= \frac{२।१९°।३४'।६"}{६} = १३°।१५'।४१" \text{ षष्ठांश हुआ ।}$$

इस षष्ठांश को उपर्युक्त नियम से जोड़ दिया तो १२ भाव हो गये।

१२ भाव—

प्रथम	सं०	द्वितीय	सं०	तृतीय	सं०	चतुर्थ	सं०	पञ्चम	सं०	षष्ठ	सं०
२ २१ ४१ १०	३ ४ ५६ ५१	३ १८ १२ ३२	४ १ २८ १३	४ १४ ४३ ५४	४ २७ ५९ ३५	५ ११ १५ १६	५ २७ ५९ ३५	६ १४ ४३ ५४	७ १ २८ १३	७ १८ १२ ३२	८ ४ ५६ ५१
सप्तम	**सं०**	**अष्टम**	**सं०**	**नवम**	**सं०**	**दशम**	**सं०**	**एकाद**	**सं०**	**द्वादश**	**सं०**
८ २१ ४१ १०	९ ४ ५६ ५१	९ १८ १२ ३२	१० १ २८ १३	१० १४ ४३ ५४	१० २७ ५९ ३५	११ ११ १५ १६	११ २७ ५९ ३५	० १४ ४३ ५४	१ १ २८ १३	१ १८ १२ ३२	२ ४ ५६ ५१

विशेष (श्रीपतिपद्धति से)

वदन्ति भावैक्यदलं हि सन्धिस्तत्र स्थितः स्यादफलो ग्रहेन्द्रः ।
ऊनस्तु सन्धेर्गतभावजातानागामिजं चाभ्यधिकः करोति ॥२६॥
भावांशतुल्यः खलुः वर्तमानो भावोद्भवं पूर्णफलं विधत्ते ।
भावोनके वाभ्यधिके च खेटे त्रैराशिकेनाऽत्र फलं प्रकल्प्यम् ॥२७॥

भावप्रवृत्तौ हि फलप्रवृत्तिः पूर्णं फलं भावसमांशकेषु ।
ह्रासक्रमाद्भावविरामकाले फलस्य नाशो गदितो मुनीन्द्रैः ॥२८॥
जन्मप्रयाणव्रतबन्धचौलनृपाभिषेकादिकरग्रहेषु ।
एवं हि भावाः परिकल्पनीयास्तैरेव योगोत्थफलं प्रकल्प्यम् ॥२९॥

दो भावों के योग के आधे को सन्धि कहते हैं। सन्धि में स्थित ग्रह फलदान में समर्थ नहीं होता। सन्धि से कम ग्रह पूर्वभाव का और सन्धि से अधिक ग्रह अग्रिमभाव का फल देता है। भाव के अंश तुल्य ग्रह हो तो भाव सम्बन्धी पूर्णफल देता है। भावसे कम याअधिक ग्रह हो तो त्रैराशिक गणित द्वारा फल की कल्पना करे। भाव प्रवृत्ति में फलकी प्रवृत्ति और भावकी पूर्णता में फल का पूर्णत्व होता है। एवं ह्रासक्रम से भावके विराम में फल का अन्त होता है ऐसा मुनियों ने कहा है। जन्म, यात्रा, यज्ञोपवीत, मुण्डन, राज्याभिषेक, विवाह इत्यादि कार्य्यों में इसी प्रकार भाव साधन करना चाहिये। और इन्हीं भावों पर से योगोत्थफलों का आदेश करना चाहिये॥ २६-२६॥

आज कल के कुछ पण्डितों ने श्रीपतिपद्धति जातकपद्धति (केशवी) इत्यादि बड़े २ प्रामाणिक ग्रन्थों को यवनमतानुवादित ग्रन्थ बतलाते हुए इस भावानयन विधि को अशुद्ध कहना और श्रीपतिभट्ट, केशवदैवज्ञ, ज्ञानराजदैवज्ञ प्रभृति प्रकाण्ड विद्वानों को ग्रन्थानधिकारी सिद्ध करते हुए—

'लग्नमारभ्य सर्वत्र राशिवृद्ध्या यथाक्रमम् ।
भावाः सर्वेऽवगन्तव्याः सन्धी राश्यर्धयोजनात् ॥'

इस स्थूल भावानयन को ही शुद्ध भावानयन बताना आरम्भ कर दिया है। किन्तु ऐसा कहना उन्हीं लोगों को शोभता है। क्योंकि इस स्थूल भावानयन को लिखते हुए शूरमहाठ श्रीशिवराजदैवज्ञ ने अपने ज्योतिर्निबन्ध नामक पुस्तक में स्वयं सुस्पष्ट लिख दिया है—

'एतस्थूलं भावानयनं सूक्ष्मं तु जातकपद्धतेरवगन्तव्यम् ॥' इति ।

कमलाकर भट्ट ने भी अपनी सिद्धान्ततत्त्वविवेक नाम की पुस्तक में इस पर विचार किया है। किन्तु उदयान्तर स्फुटभोग्यखण्ड इत्यादि की भांति इसका विचार भी उन्मत्तप्रलापवत् हो गया है। इति दिक्।

ग्रहों की शयनाद्यवस्था—

खेटर्क्षसंख्या खेटघ्नी खेटांशगुणिता पुनः ।
जन्मर्क्षाङ्केष्टयुक्ताऽर्कतष्टाऽवस्था क्रमाद्भवेत् ॥ ३० ॥
शयनं चोपवेशं च नेत्रपाणिः प्रकाशनम् ।
गमनागमने चैव सभावसतिरागमः ॥ ३१ ॥

भोजनं नृत्यलिप्सा च कौतुकं निद्रितेति च ।
शेषवर्गं स्वराङ्काढ्यं भानुना शेषितं ततः ॥ ३२ ॥
भान्वादिषु क्रमात्पञ्चयुग्मनेत्राग्निसायकाः ।
रामरामाब्धिवेदाश्च क्षेप्यास्तष्टास्त्रिभिस्ततः ॥ ३३ ॥
एकादिशेषे खेटानामवस्था त्रिविधा भवेत् ।
दृष्टिश्चेष्टा विचेष्टा च कथिता पूर्वपण्डितैः ॥ ३४ ॥

जिस नक्षत्र पर जो ग्रह स्थित हो उस नक्षत्र की संख्या से उस ग्रह की संख्या को गुणा कर के राशि के जितने अंश पर ग्रह बैठा हो उस अंश की संख्या से भी उस गुणनफल को गुणा करे। फिर जन्म नक्षत्र की संख्या, इष्ट काल के गत घटी की संख्या और जन्मलग्न की संख्या इन तीनों के योग को उस गुणनफल जोड़ के १२ का भाग देने पर एक आदि शेष बचे तो क्रमसे १ शयन, २ उपवेशन, ३ नेत्रपाणि, ४ प्रकाशन, ५ गमन, ६ आगमन, ७ सभावसति, ८ आगम, ९ भोजन, १० नृत्यलिप्सा, ११ कौतुक और १२ निद्रा ये बारह ग्रहों की अवस्थायें होती हैं।

फिर शेष का वर्ग कर के (शेष को शेष से गुण के) प्रसिद्धनाम के *स्वराङ्क को जोड़ के १२ का भाग देना जो शेष बचे उसमें सूर्यके लिये ५, चन्द्रमा और मङ्गल के लिये २, बुध के लिये ३, बृहस्पति के लिये ५, शुक्र और शनि के लिये ३ एवं राहु और केतु के लिये ४ जोड़ के ३ से भाग देने पर १ शेष बचे तो दृष्टि, २ शेष बचे तो चेष्टा और ३ शेष बचे तो विचेष्टा नाम की विशेष अवस्था भी होती है। ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है ॥ ३०-३४ ॥

उदाहरण—

रेवती नक्षत्र पर सूर्य है तो नक्षत्रसंख्या २७ को ग्रह की संख्या १ से और सूर्याधिष्ठित अंश की संख्या २१ से गुणा कर दिया तो गुणनफल=२७ × १ × २१=५६७ हुआ इसमें जन्मनक्षत्र अनुराधा की संख्या १७, इष्ट काल के गत घटी की संख्या १३ और जन्मलग्न की संख्या ३ के योग (१७ + १३ + ३ = ३३) को जोड़ के योगफल = ५६७ + ३३ = ६०० में १२ से भाग दिया तो १२ शेष बचे। इसलिये सूर्य की निद्रा अवस्था हुई। फिर शेष १२ का वर्ग १२ × १२ = १४४ बना के इसमें प्रसिद्धनाम गोविन्दप्रसाद के आद्यक्षर स्वर (ओ) के अङ्क ५ को जोड़ के १४४ + ५ = १४९ बारह का भाग दिया तो ५ शेष हुए। फिर इस शेष (५) में सूर्य के क्षेपक ५ को जोड़ के (५ + ५ = १०) तीन का भाग दिया तो १ शेष बचा। इसलिये सूर्य की निद्रा अवस्था के अन्तर्गत दृष्टि नाम की अवस्था हुई। इसी प्रकार चन्द्रमा इत्यादि की भी अवस्था बनानी चाहिये।

* अ, इ, उ, ए, ओ इन पाचों स्वरों के क्रम से १, २, ३, ४, ५ स्वराङ्क होते हैं।

अन्यप्रकार से ग्रहों की अवस्था का ज्ञान—

दीप्तः स्वस्थः प्रमुदितः शान्तो दीनोऽतिदुःखितः ।
विकलश्च खलः कोपी नवधा खेचरो भवेत् ॥ ३५ ॥
उच्चस्थः खेचरो दीप्तः स्वस्थः स्वर्क्षेऽधिमित्रभे ।
मुदितः मित्रभे शान्तः समभे दीन उच्यते ॥ ३६ ॥
शत्रुभे दुःखितोऽतीव विकलः पापसंयुतः ।
खलः खलगृहे ज्ञेयः कोपी स्यादर्कसंयुतः ॥ ३७ ॥

दीप्त, स्वस्थ, प्रमुदित, शान्त, दीन, अतिदुःखित, विकल, खल, और कोपी ये नव प्रकार के ग्रह होते हैं। अपने उच्च में स्थित ग्रह दीप्त, अपनी राशि में स्वस्थ, अधिमित्र की राशि में मुदित, मित्र की राशि में शान्त, सम की राशि में दीन, शत्रु की राशि में अति दुःखित, पापग्रह से युत रहने पर विकल, पाप ग्रह की राशि में रहने पर खल और सूर्य के साथ रहने से कोपी ग्रह होता है ॥ ३५–३७ ॥

पञ्चधा मैत्री (सारावली से)—

व्ययाम्बुधनखायेषु तृतीये सुहृदः स्थिताः ।
तत्कालरिपवः षष्ठसप्ताष्टैकत्रिकोणगाः ॥ ३८ ॥
हितसमरिपुसंज्ञा ये निसर्गान्निरुक्ता
हिततमहितमध्यास्तेपि तत्कालखेटाः ।
रिपुसमसुहृदाख्याः सूतिकाले ग्रहेन्द्रा
अधिरिपुरिपुमध्याः शत्रुतश्चिन्तनीयाः ॥ ३९ ॥

तत्काल में १२।४।२।१०।११।३ इन स्थानों में रहने वाले ग्रह आपस में मित्र होते हैं। और ६।७।८।१।९।५ इन स्थानों में बैठा हुआ ग्रह शत्रु होता है। जो ग्रह स्वभाव से मित्र, सम अथवा शत्रु हैं वे ही यदि तत्काल में मित्र हों तो क्रम से तत्काल में अधिमित्र, मित्र और सम होते हैं। अर्थात् स्वाभाविक मित्र ग्रह तत्काल में भी मित्र हो तो तत्काल में अधिमित्र, स्वाभाविक सम ग्रह यदि तत्काल में मित्र हो तो मित्र एवं स्वाभाविक शत्रु ग्रह यदि तत्काल में मित्र हो तो तात्कालिक सम कहा जाता है। एवं जो ग्रह स्वभाव से शत्रु सम या मित्र हैं वे ही यदि तत्काल में शत्रु हो जायँ तो क्रम से उन्हें अधिशत्रु, शत्रु और सम समझना चाहिये ॥ ३८–३९ ॥

नैसर्गिकमैत्री—

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
मित्र	चं. मं बृ.	सू. बु.	सू. चं. बृ.	सू. शु.	सू. चं. मं.	बु. श.	बु. शु.
सम	बु.	मं. बृ. शु. श.	शु. श.	मं. बृ. चं.	श.	मं. बृ.	बृ.
शत्रु	शु. श.	०	बु.	चं.	बु. शु.	सू. चं	सू. चं. मं.

२ पृष्ठ पर लिखित जन्म कुण्डली के आधार पर तात्कालिक ग्रहमैत्री चक्र

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
तात्कालिक मित्र	बु. शु. श.	बु. बृ. शु. श.	बु. शु. श.	सू. चं. मं.	चं.	सू. चं. मं.	सू. चं. मं
तात्कालिक शत्रु	चं. बृ. मं.	सू. मं.	चं. बृ. सू.	बृ. शु. श.	सू.मं.बु. शु. श.	बु. बृ. श.	बु. बृ. शु.

पञ्चधा ग्रहमैत्रीचक्र—

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
अधिमित्र	०	बु.	०	सू.	चं.	०	०
मित्र	बु.	बृ. शु. श.	शु. श.	मं.	०	मं.	०
सम	चं. मं. बृ. शु. श.	सू.	सू. चं. बु. बृ.	चं. शु.	सू. मं.	सू. चं. बु. शु.	सू. चं. मं. बु. शु.
शत्रु	०	मं.	०	बृ. श.	श.	बृ.	बृ.
अधिशत्रु	०	०	०	०	बु. शु.	०	०

दशवर्गी—

लग्नं होराद्रेक्कसप्ताङ्ककाष्ठाभास्वान्भूपत्रिंशदभ्राङ्गभागाः।
दिग्वर्गाख्याः प्रोक्तरीत्या प्रसाध्या होराविज्ञैः प्रस्फुटं सत्फलार्थम्॥४०॥

लग्न, होरा, द्रेष्काण, सप्तमांश, नवमांश, दशमांश, द्वादशांश, षोडशांश, त्रिंशांश, और षष्ट्यंश ये दशवर्ग कहे जाते हैं। इनको आगे लिखी रीति से स्पष्ट करना चाहिये॥ ४०॥

राशिस्वामी—

कुजास्फुजिज्ज्ञेन्दुसूर्यज्ञशुक्रारेज्यसौरिणः।
शनीज्यौ क्रमशोंशानां मेषादीनां च स्वामिनः॥ ४१॥

मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मङ्गल, गुरु, शनि, शनि और गुरु ये ग्रह क्रम से मेषादि १२ राशियों के स्वामी होते हैं। और मेषादि राशियों के अंशों के भी स्वामी होते हैं ॥ ४१ ॥

होरे रवीन्द्वोरसमे समे स्तः शशिसूर्ययोः।
द्रेष्काणेशाः स्वपञ्चाङ्कभेशाः स्युः क्रमशः स्फुटाः ॥ ४२ ॥

विषम राशियों (१।३।५।७।९।११) में पहले १५ अंश तक सूर्यकी फिर १५ अंश चन्द्रमा की एवं सम (२।४।६।८।१०।१२) राशियों में पहले १५ अंश तक चन्द्रमा की फिर १५ अंश सूर्य की होरा होती है।

किसी भी राशि में पहले द्रेष्काण (१० अंश तक) का स्वामी उसी का स्वामी दूसरे द्रेष्काण (११ अंश से २० अंश तक) का स्वामी उससे पञ्चमेश और तीसरे द्रेष्काण (२१ अंश से ३० अंश तक) का स्वामी उससे नवमेश होता है ॥ ४२ ॥

सप्तमांश

लग्नादिसप्तमांशेशास्त्वोजे राशौ यथाक्रमम्।
युग्मे लग्ने स्वरांशानामधिपाः सप्तमादयः ॥ ४३ ॥

विषय संख्याक (१।३।५।७।९।११) राशियों में उसी राशि से, सम संख्याक (२।४।६।८।१०।१२) राशियों में उससे सप्तम राशि से सप्तमांश को गणना होती है ॥ ४३ ॥

नवमांश

मेषादिषु क्रमान्मेषनक्रतौलिकुलीरतः।
नवमांशा बुधैर्ज्ञेया होराशास्त्रविशारदैः ॥ ४४ ॥

मेषादि राशियों में क्रमसे मेष, मकर, तुला और कर्क इन राशियों से (३ अंश २० कला का) एकएक नवमांश होता है ऐसा होराशास्त्र के जानकारों ने कहा है। मेरा दूसरा पद्य—

चरे स्वस्मात्स्थिरे स्वाङ्काद् द्वन्द्वे तत्पञ्चमादितः।
नवमांशाधिपतयो ज्ञेया जातकविद्वरैः ॥ इति ॥ ४४ ॥

दशमांश-द्वादशांश—

लग्नादिदशमांशेशास्त्वोजे युग्मे शुभादिकाः।
द्वादशांशाधिपतयस्तत्तद्राशिवशानुगाः ॥ ४५ ॥

विषमराशियों में उसी राशि से और समराशियों में उसके नवमराशि

से दशमांश की गणना होती है। प्रत्येक राशि में उसी राशि से द्वादशांश की गणना होती है ॥ ४५ ॥

राशिस्वामी–होरा–द्रेष्काण–सप्तमांश–नवमांश बोधक चक्र—

०	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	राशि
स्वामी	मं.	शु.	बु.	चं.	सू.	बु.	शु.	मं.	बृ.	श.	श.	बृ.	राशिस्वामी
होरा	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	१५ अंश
	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	१५ अंश
द्रेष्काण	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	१० अंश
	सिं	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी	मे.	वृ.	मि	क.	२० अंश
	ध.	म.	कुं.	मी	मे.	वृ.	मि	क.	सिं	क.	तु.	वृ.	३० अंश
सप्तमांश	मे.	वृ.	मि	म.	सिं	मी	तु.	वृ.	ध.	क.	कुं.	क.	४।१७।८
	वृ.	ध.	क.	कुं.	क.	मे.	वृ.	मि	म.	सिं	मी	तु.	८।३४।१७
	मि	म.	सिं.	मी	तु.	वृ.	ध.	क.	कुं.	क.	मे.	वृ.	१२।५१।२५
	क.	कुं.	क	मे.	वृ.	मि	म.	सिं	मी	तु.	वृ.	ध.	१७।८।३४
	सिं	मी	पु.	वृ.	ध.	क.	कुं.	क.	मे.	वृ.	मि	म.	२१।२५।५२
	क.	मे.	वृ.	मि	म.	सिं	मी	तु..	वृ.	थ.	क.	कुं.	२५।४२।५१
	तु.	वृ.	ध.	क.	कु.	क.	मे.	वृ.	मि	म.	सिं	मी.	३०।०।०
नवमांश	मे.	म.	तु,	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म,	तु.	क.	३।२०
	वृ.	कुं.	वृ.	सिं	वृ.	कुं.	वृ.	सिं	वृ.	कुं.	वृ.	सिं	६।४०
	मि	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि	मी	ध.	क.	१०।०
	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	१३।२०
	सिं	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं	वृ.	कुं.	वृ.	१६।४०
	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	२०।०
	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	तु.	क.	मे.	म.	२३।२०
	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं.	वृ.	कुं.	वृ.	सिं	वृ.	कुं.	२६।४०
	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	ध.	क.	मि.	मी.	३०।०

दशमांश-द्वादशांश चक्र—

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	अंश । कला
दशमांश	मे.	म.	मि.	मी.	सिं.	वृ.	तु.	क.	ध.	क.	कुं.	वृ.	३।०
	वृ.	कुं.	क.	मे.	क.	मि.	वृ.	सिं.	म.	तु.	मी.	ध.	६।०
	मि.	मी.	सिं.	वृ.	तु.	क.	ध.	क.	कुं.	वृ.	मे.	म.	९।०
	क.	मे.	क.	मि.	वृ.	सिं.	म.	तु.	मी.	ध.	वृ.	कुं.	१२।०
	सिं.	वृ.	तु.	क.	ध.	क.	कुं.	वृ.	मे.	म.	मि.	मी.	१५।०
	क.	मि.	वृ.	सिं.	म.	तु.	मी.	ध.	वृ.	कुं.	क.	मे.	१८।०
	तु.	क.	ध.	क.	कुं.	वृ.	मे.	म.	मि.	मी.	सिं.	वृ.	२१।०
	वृ.	सिं.	म.	तु.	मी.	ध.	वृ.	कुं.	क.	मे.	क.	मि.	२४।०
	ध.	क.	कुं.	वृ.	मे.	म.	मि	मी.	सिं.	वृ.	तु.	क.	२७।०
	म.	तु.	मी.	ध.	वृ.	कुं.	क.	मे.	क.	मि.	वृ.	सिं.	३०।०
द्वादशांश	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	२।३०
	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	५।०
	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.	७।३०
	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	१०।०
	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	१२।३०
	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	१५।०
	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	१७।३०
	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	२०।०
	ध.	म,	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	२२।३०
	म.	कं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध	२५।०
	कुं.	मी.	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	२७।३०
	मी.	मे.	वृ.	म.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	३०।०

षोडशांश—

मेषादिषु मेषसिंहचापेभ्यो गणयेद्बुधः।
काम्बेशार्काः नृपांशेशा ओजे युग्मे क्रमोत्क्रात् ॥ ४६ ॥

मेषादि राशियों में मेषसे आरम्भ करके नवमांश की नाँईं (अर्थात् मेष में मेष से, वृष में सिंह से, मिथुन में धनु से फिर कर्क में मेषसे, सिंह में सिंहसे, कन्या में धनु से एवं आगे भी) षोडशांश की गणना होती है। (और विषमसंख्यक राशियों में क्रम से ब्रह्मा, गौरी, [1]महादेव और सूर्य तथा सम राशियों में उत्क्रम से उक्त देवता षोडशांश के स्वामी होते हैं) ॥४६॥

षोडशांशचक्र—

विषमराशावीशाः	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं,	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.	अंशाः	समराशावीशाः
ब्रह्मा	मे.	सिं.	ध,	मे.	सिं.	ध.	मे.	सिं.	ध.	मे.	सिं.	ध.	१।५२।३०	सूर्य
गौरी	वृ.	क.	म.	वृ.	क.	म.	वृ.	क.	म.	वृ.	क.	म.	३।४५।०	महादेव
महादेव	मि.	तु.	कुं.	मि.	तु.	कुं.	मि.	तु.	कुं.	मि.	तु.	कुं.	५।३७।३०	गौरी
सूर्य	क.	वृ.	मी.	क.	वृ.	मी.	क.	वृ.	मी.	क.	वृ.	मी.	७।३०।०	ब्रह्मा
ब्रह्मा	सिं.	ध.	मे.	सिं.	ध.	मे.	सिं.	ध.	मे.	सिं.	ध.	मे,	९।२२।३०	सूर्य
गौरी	क.	म.	वृ.	क.	म.	वृ.	क.	म.	वृ.	क.	म.	वृ.	११।१५।०	महादेव
महादेव	तु.	कुं.	मि.	तु.	कुं.	मि.	तु.	कुं.	मि.	तु.	कुं.	मि.	१३।७।३०	गौरी
सूर्य	वृ.	मी.	क.	वृ.	मी.	क.	वृ.	मी.	क.	वृ.	मी.	क.	१५।०।०	ब्रह्मा
ब्रह्मा	ध.	मे.	सिं.	ध.	मे.	सिं.	ध.	मे.	सिं.	ध.	मे.	सिं.	१६।५२।३०	सूर्य
गौरी	म.	वृ.	क.	म.	वृ.	क.	म.	वृ.	क.	म.	वृ,	क.	१८।४५।०	महादेव
महादेव	कुं.	मि.	तु.	कुं.	मि.	तु.	कुं.	मि.	तु.	कुं.	मि.	तु.	२०।३७।३०	गौरी
सूर्य	मी.	क.	वृ.	मी.	क.	वृ.	मी.	क.	वृ.	मी.	क,	वृ	२२।३०।०	ब्रह्मा
ब्रह्मा	मे.	सिं.	ध.	मे.	सिं.	ध.	मे.	सिं.	ध.	मे.	सिं,	ध.	२४।२२।३०	सूर्य
गौरी	वृ.	क.	म.	वृ.	क.	म.	वृ.	क.	म.	वृ.	क.	म.	२६।१५।०	महादेव
महादेव	मि.	तु.	कुं.	मि.	तु.	कुं.	मि.	तु.	कुं.	मि.	तु.	कुं.	२८।७।३०	गौरी
सूर्य	क.	वृ.	मी.	क.	वृ.	मी.	क.	वृ.	मी.	क.	वृ.	मी.	३०।०।०	ब्रह्मा

१. प्राचीन अनेक ग्रन्थों में गौरी के स्थान पर विष्णु का उल्लेख मिलता है।

त्रिंशांश—

कुजयमजीवज्ञसिताः पञ्चेन्द्रियवसुमुनीन्द्रियांशानाम् ।
विषमेषु समर्क्षेषूत्क्रमेण त्रिंशांशपाः कल्प्याः ॥ ४७ ॥

विषम राशियों (१।३।५।७।९।११) में क्रमसे ५।५।८।७।५ अंशों के भौम, शनि, बृहस्पति, बुध और शुक्र ये पाँच ग्रह स्वामी होते हैं। एवं सम राशियों (२।४।६।८।१०।१२) में विपरीत अर्थात् ५।७।८।५।५ अंशों के शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनैश्चर और मङ्गल ये त्रिंशांश स्वामी होते हैं ॥ ४७ ॥

त्रिंशांशबोधकचक्र—

मे० मि० सिं० तु० ध० कुं	वृष० कर्क० कन्या० वृ० मक० मी०
५ मङ्गल	५ शुक्र
५ शनैश्चर	७ बुध
८ बृहस्पति	८ बृहस्पति
७ बुध	५ शनैश्चर
५ शुक्र	५ मङ्गल

षष्ठ्यंश—

षष्ट्यंशकानामधिपास्त्वयुग्मे घोरांशकाद्याः सुरदेवभागाः ।
यदीन्दुरेखादिशुभाशुभांशाः क्रमेण युग्मे तु यथा विलोमात् ॥४८॥

३०।३० कलाका एक एक षष्ठ्यंश होता है। प्रत्येक राशि में उसी राशि से प्रारम्भ होता है और उनके घोरांशक इत्यादि क्रम से विषम राशियों तथा इन्दुरेखादि उत्क्रम से सम राशियों में स्वामी होते हैं। जो चक्र से स्पष्ट है ॥ ४८ ॥

पारिजातादिसंज्ञा—

ऐक्यं द्वित्र्यादिवर्गाणां क्रमाज्ज्ञेयं विचक्षणैः ।
पारिजातमुत्तमं गोपुरं सिंहासनं तथा ॥ ४९ ॥
पारावतांशकं देवलोक च ब्रह्मलोककम् ।
ऐरावतं तु नवकं वैशेषिकमतः परम् ॥ ५० ॥

जो ग्रह अपने दो वर्गमें स्थित हो तो पारिजातस्थ, ३ वर्ग में हो तो उत्तमस्थ, चार वर्ग में हो तो गोपुरस्थ, पाँच आत्मवर्ग में हो तो सिंहासनस्थ; छ वर्ग में हो तो पारावतांशकस्थ, सात वर्ग में हो तो देवलोकस्थ, आठ वर्ग में हो तो ब्रह्मलोकस्थ, नववर्ग में बैठा हो तो ऐरावतांशकस्थ तथा दश वर्ग में व्यवस्थित हो तो वैशेषिकांशकस्थ कहा जाता है ॥ ४६-५० ॥

विंशोत्तरीया पञ्चधा दशा—

दशा चान्तर्दशा चैव विदशोपदशा तथा ।
प्राणाख्या च फलं तासां वदेच्छास्त्रानुसारतः ॥ ५१ ॥

१ महादशा, २ अन्तर दशा, ३ विदशा (प्रत्यन्तर दशा), ४ उपदशा, (सूक्ष्मदशा) और ५ प्राणदशा ये ५ प्रकार की दशायें होती हैं। इनके फलों का शास्त्र के अनुसार आदेश करे ॥ ५१ ॥

महादशाज्ञान—

स्युः कृत्तिकादिनवकत्रिकभे रवीन्दु-
भौमाऽगुजीवशनिविच्छिखिभार्गवाणाम् ।
षड्दिङ्नगेभविधु-भूप-नवेन्दु-शैल-
भू-भूधरा नखमिताः क्रमतो दशाब्दाः ॥ ५२ ॥

कृत्तिका नक्षत्र से आरम्भ कर के नव नव नक्षत्र ३ आवृत्ति में गिनने पर क्रम से सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, राहु, बृहस्पति, शनि, बुध, केतु और शुक्र इनकी दशा के ६।१०।७।१८।१६।१६।१७।७।२० वर्ष होते हैं ॥ ५२ ॥

विंशोत्तरीया दशा—

नक्षत्र	कृत्ति० उ. फा उ. षा	रोहि० हस्त श्रवण	मृग० चित्रा धनिष्ठा	आर्द्रा० स्वाती शत०	पुन० विशा० पू. भा.	पुष्य अनु० उ. भा	आश्ले. ज्येष्ठा रेवती	मघा मूल अश्वि	पू. फा पू. षा भरणी
दशेश	सूर्य	चन्द्र	भौम	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
वर्ष	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०

(क) दशाभुक्तभोग्यानयन—

भयातमानेन हता दशाब्दा
भभोगमानेन हृताः फलं स्यात् ।
समादिकं भुक्तमनेन हीना
दशामितिर्भोग्यमितिः स्फुटा स्यात् ॥
ततः प्रभृत्येव दशाफलानि
प्रकल्पनीयानि बुधैर्ग्रहाणाम् ॥ ५३ ॥

दशा वर्ष को पलात्मक भयात के गुणा कर के पलात्मकभभोग से भाग देने पर लब्धि वर्ष होता है। फिर वर्ष शेष को १२ से गुणा कर के उसी भभोग से भाग देने पर लब्धि मास आता है। पुनः मास शेष को ३० से गुण के उसी हर से भाग देने पर भागफल गतदिन आता है। एवं दिन शेष को ६० से गुणा कर के उसी भाजक से भजन करने पर लब्धि गतघटी होती है और घटी शेष को ६० से गुण के उसी भाजक से भाग देने पर लब्धि पला होती है। एवं ५ स्थानों तक लब्धि लेकर आगे प्रयोजनाभाव से शेष को परित्याग कर देना चाहिये। अत एव किसी ने लिखा भी है—

शेषादर्कगुणा मासाः शेषस्त्रिंशद्गुणा दिवा ।
शेषात्षष्टिगुणा नाड्यः शेषात्षष्टिगुणाः पलाः ॥ इति ।

इस भांति जन्मकालीन दशा का सौरात्मक भुक्त वर्ष, मास, दिन, घटी, पल होता है। इस को दशा वर्ष में घटा देने से शेष दशा का भोग्य वर्षादि हो जाता है। यहीं से दशा की प्रवृत्ति होती है ॥ ५३ ॥

(ख) दशा का भोग्यानयन—

भयातघट्यूनभभोगमानं
स्वैः स्वैर्दशाब्दैर्गुणितं विभक्तम् ।
भभोगमानेन फलं भवेद्य-
त्तदेव भोग्याः शरदो दशायाः ॥ ५४ ॥

भयात को भभोग में घटा कर जो शेष बचे उसको पलात्मक बना के दशा वर्ष से गुणा कर के पलात्मक भभोग से भाग देने पर लब्धि दशा का भोग्य वर्षादिक हो जाता है ॥ ५४ ॥

दशा का भुक्तवर्षानयन—

पलात्मक भयात २७५५
शनिदशावर्ष=१९
२४७९५
२७५५
३४३४) ५२३४५ (१५।२।२७।३२।११
३४३४ वर्षादि दशा भुक्त हुआ
१८००५
१७१७०
८३५
१२
३४३४) १००२०
६८६८
३१५२
३०
३४३४) ९४५६०
६८६८
२५८८०
२४०३८
१८४२
६०
३४३४) ११०५२०
१०३०२
७५००
६८६८
६२२
६०
३४३४) ३७९२०
३४३४
३५८०
३४३४
१४६=शेष

'अर्धाल्पे त्याज्यं' इस नियम के अनुसार शेष १४६ को छोड़ दिया तो लब्धि १५।२।२७।३२।११ दशा का भुक्तवर्षादि हुआ।

दशा का भोग्यवर्षानयन—

पलात्मक भभोग ६७९
शनिदशावर्ष=१९
६१११
६७९
३४३४) १२९०१ (३।९।२।२७।४९
१०३०२ वर्षादिदशाभोग्य
२५९९ काल हो गया
१२
३४३४) ३११८८
३०९०६
२८२
३०
३४३४) ८४६०
६८६८
१५९२
६०
३४३४) ९५५२०
६८६८
२६८४०
२४०३८
२८०२
६०
३४३४) १६८१२०
१३७३६
३०७६०
२७४७२
३२८८=शेष

अर्धाधिक होने के कारण ८ की जगह शेष ९ कल्पना कर लिया तो वर्षादिक दशा का ३।९।२।२७।४९ भोग्य काल हुआ।

इस प्रकार दशाके भुक्त और भोग्य दोनों का साथ साथ गणित करने से कभी अशुद्धि नहीं हो सकती।

महादशा लिखने का क्रम—

श०	बु०	के०	शु०	सू०	चन्द्र	दशेश
३	१७	७	२०	६	१०	वर्ष
९	०	०	०	०	०	मास
२	०	०	०	०	०	दिन
२७	०	०	०	०	०	घटी
४९	०	०	०	०	०	पल
१९९०	१९९४	२०११	२०१८	२०३८	२०४४	संवत्
११	८	८	८	८	८	राशि
२०	२३	२३	२३	२३	२३	अंश
५८	२५	२५	२५	२५	२५	कला
०	४९	४९	४९	४९	४९	विकला

(ग) स्पष्टचन्द्रमा ही पर से दशाका भुक्त भोग्यानयन—

स्फुटेन्दोः कलाद्यं विभक्तं खखेभैः ८००
फलं भानि दास्रादिकानि स्युरेवम् ।
दशाब्दैर्हतं शेषकं खाभ्रनागै ८००
र्हतं स्यात्समाद्यं दशाभुक्तमानम् ॥ ५५ ॥
ततस्तद्विशोध्यं दशावर्षमध्ये-
ऽविशिष्टं भवेद्भोग्यमानं दशायाः ।
फलं पूर्ववत्तस्य कल्प्यं सुसद्भि-
र्महद्भिस्तथा काशिकायां वसद्भिः ॥ ५६ ॥

राश्यादि स्पष्ट चन्द्रमा की कला बना के ८०० का भाग देने पर लब्धि गत नक्षत्रकी संख्या होती है। अब वर्तमान नक्षत्रके अनुसार जो दशावर्ष आवे उससे शेष कला को गुणा करके ८०० का भाग देने पर लब्ध वर्षादि दशा का भुक्तमान होता है। उसको दशा वर्ष में घटा देने से शेष दशाका भोग्यवर्षादि होता है॥ ५५-५६॥

(घ) प्रकारान्तर से—

भागपूर्वः शशी त्र्याहतः खाब्धि ४० हृत्तत्फलं यातनक्षत्रसंख्या भवेत् ।
शेषकं स्वैर्दशाब्दैर्गुणं भाजितं शून्यवेदै ४० र्दशाभुक्तमानं भवेत् ॥
तत्परं पूर्ववद्भोग्यमानं तथा कल्पनीयं फलं जातकज्ञैः सदा ॥५७॥

अंशादिक स्पष्ट चन्द्रमा को ३ से गुणा कर के ४० का भाग देने पर लब्धि नक्षत्र की संख्या होती है। शेष अंशादि को दशावर्ष से गुणा करके ४० का भाग देने से लब्धि दशा का भुक्तवर्षादि होता है। उसके बाद पूर्वविधि से भोग्य की कल्पना करे ॥ ५७ ॥

(ङ) अंशादि नक्षत्र शेष पर से दशा का भोग्यानयन—

भागादिकं वा किल यद्भशेषं
त्रिघ्नैर्दशाब्दैर्गुणितं विभक्तम् ।
शून्याब्धि ४० भिस्तत्खलु भोग्यमानं
विना प्रयासेन भवेद्दशायाः ॥ ५८ ॥

अंशादि नक्षत्र शेष (१) (भोग्य) को त्रिगुणित दशावर्ष से गुणा करके ४० का भाग देने से लब्धि दशा का भोग्यवर्षादि होता है ॥ ५८ ॥

(२) अन्तरदशासाधन का सुलभप्रकार

दशादशाघातभवस्य योङ्क
आद्यः स धीरैस्त्रिगुणो विधेयः ।
तावन्मिताः स्युर्दिवसाश्च मासाः
शेषाङ्कतुल्याः सुधियाऽवगम्याः ॥ ५९ ॥

जिस ग्रह की महादशा में अन्तर दशा निकालनी हो उन दोनों ग्रहों के महादशा वर्षों का परस्पर गुणा करने से जो अङ्क (संख्या) हो उसके आद्यङ्क को ३ से गुणा कर देने पर दिन हो जाता है। और शेषाङ्क के समान मास होता है (मास संख्या १२ से अधिक हो तो १२ का भाग देकर वर्ष बना लेना चाहिये) ॥ ५९ ॥

उदाहरण—

बुध की महादशा में शनि का अन्तर लाना है तो बुध के दशावर्ष १७ से शनि के दशावर्ष १९ को गुणा किया तो १७ × १९=३२३ हुए इन में आद्यङ्क ३ को ३ से गुणा किया तो ९ दिन हुए। और शेष ३२ मास बचे। अर्थात् बुध की महादशा में शनि का अन्तर २ वर्ष ८ मास ९ दिन का हुआ। एवं सर्वत्र अन्तर-दशा का साधन बड़ी सुगमता से हो जाता है।

---

१. स्पष्ट चन्द्रकला में ८०० से भाग देने पर जो लब्धि आवे वह गत नक्षत्र की संख्या होती है और शेष वर्तमान नक्षत्र की भुक्त कला होती है। भुक्तकला को ८०० में घटा के ६० का भाग देने से नक्षत्र का भोग्यांश (अंश शेष) होता हैं।

सूर्य की महादशा में अन्तर्दशा।										चन्द्रमा की महादशा में अन्तर्दशा।										
सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	ध्रु.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	ध्रु.	दशेश
०	०	०	०	०	०	०	०	१	०	०	०	१	१	१	१	०	१	०	०	वर्ष
३	६	४	१०	९	११	१६	४	०	०	१०	७	६	४	७	५	७	८	६	१	मास
१८	०	६	२४	१८	१२	३	६	०	१८	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	दिन

मंगल की महादशा में अन्तर्दशा।										राहु की महादशा में अन्तर्दशा।										
मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	ध्रु.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	ध्रु.	दशेश
०	१	०	१	०	०	१	०	०	०	२	२	२	२	१	३	०	१	१	०	वर्ष
४	०	११	१	११	४	२	४	७	०	८	४	१०	६	०	०	१०	६	०	१	मास
२७	१८	६	९	२७	२७	०	६	०	२१	१२	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८	२४	दिन

बृहस्पतिकी महादशामें अन्तर्दशा।										शनि की महादशा में अन्तर्दशा।										
बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	ध्रु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	ध्रु.	दशेश
२	२	२	०	२	०	१	०	२	०	३	२	१	३	०	१	१	२	२	०	वर्ष
१	६	३	११	८	९	४	११	४	१	०	८	१	२	११	७	१	१०	६	१	मास
१८	१२	६	६	०	१८	०	०	२४	१८	३	९	९	०	१२	०	१	६	१२	२७	दिन

बुध की महादशा में अन्तर्दशा।										केतु की महादशा में अन्तर्दशा।										
बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	ध्रु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	ध्रु.	दशेश
२	०	२	०	१	०	२	२	२	०	०	१	०	०	०	१	०	१	०	०	वर्ष
४	११	१०	१०	५	११	६	३	८	१	४	२	४	७	४	०	११	१	११	०	मास
२७	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२१	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२७	२१	दिन

शुक्र की महादशा में अन्तर्दशा।

शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	ध्रु.	दशेश
३	१	१	१	३	२	३	२	१	०	वर्ष
४	०	८	२	०	८	२	१०	२	२	मास
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	दिन

बुध की महादशा में सबों की अन्तर्दशा।

बु.	के.	शु.	सू.	च.	मं.	रा.	बृ.	श.	दशेश
२	०	२	०	१	०	२	२	२	वर्ष
४	११	१०	१०	५	११	६	३	८	मास
२७	२७	७	६	०	२७	१८	६	९	दिन
१९९४	१९९७	१९९८	२०००	२००१	२००३	२००४	२००६	२००९	२०११
८	१	१	११	९	२	२	९	०	८
२३	२०	१७	१७	२३	२३	२०	८	१४	२३

अन्तरादिसाधन का दूसरा प्रकार—

स्वैः स्वैर्दशाब्दैर्गुणितं दशादिवर्षादिकं विंशतियुक्शतेन १२० ।
भजेच्च लब्धं हि निजान्तरान्तर्दशादिमानं कथितं मुनीन्द्रैः ॥ ६० ॥

जिस ग्रह की दशा, अन्तरदशा, प्रत्यन्तरदशा आदि में अन्तरदशा प्रत्यन्तरदशा, सूक्ष्मदशा आदि का साधन करना हो, उस ग्रह के दशावर्ष से अन्य ग्रह के दशावर्ष, अन्तरदशा मास, प्रत्यन्तरदशा दिन इत्यादि को गुणा करके १२० का भाग देने से अन्तरदशा, प्रत्यन्तरदशा इत्यादि का वर्ष, मास, दिनादिक होता है ॥ ६० ॥

अवरोहक्रम से ध्रुवकवश अन्तरादि का साधन (ग्रन्थान्तर से)—

रामैर्हताश्चार्कमुखग्रहाणां दशाब्दकास्ते दिवसा भवन्ति ।
दशासमानां खलु षष्ठभागः शुक्रस्य भुक्तिः सकलग्रहेषु ॥६१॥
दशेश्वरदिनैर्हीना शुक्रभुक्तिर्भवेच्छनेः ।
सैव हीना दशानाथदिनैश्चागोः स्मृता हि सा ॥ ६२ ॥
रहिता चैव सा ज्ञेया चन्द्रजस्य तु तैर्दिनैः ।
एवं हीना च सा ज्ञेया दशानाथदिनैर्गुरोः ॥ ६३ ॥
अगोस्त्रिभागं रविभुक्तिमाहुः शुक्रस्य चार्धं हिमगोर्भवेत्सा ।
युता दशानाथदिनै रवेस्तु भुक्तिर्भवेच्चैव कुजस्य केतोः ॥
एवं समस्तग्रहभुक्तयस्तु कार्या दिनेशादिखगेश्वराणाम् ॥ ६४ ॥

सूर्यादिक ग्रहों के दशावर्ष को ३ से गुणाकर देने से ध्रुवक हो जाता है। प्रत्येक ग्रह के दशावर्ष के छठे भाग के बराबर शुक्र की अन्तरदशा होती है। शुक्र की अन्तरदशामें ध्रुवक घटानेसे शनि का अन्तर, शनिके अन्तर में ध्रुवक घटाने से राहुका अन्तर, राहु के अन्तर में ध्रुवक घटाने से बुध

का अन्तर, बुधके अन्तर में ध्रुवक घटाने से बृहस्पति का अन्तर होता है। राहु की अन्तरदशा की तिहाई के तुल्य सूर्यका अन्तर, शुक्रान्तर के आधे के बराबर चन्द्रमा का अन्तर और सूर्य के अन्तर में ध्रुवक जोड़ देने से मङ्गल और केतु का अन्तर होता है॥ ६१-६४॥

आरोहक्रमसे अन्तरादिका साधन—

निघ्नं त्रिभिः खलु खगस्य दशाप्रमाणं स्पष्टं भवेद्ध्रुवकसंज्ञकमन्तरार्थम्।
दिग्भी रसैश्च गुणितं क्रमशो भवेतां स्पष्टेऽन्तरे हिमरुचो दिवसेश्वरस्य॥६५
द्वयोर्युताविन्द्रगुरोः प्रमाणं ततो भवेयुध्रुवकस्य योगात्।
बुधाऽगुसौर्य्याऽऽस्फुजितां क्रमेणान्तराब्दमानानि परिस्फुटानि॥६६॥
सूर्यान्तरे तद्ध्रुवकस्य योगाद्भौमस्य केतोश्च परिस्फुटत्वम्।
ज्ञेयं बुधैः सद्धिषणाधनाढ्यैः सज्ज्यौतिपालोडनसुप्रवीणैः॥ ६७॥

जिसकी महादशा में ग्रहोंका अन्तर साधन करता हो उसके दशावर्ष को ३ से गुणा करनेसे उसका ध्रुवक हो जाता है। उस ध्रुवक को क्रमसे १० और ६ से गुणन करने से चन्द्रमा और सूर्यका अन्तर होता है। इन दोनों (सूर्य और चन्द्रमा) के अन्तरदशाओं के योगके बराबर बृहस्पतिका अन्तर होता है। बृहस्पति के अन्तर में बार २ ध्रुवक जोड़ने से क्रमसे बुध, राहु, शनि और शुक्र का अन्तर हो जाता है। सूर्य के अन्तर में ध्रुवांक जोड़ देने से मङ्गल और केतु का अन्तर होता है॥ ६५-६७॥

उदाहरण—

बुध की महादशा में ९ ग्रहों का अन्तर लाना है तो बुध के दशावर्ष को ३ से गुणा कर दिया तो १७ × ३=५१ दिन अर्थात् १ महीना २१ दिन बुधका ध्रुवक हुआ। इस (१।२१) को क्रम से १० और ६ से गुण दिया जाय तो १७ महिना (१ वर्ष ५ मास) चन्द्रमा का और १० महीना ६ दिन सूर्य का अन्तर हुआ। दोनों को जोड़ दिया तो २ वर्ष ३ महीना ६ दिन बृहस्पति का अन्तर हुआ। इसमें ध्रुवक १।२१ जोड़ दिया तो २ वर्ष ४ महीना २७ दिन बुध का अन्तर हुआ, इसमें ध्रुवक १।२१ जोड़ दिया तो २ वर्ष ६ महीना १८ दिन राहु का अन्तर हुआ। फिर इसमें ध्रुवक १।२१ जोड़ दिया तो २ वर्ष ८ मास ९ दिन शनि का अन्तर हुआ। फिर इसमें १।२१ ध्रुवक जोड़ दिया तो २ वर्ष १० महीना शुक्र का अन्तर हुआ। पुनः सूर्य के अन्तर (१० म० ६ दि०) में ध्रुवक १।२१ जोड़ दिया तो ११ महीना २७ दिन केतु और मंगल का अन्तर हुआ। इन अन्तरों को यथास्थान रख दिया तो पूर्व लिखे चक्र के तुल्य बुध में ९ ग्रहों के अन्तर हो गये। (४९ पृष्ठ देखिये)

प्रत्यन्तर का ध्रुवकज्ञान—

महादशाधीश्वरवर्पघातः खवेद ४० भक्तो दिवसादिकः स्यात्।

ध्रुवो तु प्रत्यन्तरके प्रसाध्यं पूर्वप्रकारेण दशाप्रमाणम् ॥ ६८ ॥

दोनों ग्रहों के महादशा वर्षों को आपस में गुणन कर के ४० का भाग देने से लब्धि दिनादि प्रत्यन्तर साधन करने के लिये ध्रुवक होता है। इस ध्रुवक पर से पूर्व विधि के अनुसार प्रत्यन्तरदशा का साधन करना चाहिये ॥ ६८ ॥

उदाहरण—

बुध की महादशा में शनि की अन्तर दशा में सब ग्रहों का प्रत्यन्तर साधन करना है तो बुध और शनि के दशावर्षों का गुणा कर के ४० का भाग दिया तो $\frac{१७ \times १९}{४०}$ = ८ दिन ४ घटी ३० पल ध्रुवक हुआ। इस पर से पूर्ववत् प्रत्यन्तर दशा बन जायगी।

सूक्ष्मादि का ध्रुवनयन—

महाशादेर्नाथानां दशाब्दा गुणिता मिथः।
खनागैः खनृपैर्भक्ता सूक्ष्मे प्राणे परिस्फुटौ ॥ ६९ ॥
ध्रुवौ भवेतां घट्यादि-पलाद्यौ सुधिया ततः।
प्रसाध्यं पूर्ववत्सर्वं प्रत्यन्तरदशादिकम् ॥ ७० ॥

दशा, अन्तरदशा, प्रत्यन्तरदशाके स्वामियों के महादशावर्षों का आपस में गुणा कर के ८० का भाग देने से उपदशा (सूक्ष्मदशा) आनयन के लिये घट्यादिक ध्रुवक होता हैं। और दशा, अन्तरदशा, प्रत्यन्तरदशा और सूक्ष्मदशा के स्वामियों के दशावर्षों का परस्पर गुणन कर के १६० का भाग देने से प्राणदशा का ध्रुवक होता है। उसके बाद पूर्वरीति (६५-६७श्लोकों) के अनुसार सूक्ष्मदशा और प्राणदशा का साधन करना चाहिये ॥६९-७०॥

उदाहरण—

बुध की महादशा में शनि की अन्तरदशा में गुरु की प्रत्यन्तर दशा में सब ग्रहों की सूक्ष्मदशा का ज्ञान करना है तो बुध की महादशा का वर्ष १७, शनि की महा दशा का वर्ष १९ और गुरु की महादशा का वर्ष १६ है। इनका आपस में गुणन फल निकाल के ८० का भाग दिया तो गुरु की प्रत्यन्तर दशा में सब ग्रहों की सूक्ष्मदशा साधन के लिये घट्यादि ध्रुवक = $\frac{१७ \times १९ \times १६}{८०}$

= ६४ घ० ३६ पल

= १ दि० ४ घ० ३६ प० हुआ

इस पर से पूर्व विधि के अनुसार प्रत्येक ग्रहों की सूक्ष्म दशा का ज्ञान करना चाहिये।

एवं प्राण दशानयनार्थ ध्रुवक का भी ज्ञान होता है।

सूर्य

सूर्यकी महादशामें सूर्यके अन्तर में सबों का प्रत्यन्तर

सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	धु.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
५	९	६	१६	१४	१७	१५	६	१८	०
२४	०	१८	१२	२४	६	१८	१८	०	५४

सूर्यकी महादशा में चन्द्रमा के अन्तर में सबों का प्रत्यन्तर

चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	धु.	दशेश
०	०	०	०	०	०	०	१	०	०	मास
१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	९	१	दिन
०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	३०	घटी

सूर्यकी महादशामें भौम के अन्तर में सबों का प्रत्यन्तर

मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	धु.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
७	१८	१६	१९	१७	७	२१	६	१०	१
२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	१८	३०	३

सूर्यकी महादशा में राहु के अन्तर में सबों का प्रत्यन्तर

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	धु.	दशेश
१	१	१	१	०	१	०	०	०	०	मास
१८	१३	२१	१५	१८	२४	१६	२७	१८	२	दिन
३६	१२	१८	५४	५४	०	१२	०	५४	४२	घटी

सूर्यकी महादशा में गुरु के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	धु.
१	१	१	०	१	०	०	०	१	०
८	१५	१०	१६	१८	१४	२४	१६	१३	२
२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२	२४

सूर्यकी महादशा में शनि के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	धु.	दशेश
१	१	०	१	०	०	०	१	१	०	मास
२४	१८	१९	२७	१७	२८	१९	२१	१५	२	दिन
९	२७	५७	०	६	३०	५७	१८	३६	५१	घटी

सूर्यकी महादशा में बुध के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	धु.
१	०	१	०	०	०	१	१	१	०
१३	१७	२१	१५	२५	१७	१५	१०	१८	२
२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	१८	२७	३३

सूर्यकी महादशा में केतु के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	धु.	दशेश
०	०	०	०	०	०	०	०	२	०	मास
७	२१	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	१	दिन
२१	०	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	३	घटी

सूर्यकी महादशा में शुक्र के अन्तर में सब ग्रहों का प्रत्यन्तर

शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	धु.	दशेश
२	०	१	०	१	१	१	१	०	०	मास
०	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	३	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

चन्द्रमा

चन्द्र की महादशा में चद्रमा के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर										चन्द्र की महादशा में भौम के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर										
चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	घ्रु	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के	शु.	सू.	चं.	घ्रु.	दशेश
०	०	१	१	१	१	०	१	०	०	०	१	०	१	०	०	१	०	०	०	मास
२५	१७	१५	१०	१७	१२	१७	२०	१५	२	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	१७	१	दिन
०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	३०	४५	घटी

चन्द्र की महादशा में राहुके अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर										चन्द्र की महादशा में गुरु के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर										
रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	घ्रु.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	घ्रु.	दशेश
२	२	२	२	१	३	०	१	१	०	२	२	२	०	२	०	१	०	२	०	मास
२१	१२	२५	१६	१	०	२७	१५	१	४	४	१६	८	२८	२०	२४	१०	२८	१२	४	दिन
०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	३०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

चन्द्र की महादशामें शनि के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर										चन्द्र की महादशा में बुध के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर										
श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	घ्रु.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	घ्रु.	दशेश
३	२	१	३	०	१	१	२	२	०	२	०	२	०	१	०	२	२	२	०	मास
०	२०	३	५	२८	१७	३	२५	१६	४	१२	२९	२५	२५	१२	२९	१६	८	२०	४	दिन
१५	४५	१५	०	३०	३०	१५	३०	०	४५	१५	४५	०	३०	३०	४५	३०	०	४५	१५	घटी

चन्द्र की महादशामें केतु अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर										चन्द्र की महादशा में शुक्र के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर										
के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	घ्रु.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	घ्रु.	दशेश
०	१	०	०	०	१	०	१	०	०	३	१	१	१	३	२	३	२	१	०	मास
१२	५	१०	१७	१२	१	२८	३	२९	१	१०	०	२०	५	०	२०	५	२५	५	५	दिन
१५	०	३०	३०	१५	३०	४५	१५	४५	२५	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

चन्द्रमा की महादशा में सूर्य के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	घ्र.	दशेश
०	०	०	०	०	०	०	०	१	०	मास
९	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	१	दिन
०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	३०	घटी

मङ्गल

भौम महादशा में भौम के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	म.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	घु.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२	१
घटी	३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५	१३
पल	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०

भौम महादशा में राहु के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	घु.
मास	१	१	१	१	०	२	०	१	०	०
दिन	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२	३
घटी	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३	९
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

भौम महादशा में गुरु के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	घु.
मास	१	१	१	०	१	०	०	०	१	०
दिन	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०	२
घटी	४८	१२	३६	३३	०	४८	०	३६	२४	४८
पल	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

भौम महादशा में शनि के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	घु.
मास	२	१	०	२	०	१	०	१	१	०
दिन	३	२६	२३	६	१९	३	२३	२९	२३	३
घटी	१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	१९
पल	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

भौम महादशा में बुध के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	घु.
मास	१	०	१	०	०	०	१	१	१	०
दिन	२०	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	२
घटी	३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१	५८
पल	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०

भौम महादशा में केतु के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	घु.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	८	२४	७	१२	८	२२	१९	२३	२०	१
घटी	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	४६	१३
पल	३०	०	०	०	३०	५	०	३०	३०	३०

भौम महादशा में शुक्र के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	घु.
मास	२	०	१	०	२	१	२	१	०	०
दिन	१०	२१	५	२४	२३	२६	६	२९	२४	३
घटी	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	३०

भौम महादशा में सूर्य के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	घु.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दिन	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	१
घटी	१८	३०	२१	५४	४८	५७	२१	२१	०	३

भौम महादशा में चन्द्र के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	घु.	दंशेश
०	०	१	०	१	०	०	१	०	०	मास
१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	१	दिन
३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	४५	घटी

राहु

राहु महादशा में राहु के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं	म.	घु.
मास	४	४	५	४	१	५	१	२	१	०
दिन	२५	९	३	१७	२६	१२	१८	२१	२६	८
घटी	४८	३६	५४	४२	४२	०	३६	०	४२	६

राहु महादशा में गुरु के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	घु.
मास	३	४	४	१	४	१	२	१	४	०
दिन	२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०	९	७
घटी	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	३६	१२

राहु महादशा में शनि के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	म.	रा.	बृ.	घु.
मास	५	४	१	५	१	२	१	५	४	०
दिन	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९	३	१६	८
घटी	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४८	३३

राहु महादशा में बुध के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	शं.	घु.
मास	४	१	५	१	२	१	४	४	४	०
दिन	१०	२३	३	१५	१६	२३	१७	२	२५	७
घटी	३	३३	०	५४	३०	३३	४२	२४	२१	३९

राहु महादशा में केतु के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	घु
मास	०	२	०	१	०	१	१	१	१	०
दिन	२२	३	१८	१	२२	२६	२०	२९	२३	३
घटी	३	०	५४	३०	३	४२	२४	५१	३३	९

राहु महादशा में शुक्र के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	घु.
मास	६	१	३	२	५	४	५	५	२	०
दिन	०	२४	०	३	१२	२४	२१	३	३	९
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

राहु महादशा में सूर्य के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	घु
मास	०	०	०	१	१	१	१	०	१	०
दिन	१६	२७	१८	१८	१३	२१	१५	१८	२४	२
घटी	१२	०	५४	३६	१२	१८	५४	५४	०	४२

राहु महादशा में चन्द्र के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

दशेश	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	सू.	शु.	घु.
मास	१	१	२	२	२	२	१	३	०	०
दिन	१५	१	२१	१२	२५	१६	१	०	२७	४
घटी	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	३०

राहु की महादशा में भौम के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

म.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	घु.	दशेश
०	१	१	१	१	०	२	०	१	०	मास
२२	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	३	दिन
३	४२	२४	५१	२३	३	०	५४	३०	९	घटी

गुरु

गुरुमहादशा में गुरु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	ध्रु.
३	४	३	१	४	१	२	१	३	०
१२	१	१८	१४	८	८	४	१४	२५	६
२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२	२४

गुरुमहादशा में शनि के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	ध्रु.	दशेश
४	४	१	५	१	२	१	४	४	०	मास
२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६	१	७	दिन
२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४८	३६	३६	घटी

गुरुमहादशा में बुध के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	ध्रु.
३	१	४	१	२	१	४	३	४	०
२५	१७	१६	१०	८	१७	२	१८	६	६
३६	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	४८

गुरुमहादशा में केतु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	ध्रु.	दशेश
०	१	०	०	०	१	१	१	१	०	मास
१९	२६	१६	२८	१९	२०	१४	२३	१७	२	दिन
३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	३६	४८	घटी

गुरुमहादशा में शुक्र के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	ध्रु.
५	१	२	१	४	४	५	४	१	०
१०	१८	२०	२६	२४	८	२	१६	२६	८
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

गुरुमहादशा में सूर्य के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	ध्रु.	दशेश
०	०	०	१	१	१	१	०	१	०	मास
१४	२४	१६	१३	८	१५	१०	१६	१८	२	दिन
२४	०	४८	१२	२४	३६	४८	४८	०	२४	घटी

गुरुमहादशा में चन्द्र के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	ध्रु.
१	०	२	२	२	२	०	२	०	०
१०	२८	१२	४	१६	८	२८	२०	२४	४
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

गुरुमहादशा में भौम के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	ध्रु.	दशेश
०	१	१	१	१	०	१	०	०	०	मास
१९	२०	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	२	दिन
३६	२४	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	४८	घटी

गुरुमहादशा में राहु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	ध्रु.	दशेश
४	३	४	४	१	४	१	२	१	०	मास
९	२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०	७	दिन
३६	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	१२	घटी

शनि

शनि महादशा में शनि के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर | **शनि महादशा में बुध के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर**

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	ध्रु.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	ध्रु.	दशेश
५	५	२	६	१	३	२	५	४	०	४	१	५	१	२	१	४	४	५	०	मास
२१	३	३	०	२४	०	३	१२	२४	९	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९	३	८	दिन
२८	२५	१०	३०	९	१५	१०	२७	२४	१	१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२	२५	४	घटी
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	पल

शनि महादशा में केतु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर | **शनि महादशा में शुक्र के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर**

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	ध्रु.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	ध्रु.	दशेश
०	२	०	१	०	१	१	२	१	०	६	१	३	२	५	५	६	५	२	०	मास
२३	६	१९	३	२३	२९	२३	३	२६	३	१०	२७	५	६	२१	२	०	११	६	९	दिन
१६	३०	५७	१५	१६	९१	१२	१०	३१	१९	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	३०	घटी
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	पल

शनि महादशा में सूर्य के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर | **शनि महादशा में चन्द्र के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर**

सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	ध्रु.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	ध्रु.	दशेश
०	०	०	१	१	१	१	०	१	०	१	१	२	२	३	२	१	३	०	०	मास
१७	२८	१९	२१	१५	२४	१८	१९	२७	२	१७	३	२५	१६	०	२०	३	५	२०	४	दिन
६	३०	५७	१८	२६	९	५७	२७	०	५१	३०	४५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	४५	घटी

शनि महादशा में भौम के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर | **शनि महादशा में राहु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर**

मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	ध्रु.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	ध्रु.	दशेश
०	१	१	२	१	०	२	०	१	०	५	४	५	४	१	५	१	२	१	०	मास
२३	२९	२२	३	२६	२३	६	१९	३	३	३	१६	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२६	८	दिन
१६	५१	१२	१०	३१	१६	३०	५७	१५	१९	५४	४८	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१	३३	घटी
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	पल

शनि महादशा में गुरु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	ध्रु.	दशेश
४	४	४	१	५	१	२	१	४	०	मास
१	२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६	७	दिन
३६	२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४८	३६	घटी

बुध

बुधमहादशा में बुध के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	घ्रु.	दशेश
४	१	४	१	२	१	४	३	४	०	मास
२	२०	२४	१३	१२	२०	१०	२५	१७	७	दिन
२९	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	१३	घटी
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	पल

बुधमहादशा में केतु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	घ्रु.	दशेश
०	१	०	०	०	१	१	१	१	०	मास
२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	२०	२	दिन
४६	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१	३४	५८	घटी
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	पल

बुधमहादशा में शुक्र के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	घ्रु.	दशेश
५	१	२	१	५	४	५	४	१	०	मास
२०	२१	२५	२९	३	१६	११	२४	२९	८	दिन
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	३०	घटी

बुधमहादशा में सूर्य के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	घ्रु.	दशेश
०	०	०	१	१	१	१	०	१	०	मास
१५	२५	१७	१५	१०	१८	१३	१७	२१	२	दिन
१८	३०	५१	५४	४८	२७	२१	५१	०	३३	घटी

बुधमहादशा में चन्द्रके अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	घ्रु.	दशेश
१	०	२	२	२	२	०	२	०	०	मास
१२	२९	१६	८	२०	१२	२९	२५	२५	४	दिन
३०	४५	३०	०	४५	१५	४५	०	३०	१५	घटी
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	पल

बुधमहादशा में भौम के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

मं.	रा.	बृ.	रा.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	घ्रु.	दशेश
०	१	१	१	१	०	१	०	०	०	मास
२०	२३	१७	२६	२०	२०	२९	१७	२९	२	दिन
४९	३३	३६	३१	३४	४९	३०	५१	४५	५८	घटी
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	पल

बुधमहादशा में राहु के अन्तर में ग्रहों का प्रत्यन्तर

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	घ्रु.	दशेश
४	४	४	४	१	५	१	२	१	०	मास
१७	२	२५	१०	२३	३	१५	१६	२३	७	दिन
४२	२४	२१	३	३३	०	५४	३०	३३	२९	घटी

बुधमहादशा में गुरु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	घ्रु.	दशेश
३	४	३	१	४	१	२	१	४	०	मास
१८	९	२५	१७	१६	१०	८	१७	२	६	दिन
४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	घटी

बुधमहादशा में शनि के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	घ्रु.	दशेश
५	४	१	५	१	२	१	४	४	०	मास
३	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९	८	दिन
२५	१६	३१	३०	[illegible]	४५	३१	२१	१२	४	घटी
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	पल

केतु

केतु महादशा में केतु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	धु.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
८	२४	७	१२	८	२२	१९	२३	२०	५
३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	४९	१३
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०

केतु महादशा में शुक्र के अन्तर ग्रहों के प्रत्यन्तर

शु.	सू.	चं	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	धु.	दशेश
२	०	१	०	२	१	२	१	०	०	मास
१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४	३	दिन
०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	३०	घटी
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	पल

केतु महादशा में सूर्य के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	धु.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	१
१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	३

केतु महादशा में चन्द्र के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

चं.	म.	रा.	बृ.	श	बु	के.	शु.	सू.	धु.	दशेश
०	०	१	०	१	०	०	१	०	०	मास
१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	१	दिन
३०	५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	४५	घटी

केतु महादशा में भौम के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के	शु.	सू.	च.	धु.
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
८	२२	१९	२३	२१	८	२४	७	१२	१
३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५	१३
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०

केतु महादशा में राहु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	धु.	दशेश
१	१	१	१	०	२	०	१	०	०	मास
२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२	३	दिन
४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३	९	घटी
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	पल

केतु महादशा में गुरु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	म.	रा.	धु.
१	१	१	०	१	०	०	०	१	०
४	१३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०	२
१८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	४८
४०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

केतु महादशा में शनि के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	धु.	दशेश
२	१	०	२	१	१	०	१	१	०	मास
३	२६	२३	६	१९	३	२३	२६	२३	३	दिन
१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	१९	घटी
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	पल

केतु महादशा में बुधके अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

बु.	क.	शु.	सू.	चं	मं	रा.	बृ.	श.	धु.	दशेश
१	०	१	०	०	०	१	१	१	०	मास
२०	२०	२९	१७	२६	२०	२३	१७	२६	२	दिन
३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१	५८	घटी
३०	३०	०	०	३०	३०	०	०	३०	३०	पल

शुक्र

शुक्र महादशा में शुक्र के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	धु.
६	२	३	२	६	५	६	५	२	०
२०	०	१०	१०	०	१०	१०	२०	१०	१०
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

शुक्र महादशा में सूर्य के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

सू.	च.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	धु.	दशेश
०	१	०	१	१	१	१	०	२	०	मास
१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	०	३	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

शुक्र महादशा में चन्द्र के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	धु.
१	१	३	२	३	२	१	३	१	०
२०	५	०	२०	५	२५	५	१०	०	५
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

शुक्र महादशा में भौम के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	धु.	दशेश
०	२	१	२	१	०	२	०	१	०	मास
२४	३	२६	६	२९	२४	१०	२१	५	३	दिन
३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	घटी

शुक्र महादशा में राहु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

रा.	बृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	धु.
५	४	५	५	२	६	१	३	२	०
१२	२४	२१	३	३	०	२४	०	३	९
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

शुक्र महादशा में गुरु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

बृ.	श.	बु.	क.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	धु.	दशेश
४	५	४	१	५	१	२	१	४	०	मास
८	२	१६	२६	१०	१८	२०	२६	२४	८	दिन
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	घटी

शुक्र महादशा में शनि के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	धु.
६	५	२	६	१	३	२	५	५	०
०	११	६	१०	२७	५	६	२१	२	९
३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०

शुक्र महादशा में बुध के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	धु.	दशेश
४	१	५	१	२	१	५	४	५	०	मास
२४	२९	२०	२१	२५	२९	३	१६	११	८	दिन
३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	घटी

शुक्र महादशा में केतु के अन्तर में ग्रहों के प्रत्यन्तर

के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	बृ.	श.	बु.	धु.	दशेश
०	२	०	१	०	२	१	२	१	०	मास
२४	१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	३	दिन
३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	घटी

योगिनी दशानयन—

जन्मभं त्रियुतं तष्टमष्टभिः शेषतो दशा।
मङ्गलाद्या अब्दवृद्ध्या सङ्कटाऽष्टौ समा मता ॥ ७१ ॥
आसामीशाः क्रमाच्चन्द्रभान्वीज्यकुजचन्द्रजाः।
मन्दाऽऽस्फुजित्तसैंहिकेया विज्ञेया हौरिकोत्तमैः ॥ ७२ ॥

जन्म नक्षत्र की संख्या में ३ जोड़ के ८ का भाग देने से शेष मङ्गला आदि ८ दशायें होती हैं। और उनके क्रमसे चन्द्रमा, सूय, बृहस्पति, मङ्गल, बुध, शनि, शुक्र और राहु-केतु स्वामी होते हैं। स्फुटता के लिये चक्र देखिये ॥ ७१-७२ ॥

योगिनीदशा ज्ञान—

नक्षत्र	० आर्द्रा चित्रा श्रवण	० पुन. स्वाती घनिष्ठा	० पुष्य विशा शत्त	अश्वि. आश्ले अनु पूभा	भरणी मघा ज्येष्ठा उभा	कृत्तिका पू. फ. मूल रेवती	रोहिणी उ.फ. पू. षा ०	मृग. हस्त उ. षा ०
दशा	मङ्गला	पिङ्गला	धान्या	भ्रामरी	भद्रिका	उल्का	सिद्धा	सङ्कटा
दशेश	चन्द्र	सूर्य	गुरु	भौम	बुध	शनि	शुक्र	रा. के.
वर्ष	१	२	३	४	५	६	७	८

योगिन्यन्तरदशा ज्ञान—

दशा दशाहता कार्या शिवनेत्र३विभाजिता।
लब्धं मासादिकं ज्ञेयं योगिन्यामन्तरं स्फुटम् ॥ ७३ ॥

महादशा वर्ष को अन्तरदशेश के वर्ष से गुणाकरके ३ का भाग देने से लब्धि मासादिक अन्तरदशा(१)होती है ॥ ७३ ॥

सिद्धा महादशा में सङ्कटा की अन्तरदशा निकालनी है तो सिद्धा के वर्ष ७ को सङ्कटा के वर्ष ८ से गुणा करके ३ से भाग दिया तो $\frac{७ \times ८}{३}$ = १८ मास २० दिन (अर्थात् १ वर्ष ६ महीना २०) सिद्धा में सङ्कटा का अन्तर (अथवा सङ्कटा में सिद्धा का अन्तर) हुवा।

१ मङ्गला में अन्तर— २ पिङ्गला में अन्तर—

मं.	पि.	धा.	भ्रा.	भ.	उ.	सि.	सं.	पि.	धा.	भ्रा.	भ.	उ.	सि.	सं.	मं.	दशा
चं.	सू.	गु.	भौ.	बु.	श.	शु.	रा. के.	सू.	बृ.	भौ.	बु.	श.	शु.	रा. के.	चं.	दशेश
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	वर्ष
०	०	१	१	१	२	२	२	१	२	२	३	४	४	५	०	मास
१०	२०	०	१०	२०	०	१०	२०	१०	०	२०	१०	०	२०	१०	२०	दिन

१. योगिनी दशा के भुक्त और भोग्य वर्षादि को भी ५३-५४ श्लोकों के अनुसार ही स्पष्ट कर लेना चाहिये।

३ धान्या में अन्तर— ४ भ्रामरी में अन्तर—

घा.	भ्रा.	भ.	उ.	सि.	सं.	मं.	पिं.	भ्रा.	भ.	उ.	सि.	सं.	मं.	पिं.	धा.	दशा
बृ.	भौ.	बु.	श.	शु.	रा. के.	चं.	सू.	भौ.	बु.	श.	शु.	रा. के.	चं.	सू.	बृ.	दशेश
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	वर्ष
३	४	५	६	७	८	१	२	५	६	८	९	१०	१	२	४	मास
०	०	०	०	०	०	०	०	१०	२०	०	१०	२०	१०	२०	०	दिन

५ भद्रिका में अन्तर— ६ उल्का में अन्तर—

भ.	उ.	सि.	सं.	मं.	पिं.	धा.	भ्रा.	उ.	सि.	सं.	मं.	पिं.	धा.	भ्रा.	भ.	दशा
बु.	श.	शु.	रा. के.	चं.	सू.	बृ.	भौ.	श.	शु.	रा. के.	चं.	सू.	बृ.	भौ.	बु.	ददेश
०	०	१	१	०	०	०	०	१	१	१	०	०	०	०	०	वर्ष
८	११	०	१	१	३	५	६	०	२	४	२	४	६	८	१०	मास
१०	२०	२०	१०	२०	१०	०	२०	०	०	०	०	०	१	०	०	दिन

७ सिद्धा में अन्तर— ८ सङ्कटा में अन्तर—

सि.	सं.	मं.	पिं.	धा.	भ्रा.	भ.	उ.	सं.	मं.	पिं.	धा.	भ्रा.	भ.	उ.	सि.	दशा
शु.	रा. के.	चं.	सू.	बृ.	भौ.	बु.	श.	रा. के.	चं.	सू.	बृ.	भौ.	बु.	श.	शु.	दशेश
१	१	०	०	०	०	०	१	१	०	०	०	०	१	१	१	वर्ष
४	६	२	४	७	९	११	२	९	२	५	८	१०	१	४	६	मास
१०	२०	१०	२०	०	१०	२०	०	१०	२०	१०	०	२०	१०	०	२०	दिन

होरालग्नानयन—

द्विघ्नेष्टनाड्यः पञ्चाप्तो भं शेषं च पलीकृतम् ।
दशाप्तमंशास्ते योज्या रवौ होरोदयं भवेत् ॥
विषमेऽङ्के रवौ योज्यं समेऽङ्के लग्नादिषु ॥ ७४ ॥

इष्ट घटी पल को २ से गुणा करके ५ का भाग देने से लब्धि राशि होती है। शेष का पल बना के १० से भाग देने पर लब्धि अंश होते हैं। यदि जन्मलग्न विषमसंख्यक हो तो राश्यादि सूर्य में एवं यदि जन्मलग्न सम संख्यक हो तो राश्यादि जन्मलग्न में पूर्व लब्धि को जोड़* देने से स्पष्ट होरा लग्न होती है ॥ ७४ ॥

उदाहरण—

इष्टकाल १३।५५ को २ से गुणा किया तो (१३।५५) × २=२७।५० गुणन फल हुआ। इस २७।५० में ५ का भाग दिया तो लब्धि ५ राशि हुई। शेष २।५० का पल बना १७० में १० का भाग दिया तो लब्ध १७ अंश हुए। इस लब्ध राश्यादि ५।१७ को जन्म लग्न (मिथुन) विषम संख्यक होने के कारण स्पष्ट सूर्य ११।२०। ५८।० में जोड़ दिया तो राश्यादि स्पष्ट होरा लग्न ५।७।५८।० हुई।

---

* किसी २ का मत है कि सर्वदा सूर्य ही में जोड़ना चाहिये परन्तु अनार्ष होने के कारण यह मत हेय है।

जैमिनि के अनुसार आयुर्दाय साधन—

लग्नेशरन्ध्रपत्योश्च लग्नेन्द्वोर्लग्नहोरयोः।
सूत्राण्येवं प्रयुञ्जीयात्संवादादायुषां त्रये ॥ ७५ ॥
लग्ने वा मदने चन्द्रे चिन्तयेल्लग्नचन्द्रतः।
अन्यथा शनिचन्द्राभ्यां चिन्तनीयं विचक्षणैः ॥ ७६ ॥

(१) लग्नेश और अष्टमेश से (२) लग्न और चन्द्रमा से और (३) लग्न तथा होरालग्न से वक्ष्यमाण प्रकार से आयु का साधन करना चाहिये। द्वितीय प्रकार में यदि चन्द्रमा या लग्न सप्तम में बैठा हो तो लग्न-चन्द्रमा पर से अन्यथा (लग्न या सप्तम में न पड़ा हो तो) शनि-चन्द्रमा पर से आयु साधन करना चाहिये ॥ ७५-७६ ॥

आयुर्दाय ज्ञान का प्रकार—

चरे चरस्थिरद्वन्द्वाः स्थिरे द्वन्द्वचरस्थिराः।
द्वन्द्वे स्थिरोभयचरा दीर्घमध्याल्पकायुषः ॥ ७७ ॥

जिन दो ग्रहों के द्वारा आयु देखना है। उन में यदि एक चरराशि में दूसरा चर, स्थिर या द्विस्वभाव में हो तो क्रम से दीर्घ, मध्य और अल्प आयु जानना। यदि एक स्थिर में दूसरा क्रम से द्विस्वभाव, चर और स्थिर में हो तो दीर्घ, मध्य और अल्प आयु समझना। एवं यदि एक द्विस्वभाव में दूसरा क्रम से स्थिर, द्विस्वभाव तथा चर में हो तो दीर्घ, मध्य और अल्प आयु का योग होता है। स्पष्टता के हेतु नीचे का चक्र देखिये ७७

दीर्घायु	मध्यायु	अल्पायु
चरे लग्नेशः १ चरे अष्टमेशः ८	चरे लग्नेशः १ स्थिरेऽष्टमेशः ८	चरे लग्नेशः १ द्विस्वभावेऽष्टमेशः ८
स्थिरे लग्नेशः १ द्विस्वभावेऽष्टमेशः ८	स्थिरे लग्नेशः १ चरे अष्टमेशः ८	स्थिरे लग्नेशः १ स्थिरे अष्टमेशः ८
द्विस्वभावे लग्नेशः १ स्थिरे अष्टमेशः ८	द्विस्वभावे लग्नेशः १ द्विस्वभावे अष्टमेशः ८	द्विस्वभावे लग्नेशः १ चरे अष्टमेशः ८

आयु स्पष्ट करने का प्रकार—

रसाङ्कै९६र्गजाभ्रेन्दुभिः १०८ शून्यमास १२०
स्त्रिधा दीर्घमायुः कलौ सम्प्रदिष्टम्।
चतुष्षष्टि६४बाहद्रय७२शीति८० प्रमाणै-
र्मतं मध्यमायुर्नृणां वत्सरैः स्यात् ॥ ७८ ॥

तथा द्वित्रि३२षड्वह्नि३६शून्याब्धि४०वर्षै-
र्भवेदल्पमायुर्नराणां युगान्ते ॥ ७६ ॥

उपर्युक्त तीनों रीतियों में से तीनों प्रकारों से भिन्न २ आयु आवे तो लग्न होरालग्न पर से आई हुई आयु समझना। ९६, १०८, १२० वर्ष की दीर्घायु, ६४, ७२, ८० वर्ष तक मध्यायु एवं ३२, ३६, ४० वर्ष तक अल्पायु योग कहा जाता है। इन में ३२, ३६, ४० वर्ष के खण्ड होते हैं।

यदि तीनों प्रकार से दीर्घायु हो तो १२० वर्ष, दो प्रकार से दीर्घायु हो तो १०८ वर्ष, एक प्रकार से दीर्घायु हो तो ९६ वर्ष आयु जानना। एवं तीनों प्रकारों से अल्पायु योग हो तो ३२ वर्ष दो प्रकार से अल्पायु हो तो ३६ वर्ष, एक ही प्रकार से अल्पायु योग आवे तो ४० वर्ष आयु खण्ड समझना। लग्नेश-अष्टमेश के सम्बन्ध से मध्यमायु हो तो ८० वर्ष, लग्न-चन्द्रमा या शनि-चन्द्रमा के सम्बन्ध से मध्यायुयोग आता हो तो ७२ वर्ष और लग्न होरालग्न द्वारा मध्यायुयोग निश्चित हुआ हो तो ६४ वर्ष आयु जानना (अर्थात् उक्त खण्डों को ग्रहण करके आयु स्पष्ट करना) चाहिये।

उपर्युक्त विधि से आयुर्दाय विधायक ग्रहों का निश्चय हो जाने पर यदि एक ही प्रकार से साधन करना हो तो दोनों योग कारक ग्रहों के अंशादि का योग करके २ से भाग देने पर जो लब्ध हो उसको अंशादि जानना। एवं यदि दो प्रकार से आयुर्दाय निश्चित हुआ हो तो चारो योग कर्ताओं के अंशादि का योग करके ४ का भाग देकर लब्धि अंशादि बना लेना। एवं यदि तीनों प्रकार से आयु का निश्चय किया गया हो तो छओ योगकर्ताओं के अंशादि का योग करके ६ का भाग देना जो लब्धि आवे उस को आयुर्दाय साधन के योग्य अंशादि जाने।

उसके बाद इन लब्ध अंशादिकों को योगप्राप्त ३२, ३६ या ४० खण्डों से गुणा करके ३० का भाग देना तो लब्ध वर्षादि होगा इन लब्ध वर्षादिकों को को अल्पायु हो तो अल्पायु के प्राप्तखण्ड में, मध्यायु साधन करना हो तो मध्यायु के प्राप्तखण्ड में और दीर्घायु लाना हो तो दीर्घायु के प्राप्तखण्ड में घटा देने से स्पष्ट आयुर्दाय का मान होता है।

किसी २ आचार्य ने ३२, ६४ और ९६ रूप अल्पायु, मध्यायु और दीर्घायु का खण्ड कल्पना करके आयुर्दाय साधन करना लिखा है—

द्वात्रिंशत्पूर्वमल्पायुर्मध्यमायुस्ततो भवेत्।
चतुष्षष्ट्या पुरस्तात्तु ततो दीर्घमुदाहृतम् ॥
पूर्णमादौ हानिरन्तेऽनुपातो मध्यतो भवेत्।
राशिद्वयस्य योगार्द्धं वर्षाणां स्पष्टमुच्यते ॥

अत एव द्वात्रिंशद्रूप खण्डा पर से आयु साधन करने के लिये नीचे सारणी दी जाती है ॥ ७८-७६ ॥

अंशफलसारणी—

अंश	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९
वर्ष	३२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२६	२६	२७	२८	२९	३०
मास	०	०	१	२	३	४	४	५	६	७	८	८	९	१०	११	०	०	१	२	३	४	४	५	६	७	८	८	९	१०	११
दिन	०	२४	१८	१२	६	०	२४	१८	१२	६	०	२४	१८	१२	६	०	२४	१८	१२	६	०	२४	१८	१२	६	०	२४	१८	१२	६

कलाफलसारणी—

कला	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०
मास	०	०	०	०	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	३	३	३	३	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	६	६
दिन	६	१२	१९	२५	२	८	१४	२१	२७	४	१०	१६	२३	२९	६	१२	१८	२५	१	८	१४	२०	२७	३	१०	१६	२२	२९	५	१२
घटी	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०
कला	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०
मास	६	६	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	११	१२	१२	१२	१२
दिन	१८	२४	१	७	१४	२०	२६	३	९	१६	२२	२८	५	११	१८	२४	०	७	१३	२०	२६	२	९	१५	२२	२८	४	११	१७	२५
घटी	२४	४८	१२	१६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१५	३६	०

विकलाफलसारणी—

विकला	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०
दिन	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	३	३
घटी	६	१२	१९	२५	३२	३८	४४	५१	५७	४	१०	१६	२३	२९	३६	४२	४८	५५	१	८	१४	२०	२७	३३	४०	४६	५२	५९	५	१२
पल	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०
विकला	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०
दिन	३	३	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	५	५	५	६	६	६	६
घटी	१८	२४	३१	३७	४४	५०	५६	३	९	१६	२२	२८	३५	४१	४८	५४	०	७	१३	२०	२६	३२	३९	४५	५२	५८	४	११	१७	२४
पल	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०	२४	४८	१२	३६	०

कक्ष्या ह्रास-वृद्धि—

जैमिनि सूत्र के द्वितीयाध्याय प्रथमपाद के सूत्रों १०-१४ के अनुसार उपर्युक्त योगों में यदि शनि योगकर्ता होतो कक्ष्या ह्रास होता है। (अर्थात् दीर्घायु का मध्यायु, मध्यायु का अल्पायु, अल्पायु का आयुत्रभाव हो जाता है)। किसीके मतमें कक्ष्याह्रास नहीं होता। किन्तु जैमिनि का मत है कि शनि अपने राशि वा अपने उच्चराशि में बैठा हो तो कक्ष्याह्रास नहीं होता अन्यथा (न बैठा हो तो) कक्ष्याह्रास होता है।

एवं योगकारक बृहस्पति लग्न वा सप्तम में पड़ा हो अथवा केवल शुभ ग्रहों से ही युक्त वा दृष्ट हो तो कल्याबृद्धि होती है ।

अन्य प्रकार से आयु विचार—

पितृलाभरोगेशभाग्निानि कण्टकादिस्थे स्वतश्चैवं त्रिधा ।

लग्न विषमसंख्यक हो तो क्रम से जो अष्टमेश और द्वितीयेश हों उनमें जो बलवान् हो वह ग्रह यदि लग्नसे केन्द्र [१।४।७।१०] में हो तो दीर्घायु, पणफर [२।५।८।११] में हो तो मध्यायु और आपोक्लिम [३।६।९।१२] में हो तो अल्पायु जानना । यदि लग्न समसंख्यक हो तो उत्क्रम से जो अष्टमेश और द्वितीयेश [अर्थात् षष्ठेश और द्वादशेष] हों उन दोनों में जो ग्रह बली हो वह यदि केन्द्र में हो तो दीर्घायु, पणफर में हो तो मध्यायु और अपोक्लिम में हो तो अल्पायु समझना ।

रव्यादिक ग्रहों में जो सबसे अधिक अंशवाला हो उसको आत्मकारक कहते हैं । आत्मकारक से भी इसी प्रकार विचार करना चाहिये अर्थात् आत्मकारक ग्रह यदि विषम राशि में स्थित हो तो अष्टमेश और द्वितीयेश में, यदि समसंख्या की राशि में पड़ा हो तो षष्ठेश और द्वादशेश में जो ग्रह बली हो वह यदि कारक से केन्द्र में होतो दीर्घायु, पणफर में होतो मध्यायु आपोक्लिम में हो तो अल्पायु होती है ।

परन्तु लग्न विषम संख्यक हो और कारक तृतीय में हो तो केन्द्र में रहने पर हीनायु, पणफर में मध्यायु और आपोक्लिम में दीर्घायु जानना तथा लग्न समसंख्याक और कारक एकादश में हो तो भी पूर्ववत् [केन्द्र में हीनायु, पणफर में मध्यायु और आपोक्लिम में दीर्घायु] जानना ।

इन दोनों योगों में अष्टमेश-द्वितीयेश अथवा षष्ठेश-द्वादशेष यदि कारक के साथ बैठा हो वा स्वयं कारक हो जाय तो मध्यमायु ही जानना ।

ग्रन्थसमाप्तिकाल—

हिमकरखगखेटेला१६९१मिते विक्रमाब्दे
शिवतम इषमासे स्वच्छपक्षे वलक्षे ।
शशितनुजनुषो वारे तिथौ सूर्यसूनो-
रगमदपि सुपूर्तिं जन्मपत्रप्रदीपः ॥ ८० ॥

श्रीविक्रम सं० १६९१ आश्विनशुक्ल विजया १० बुधवार को यह जन्मपत्रदीपक समाप्त हुआ ॥ ८० ॥

इत्याजमगढ़मण्डलान्तर्गतब्रह्मपुराभिजनसरयूपारीणपण्डितश्रीधर्मदत्तद्विवेदितनुजन्मना ज्यौतिषाचार्यश्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदिना विरचितो जन्मपत्रदीपकः समाप्तः ।

एतत्सुदीपपरिदीपनतोऽपि नष्टोऽज्ञानान्धकारनिचयो बुधहृद्गतश्चेत् ।
न स्यात्तदेनकिरणोद्गमसुप्रकाशाद् घूकाक्षिदोष इव मे किल कोऽस्ति दोषः ॥

श्रीगुरवः-शरणम् ।

मुद्रकः—विद्याविलास प्रेस, बनारस-१

....

Please ship the following packages and obtain Bill of Lading/Airway Bill on your usual terms and conditions of business and at our risk and responsibility.

We will take delivery of documents against payment of steamer freight as well as your charges for handling shipment. In case shipment is made on freight Collect Basis, we agree to pay you the freight and all other charges occuring at destination if not paid by the consignee. We confirm that the contents of the packages have been truly and correctly declared by us. We authorise you to declare contents in the Shipping Bill to be filled by on our behalf with the Customs as per our invoice at our responsibility.

Goods despatched to Bombay/Thane-Truck receipt/Railway receipt No..............................

dt,..............................Freight duly PREPAID/TO-PAY.

(N.B.) Goods to be consigned till Thane only. (GR to mention please contact

1. No. & Type of Packages..

2. Description of contents..

3. FOB/C&F/CIF value..................Port of Discharge..................Steamer Freight..............

4. RBI Code No......................GRI Form No..................DT..............................

5. Gross Wt...Nett Weight......................................

6. Drawback Serial No.......................................Rate of Drawback............................

7. INSTRUCTIONS FOR PREPARATIONS OF BILL OF LADING

Shipper's Name..

....